रामचरितमानस
में
ज्ञानिक तत्व

डॉ. विष्णुदत्त शर्मा

रामचरितमानस में वैज्ञानिक तत्त्व

आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान के सहारे मानव ने प्रकृति के अनेक रहस्यों का पता लगाकर अद्भुत सफलता प्राप्त कर ली है, भारत के लिए यह बात नई नहीं है। निगमागम सम्मत 'रामचरितमानस' का अध्ययन करने पर पता लगता है कि हमारे पूर्वज विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे बढ चुके थे किन्तु कालक्रम से स्थिति परिवर्तित होती गई।

हम सभी 'रामचरितमानस' का पठन करते हैं, परंतु किसी ने भी आज तक यह मनन नहीं किया कि 'मानस' में वर्णित तैरने वाले पत्थर, सूर्योदय से पूर्व मूर्छा दूर करने वाली जडी-बूटियाँ, शिवजी के नेत्र से निकली कामदेव को भस्म करने वाली किरण, हजारों योद्धाओं द्वारा धनुष के उठाने का एक असफल प्रयास तथा वही धनुष श्रीराम द्वारा अकेले ही तोड देना, पुष्पक विमान का मानव रहित लौट आना, स्वर्ण-लंका का जलना तथा रावण का 'दशानन' कहलाना आदि में क्या रहस्य एवं वैज्ञानिकता थी ?

हिन्दी-विज्ञान जगत के जाने-माने पुरस्कृत लेखक डॉ विष्णुदत्त शर्मा ने अपने इस शोध-ग्रंथ में उपर्युक्त तथ्यों का जहां एक ओर वैज्ञानिक पक्ष प्रस्तुत किया है वहीं दूसरी ओर 'मानस' में मृगतृष्णा, क्वांटमवाद एवं सापेक्षवाद, आभामण्डल, कृत्रिम जीव-निर्माण, शरीर-संरचना आदि का वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी उजागर किया है। डॉ. शर्मा के इस ग्रथ में 'भौतिक विज्ञान', 'रसायन विज्ञान', 'आयुर्विज्ञान', 'आनुवंशिकी', 'मनोविज्ञान', 'अपराध-विज्ञान', 'भूविज्ञान' आदि अनेक अध्यायों में विश्लेषण किया गया है। परिशिष्ट मे भ्रांति-भंजन तथा अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का समायोजन करते हुए पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रयुक्त साहित्य की संदर्भिका दी गई है।

आशा है प्रस्तुत ग्रंथ 'रामचरितमानस में वैज्ञानिक तत्व' शोधार्थियो एवं प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय, जाति, लिंग, तथा वर्ग के लिए उपादेय सिद्ध होगा तथा भारतीय दर्शन की वैज्ञानिकता को समझाने में सक्षम होगा।

मूल्य : 250.00

रामचरितमानस
में
वैज्ञानिक तत्त्व

रामचरितमानस
में
ज्ञानिक तत्त्व

डॉ० विष्णुदत्त शर्मा

शोध प्रकाशन अकादमी
5/48 वैशाली

प्रकाशक : **शोध प्रकाशन अकादमी**
5/48, वैशाली
गाजियाबाद (उ॰प्र॰)

शाखाएं : ❋ कौशिक आश्रम, गांधीनगर, मेरठ
❋ 16/168/5, वसुन्धरा, गाजियाबाद
❋ 83-MIG, ज्ञानखण्ड-IV इन्दिरापुरम, गाजियाबाद

मूल्य : 250.00

प्रथम संस्करण : 1998
आवरण रेखाचित्र : मृगतृष्णा

एकमात्र वितरक :
किताबघर, 24, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

शब्द-संयोजन : क्वालिटी प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-93

मुद्रक : त्रिवेणी ऑफसेट, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-32 फोन : 2288175

RAMCHARITMANAS MEIN VAIGYANIK TAT
Dr. Vishnu Datt Sharma
Price . Rs. 250.00

प्रेरणा-स्रोत

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

राम.च.मानस. उत्तरकाण्ड, 130 (2)

रामकथा सार

आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं कांचनम्,
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसंभाषणम् ।
बालीनिर्दलनं समुद्रतरणं लंकापुरीदाहनम्,
पाश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननं चैतद्धिरामायणम्॥

आमुख
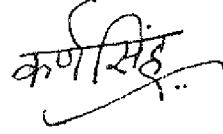
आज के युग में विज्ञान और तकनीक ने आश्चर्यजक उन्नति की है। विशेष रूप से औषधि, संचार, कृषि तथा उद्योग के क्षेत्रों में विज्ञान द्वारा जो विकास हुआ है वह अद्भुत है। यदि बुद्धिमानी और करुणा के साथ उसका उचित उपयोग किया जाय तो उससे गरीबी, अज्ञान, भूख और कुपोषण को इस शताब्दी के अंत तक सारे भूमंडल से दूर करने में सहायता मिल सकती है। किंतु दुर्भाग्य से उसी विज्ञान और तकनीक का ऐसे विकराल प्रक्षेपास्त्र भी बनाये हैं, जिनसे इस पृथ्वी पर से सारे जीवधारियों को नष्ट किया जा सकता है। इस विनाशकारी प्रवृत्ति का निराकरण तभी हो सकता है जब विज्ञान की वृद्धि के साथ विवेक और करुणा का भी विकास हो। इसके लिए विज्ञान और अध्यात्म का परस्पर आदान-प्रदान और समन्वय बहुत आवश्यक है।

रामायण जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र चित्रित किया गया है हमारे नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का उज्जवलतम प्रतीक है। हमारी संस्कृति में आदिकाल में सत्य, अहिंसा, धैर्य, क्षमा, अनासक्ति, निष्कपटता त्याग और उदारता जैसे सद्गुणों का जैसा निदर्शन रामायण में दिखाई पड़ता है वैसा अन्यत्र नहीं। तुलसीदास ने अपने (रामचरितमानस) में अनेक शास्त्रों और पुराणों का सारतत्व जनसाधारण की भाषा में प्रस्तुत कर दिया है। किंतु इसके साथ ही उसमें अनेक वैज्ञानिक तत्व भी निहित हैं इस बात की ओर संभवतः सामान्य पाठकों का ध्यान नही जाता।

प्रस्तुत शोध ग्रंथ 'रामचरितमानस में वैज्ञानिक तत्व' में श्री विष्णु दत्त शर्मा ने बड़ा परिश्रम और अनुसंधान करके रामचरितमानस के विविध वैज्ञानिक पक्षों का निरूपण किया है और इस प्रकार विज्ञान और अध्यात्म के बीच पारस्परिक

संबंध स्थातिप करने का प्रयास किया है। मुझे आशा है कि यह पुस्तक शोधकर्ताओं और विज्ञान तथा अध्यात्म में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए समान रूप से रोचक होगी।

मानसरोवर
3, न्यायमार्ग. चाणक्यपुरी
नई दिल्ली-110021

कर्णसिंह

कर्णसिंह

प्राक्कथन

अत्यत प्राचीनकाल से मनुष्य की यही धारणा रही है कि विश्व अथवा समस्त सृष्टि का सृजक ईश्वर है। ईश्वर के स्वरूप और गुणों के विषय में विद्वानों की विभिन्न प्रकार की मान्यताएं रही हैं और इसीलिए ईश्वर कई प्रकार से व्याख्यायित किया जाता रहा है। यही कारण है कि सर्वव्यापी, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् रहकर वह विराट ईश्वर सदैव रहस्यमय बना रहा। इस सर्वव्यापी, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान सत्ता को 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' कहा गया और इसके अस्तित्व तथा उसकी शाश्वत व्यवस्था में विश्वास दिलाने का काम किया ऋतुचक्र ने, वृक्षों एवं वनस्पतियों के जीवन ने, आकाश में स्थित सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों ने, दिन-रात ने, आदि-आदि।

व्यवस्था का विधान स्वयमेव किसी न किसी आचार-संहिता की देन हैं और सासारिक विधान की आचार-संहिता है—हमारे नैतिक गुण। ईश्वर की कृपा पाने अथवा उसके प्रकोप से बचने के लिए ही मनुष्य युगों-युगों से नाना प्रकार के नैतिक नियमों तथा संस्कारों का पालन करता चला आ रहा है। ईश्वर के प्रति उसकी अगाध आस्था (भक्ति) ही उसे संयमित, व्यवस्थित एवं आदर्श बनाए रहती है। वही उसे जिस अवस्था से जोड़ती है उसे 'नेति' कहते हैं और उसके व्यवहार-मार्ग ही नैतिक गुण कहे जाते हैं।

सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥[1]

मानव के संस्कारों में धर्म की जड़ें चाहे कितनी गहरी जमी हों; उसके निकट चाहे कितना ही शाश्वत सत्य क्यों न हो; तथापि समय-समय पर मानवीय समाज में

1 मानस, बालकाण्ड, 12 (दोहा)

होने वाले परिवर्तनों और वैचारिक क्रांतियों ने सदा धर्म के स्वरूप को प्रभावित ओर परिवर्तित किया है। इन क्रांतियों और परिवर्तनों का उत्तरदायी है आज का विज्ञान।

विज्ञान की मूल प्रकृति है प्रेक्षण एवं प्रयोगों पर आधारित विश्लेषण तथा उसका लक्ष्य रहा है विश्व को भलि-भांति समझने की चेष्टा करना। अपने व्यवहारिक पक्ष, जिसे हम प्रयोग विज्ञान, प्राविधि या टेक्नोलॉजी कहते हैं, द्वारा विज्ञान मानव समाज के हितों से सीधा जुड़ा है। अग्नि की खोज तथा पहिए के आविष्कार ने मानव की प्रागैतिहासिक काल से ही मदद की। शनैः शनैः उसके भण्डार मे एक के बाद एक खोज तथा आविष्कार जुड़ते गए। विस्तृत अंतरिक्ष में बिखर ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र तथा तारों का ज्ञान, समुद्र तल से लेकर पर्वत की ऊँचाईयों तक प्राप्त होने वाले खनिज, जीव-जंतु तथा वनस्पतियों का ज्ञान, अणु-परमाणु की आंतरिक रचना तथा उसके अंदर सुसुप्त ऊर्जा की जानकारी तथा अनेक प्राविधियाँ आदि ये सब मिलकर विज्ञान का विराट रूप प्रस्तुत करते हैं जिसके अनुसार प्रकृति की कई प्रत्यक्ष व परोक्ष क्रियाएं जानी समझी जा सकती हैं। जो कुछ आज अज्ञात है उसे भी समझने तथा उस पर प्रयोग करने की प्रक्रिया चल रही है, प्रयास जारी है।

आवश्यकता आविष्कारों की जननी है। प्रत्येक युग में मनुष्य ने अपनी जरूरत के आधार पर नए अध्ययन तथा आविष्कारों पर जोर दिया है। आज से चार-पाच सौ वर्ष पूर्व यूरोप के कुछ राष्ट्र व्यापारिक आवश्यकताओं के लिए समुद्र-यात्रा पर जोर दे रहे थे, उसी समय उन्हें खगोल विद्या, चन्द्रमा की गति, सूर्य की दूरी तथा अन्य बातें जानने की प्रबल आवश्यकता महसूस हुई। पिछली कुछ सदिया तथा इसी सदी के कुछ दशकों में विज्ञान के आधारभूत तथ्य तथा व्यावहारिक, दोनों ही पक्षों पर बहुत ही अधिक अनुसंधान हुए हैं। गत शताब्दी के अंत तक आकाश मार्ग से यात्रा एक सुखद स्वप्न थी। यह कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वह स्वयं अथवा बिना खुद गए, यंत्रों को चन्द्रमा की भूमि पर उतार सकेगा। दूसरे उपग्रहों के निकट जाकर खोज-खबर ले सकेगा या कृत्रिम उपग्रहों द्वारा लिए गए चित्रों से ही पृथ्वी के अन्दर-बाहर की समस्त जानकारियां पा सकेगा।

इन सभी कार्यों के करने के लिए चाहिए—साधना। किसी भी मन-चाहे उपयोगी कार्य को पूरा कर लेने की क्षमता प्राप्त कर लेना ही सिद्धि है। सिद्धि शब्द अकेला नहीं है साधना शब्द इसके साथ ही अभिन्न रूप से जुड़ा है। सभी प्रकार की सिद्धियां साधनाओं का ही परिणाम है। बिना साधना के सिद्धि की प्राप्ति सम्भव नहीं है। सिद्धियां और सिद्ध पुरुष दोनों ही ठोस वास्तविकता है।

रामभक्ति एवं साधना के कारण हनुमान के चरित्र में लौकिक शक्ति का आ जाना सहज स्वाभाविक है। कहते हैं, साधना के कारण सिद्धियां इनके वश मे थीं। केसरी वानर की स्त्री अंजना के गर्भ से पवन के द्वारा ये चैत्र शुक्ल पूर्णिमा के दिन उत्पन्न हुए माने जाते है। अणिमा-सिद्धि के द्वारा इन्होंने सीता-अन्वेषण के क्रम में, मशक तथा मच्छर का रूप धारण कर लिया था—

मसक समान रूप कपि धरि।
लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरि॥[2]

महिमा-सिद्धि के कारण इन्होंने सुरसा को चमत्कृत कर दिया था—

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा।
कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ।
तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥
जस जस सुरसा बदनु बढावा
तासु दून कपि रूप देखावा॥[3]

इस संसार में सभी युगों में सिद्धि-पुरुष हुए हैं। वे प्राचीन काल में भी थे और वर्तमान काल में भी हैं। सिद्धि-पुरुषो की कृपा और प्रेरणा से प्राचीन काल में भी चमत्कारी घटनाएं घटती थीं, वर्तमान काल में भी घटती हैं। प्राचीन काल में इस प्रकार के प्रसंगों की बहुलता थी तो आधुनिक युग में अभाव है लेकिन शून्यता की स्थिति फिर भी नहीं है। सिद्धि पुरुष हैं, भले ही उनकी संख्या कम हो। इसका कारण है कि वर्तमान युग भौतिकवादी, कालवादी, यांत्रिक तथा मात्र बुद्धिवादी है। जबकि प्राचीन युग उतना न तो भौतिकवादी, कालवादी और यांत्रिक था और न आज जैसी आत्मशक्ति का अभाव था। आज के युग में जबकि विज्ञान की सार्वभौम सत्ता स्थापित हो चुकी है फिर भी विश्व के सभी राष्ट्र सिद्धियों, सिद्ध पुरुषों, पराभौतिक शक्तियों तथा दैवी शक्तियों में पूर्ण विश्वास करते हैं। अनेक ऐसी सिद्धियां जिनका अब तक वैज्ञानिक विश्लेषण संभव नहीं हो सका है, फिर भी उनके प्रति सामान्य जन से लेकर वैज्ञानिकों तक आस्था एवं विश्वास का वातावरण बना हुआ है। इसका कारण सिद्धियों की विश्वसनीयता और प्रमाणिकता ही है।

कभी-कभी किसी व्यक्ति को जन्म-जात रूप से बिना साधना के ही सिद्ध

---

2. मानस, सुन्दरकाण्ड, 3 (1)
3. मानस, सुन्दरकाण्ड, 1 (4-5)

पुरुष की क्षमता से सम्पन्न देखा गया है अर्थात् ईश्वर कृपा से सिद्धि प्राप्त हो गई। इस विषय में आधुनिक विज्ञान ने चुप्पी साध रखी है यद्यपि विश्लेषण-प्रयास बहुत किए जाते हैं। अनायास अर्थात बिना प्रयास के सिद्धि प्राप्त करने की चर्चा के विषय में इजरायली युवक यूरी गेलर का उदाहरण विशेष उल्लेखनीय है। किसी भी धातु की बनी छड़ों, चमचों, चाबियों तथा अन्य चीजों पर वह जैसे ही दृष्टिपात करता है, दृष्टिकेन्द्रित ये वस्तुएं मुड़ने लगती हैं। संसार की अनेक प्रयोगशालाओं में गेलर की इस क्षमता को जांचा-परखा गया। परन्तु वैज्ञानिक उसकी इस शक्ति का रहस्य समझने में असमर्थ हैं।

अमेरिकी अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने 'निटीमोल' नामक मिश्रित धातु का आविष्कार उपग्रहों की ऐंटीना बनाने के लिए किया था। इस मिश्र धातु की सबसे बड़ी विशेषता है कि इससे बना ऐंटीना कितना ही मोड़ा जाए या मरोड़ा जाए किंतु उसके बाद वह अपने-आप सीधा हो जाएगा। जब इसके आविष्कारक एल्डन वायर्ड ने निटीमोल का तार अपने हाथ में लेकर उसकी सारी विशेषताएं यूरी गेलर को समझायीं तो गेलर को लगा कि इस तार पर उसकी शक्ति का वार खाली हो जाएगा। किन्तु आश्चर्य कि तार पर गेलर के दृष्टि केन्द्रित करते ही उसमें बल पड़ने लगे और वह ऐंठने लगा। थोड़ी देर में ही देखा गया कि तार में बल पड़ने से एक स्थान पर गूमड़-सा उभर आया है। वैज्ञानिकों ने 'निटीमोल' के तार में पड़े गूमड़ को ठीक करने के अनेक प्रयास किए परंतु सफलता नहीं मिली। इस प्रकार निटीमोल की विशेषता को एक चुनौति और उसके गुणधर्म को असत्य प्रमाणित करने वाली स्थिति से सभी वैज्ञानिक आश्चर्य चकित हो गए। यह प्रयोग सन् 1972 ई. में किया गया था। तेल अवीव में सन् 1946 ई. में जन्मे यूरी गेलर तीन वर्ष की आयु में ही दूसरों के मन की बात पढ़ लेने की क्षमता रखते थे।

प्राचीन काल के भारतीय योगियों के ऐसे और इनसे भी बड़े प्रदर्शनों को आज हम विश्वसनीय नहीं मानते किंतु वर्तमान युग के इन चमत्कारों को हम क्या कहेंगे, जिनकी व्याख्या विज्ञान भी नहीं कर पा रहा है। इस प्रकार की अनेक सिद्धियां हैं जो मनुष्य अपनी साधना तथा पूर्व जन्म के संस्कारों के बल पर प्राप्त कर सकता है। श्रद्धापूर्ण संकल्प साधना के सफल होने का सबसे बड़ा साधन है। विश्वास, पूर्ण एकाग्रता और प्रयास ऐसी शक्तियां हैं जो असंभव को भी सभव करा देती हैं।

कुछ समय पूर्व रामचरित्मानस संबंधित जब एक शोध-पत्र मैंने वैज्ञानिक अनुसंधान पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजा तो वह इस टिप्पणी के साथ लौटा दिया

गया कि रामचरित्मानस के प्रति इस प्रकार का वैज्ञानिक अनुसंधान कपोलकल्पित एव ढोंगा प्रयास है। इसके विपरीत वही लेख एक साहित्यिक शोध-पत्रिका मे भजा तो सहर्ष स्वीकार कर लिया गया। कुछ पाश्चात्य सस्कृति से प्रभावित वैज्ञानिक रामचरित्मानस, रामायण, गीता, वेदों तथा उपनिषदों एवं अन्य पौराणिक गाथाओं को मात्र कल्पना मानते हैं। मैं स्वीकारता हूं कि सेर का मन हो जाता है, तिल का ताड़ बन जाता है, राई का पहाड़ हो जाता है किन्तु यदि सूक्ष्म वस्तुए ही नही होंगी तो विशालकाय का प्रश्न ही नहीं उठता। मन में कल्पनाएं भी तभी आती हैं जब उनमें कुछ तथ्य होता है। आधुनिक वैज्ञानिकों की यह मानसिक विचारधारा अज्ञानता की सूचक है। इस अज्ञानता को भी समय-समय पर कुछ पाखंडी और प्रवचक इतने अशक्त रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं कि इनके शक्तिमय स्वरूप की स्थिति धूमिल ही बनी रही। परिणामस्वरूप अतिभौतिक, अध्यात्म ओर दर्शन के ज्ञान से रहित, नास्तिकतावादी कुतार्किक जनों ने प्रचारित करने का एक अभियान ही चला दिया और कहना प्रारम्भ कर दिया--परकाया प्रवेश, इच्छामात्र से वांछित वस्तु की प्राप्ति, दूरबोध, परभावज्ञान (दूसरे के मन की बात जानना) इत्यादि अवैज्ञानिक, जड़ता और भ्रम है, न इनमें शक्ति है और न प्रमाणिकता ही है। इस कुप्रचार ने समाज का भारी अकल्याण किया। लोक इस क्षेत्र से शनैः-शनै विमुख होने लगे और कालांतर में पूर्ण विमुख हो गए। भारत में इन रहस्यमयी शक्तियों के धारक जो सिद्ध पुरुष और महात्मा थे वे भी समाज की उपेक्षा और अनास्था को देखकर उससे दूर होते और कटते चले गए। वे गिरि-वनों, कंदराओ तथा हिमालय में जाकर रहने लगे और अपने साथ ही अपनी शक्तियों को लेकर चले गए। समाज में रहे-सहे विश्वास को भी ढोंगी, कपटी, तांत्रिकों, साधु वेषधारी ठगो ने अपनी योग्यता का मुलम्मा चढ़ाकर ऐसे विकृत रूप में प्रस्तुत किया जिसने अविश्वास और अश्रद्धा को पूर्ण साकार कर दिया।

कालांतर में जब भारत और विश्व का ध्यान इन रहस्मयी शक्तियों की ओर आकर्षित हुआ तो बहुत देर हो चुकी थी एवं समर्थ मार्ग-दर्शको का लोप हो चुका था। किन्तु विज्ञान, मनोविज्ञान और परामनोविज्ञान ने इस निराशाजनक स्थिति में भी हिम्मत नहीं हारी। धर्म और दर्शन को आधार बनाकर ये फिर से इन रहस्यम्यी शक्तियों के विश्लेषण, व्याख्या और पूर्व रूप की पुनर्स्थापना के अभियान में जुट गए।

कल तक जो भ्रम, कल्पना और असत्य था वही अब विज्ञान की प्रयोगसिद्धि मुहर लगने से सत्य की मान्यता प्राप्त करने लगा। आज रूस, अमरीका, फ्रास, इगलैंड, जर्मनी तथा अन्य अनेक पश्चिमी देश विज्ञान, मनोविज्ञान द्वारा इन

रहस्यमयी शक्तियों को पुनर्स्थापित करने में लग गए हैं। वैज्ञानिक प्रयासों द्वारा अब रहस्यमयी शक्तियों को प्राप्त करने का विषय प्रयोगशालाओं, अनुसंधान-संस्थानो एव विश्वविद्यालयों में प्रवेश कर सूत्रों, परिभाषाओं तथा प्रयोग-सिद्ध विधियों का स्वरूप ले रहा है। अब रहस्यमयी शक्तियों का स्वरूप कल्पना, भ्रम और श्रव्य कथा न रहकर प्रयोग-सिद्ध-सत्यता का आकार ले चुका है। प्रयास द्वारा प्राप्ति को मान्यता मिल चुकी है। **अब समय आ गया है कि भारतीय शिक्षाविद्, विज्ञानविद् तथा अन्य बुद्धिजीवी पाश्चात्य विज्ञान और दर्शन का मोह छोड़कर अपने पूर्वज एवं ऋषि-मुनियों के ज्ञान को समझें तथा पाश्चात्य देशों की चमक-दमक की दासता से स्वतंत्र हो भारतीय संस्कृति को अपनाएं।**

भारतीय ऋषि-मुनियों, ज्ञानियों, दार्शनिकों तथा तपस्वियों के संकलित ज्ञान पर आधारित 'रामचरित्मानस' न केवल धर्म-भावना का सार है बल्कि भारतीय इतिहास, जीवन-दर्शन तथा विज्ञान का ऐसा अनूठा संगम है, जहां काव्यमयी यमुना, धर्ममयी गंगा तथा लोकमंगल की सरस्वती-त्रिवेणी प्रवाहित है। यह भक्त के लिए भक्ति का सरोवर, धर्मात्मा के लिए स्मृतिकोश, नीतिज्ञों के लिए नीति-ग्रंथ शोधार्थियों के लिए महासागर और जन-जन के मन का मानस है। यह एक महा काव्यग्रंथ के साथ-साथ महान् धर्मग्रंथ एवं अपार वैज्ञानिक निधि भी है। इसको पढकर भारतीय जनता एक साथ ही सब कुछ पा जाने के सुख का अनुभव करती है। 'मानस' ने अपनी शक्तिमत्ता, सरलता, श्रेष्ठता और व्यापकता द्वारा पूर्ण बल से भारत की संस्कृति तथा समाज की आत्मा को जीवित रखने में सच्चे संविधान के रूप में योगदान दिया है।

महाकवि तुलसीदास जी ने कहा है–

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखि तिन तैसी।

अतः व्यक्ति चाहे राजनेता, धार्मिक नेता, धर्मावलंबी अथवा शोधार्थी कोई भी क्यों न हो, इस महान् काव्यग्रंथ रूपी महासागर से अपनी-अपनी भावना के अनुसार अभिवांछित सामग्री प्राप्त कर तृप्त हो जाता है। सम्पूर्ण साहित्य-संसार मे 'रामचरित्मानस' ही एक ऐसा महाकाव्य है जिसके विषय में सर्वाधिक शोधकार्य हुआ है और हो रहा है। 'मानस' भू-गर्भ निधि के समान है, जिसका जितना अधिक खनन किया जाए, उतना ही अधिक उपलब्ध होगा। यही कारण है 'रामचरित्मानस' के विषय में, किसी भी अन्य ग्रंथ की अपेक्षा, सर्वाधिक समीक्षाएं, आलोचनाएं, काव्य सौन्दर्य, तुलसी की साहित्य-साधना इत्यादि अनेक अध्ययन साहित्यिक दृष्टिकोण से आज तक किए गए। यहां तक कि कुछ आलोचकों ने अपनी-अपनी भावना के अनुरूप 'हिन्दु समाज के पथभ्रष्टक-तुलसीदास' कहकर अपने आपको

जन-साधारण में सम्मानित होने का दावा किया है, किन्तु खेद है कि अभी तक इस महाकाव्य को पूर्णतया समझने में हम असमर्थ हैं।

अनेक साहित्यिक अध्ययन किए गए, किन्तु 'मानस' के पटल में छिपी वैज्ञानिक निधि को आज तक किसी ने खोजने का प्रयास नहीं किया। हम सभी 'रामचरितमानस' का नित्य पाठ करते हैं, परन्तु किसी ने भी आज तक यह मनन नहीं किया कि 'मानस' में वर्णित वे कौन से पत्थर थे जो समुद्र में तैर सकते थे, वे कौन-सी जड़ी-बूटियां थीं जो केवल रात्रि में ही सूर्योदय से पूर्व मूर्छित व्यक्ति को चेतनावस्था में ला सकती हैं, वह कौन सी किरण थी जो शिवजी के तीसरे नेत्र से निकल कामदेव को भस्म कर सकती थी, वह क्या कारण था जो हजारों योद्धाओं के एक साथ प्रयत्न करने के उपरांत भी उनसे धनुष न उठ सका जबकि श्रीराम ने अकेले ही उसे तोड़ दिया, वह कौन सी शक्ति थी जिसे कुबेर के पुष्पक विमान को 'श्रीराम' के कहते ही मानवरहित कर लौटा दिया, वह कौन-सा अस्त्र था जिसके कारण स्वर्ण-लंका जलकर भस्म हो गई और हनुमान जी का बाल भी बांका न हो सका, इत्यादि।

हजारों वर्ष पूर्व रचित वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, वेदों, पुराणों आदि के आधार पर काव्यबद्ध किए गए इस महाकाव्य में अनेक ऐसे प्रसंग हैं, जिनसे वैज्ञानिक तथ्यों का आभास होता है और स्वयं तुलसीदास जी ने भी स्वीकारा है कि 'रामचरितमानस' भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य का विभाग सहित वर्णन है—

पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी।
जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा।
पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥[4]

'मानस' में छिपे इन वैज्ञानिक तथ्यों एवं तत्कालीन वैज्ञानिक उपलब्धियों ने मेरे मन में हलचल मचा दी और इन्हीं तथ्यों ने 'रामचरितमानस' में वैज्ञानिक तत्वों को ढूंढ़ निकालने के लिए मुझे प्रेरित किया। यद्यपि मैंने 'रामचरितमानस में वैज्ञानिक तत्व' पर शोध कार्य करने का प्रयास किया है, किन्तु 'रामचरितमानस' वह महासागर है जिसकी गहराई तक पहुंचने में आत्मिक एवं मानसिक रूप से मैं अपने आपको अपूर्ण समझ रहा हूं। पूर्णरूपेण इस वैज्ञानिक निधि से वैज्ञानिक तत्वों को निकाल पाने में मैं असमर्थ हूं क्योंकि मेरा ज्ञान सीमित है और 'मानस'

---

4. मानस, बालकाण्ड, 110 (1)

की गहराई असीमित इन्हीं उद्गारों को मन में सजाए 'रामचरितमानस में वैज्ञानिक तत्व' विषयक मेरा यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत है। आशा है प्रस्तुत शोध-कार्य हिन्दी-विज्ञान लेखन में हिन्दी साहित्य की एक नवीन विधा का श्रीगणेश कर पृथक आयाम का मार्गप्रशस्त करेगा। यदि यह शोधकार्य वैज्ञानिकों के मन में साहित्य के प्रति और साहित्यकारों के मन में विज्ञान के प्रति किंचित भी अभिरुचि उत्पन्न कर सका तो मैं अपने उद्देश्य एवं साधना को सफल समझूंगा।

प्रस्तुत शोध-ग्रंथ को अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद ने विद्यावारिधि उपाधि से अलंकृत किया है अतः निर्णायक समिति की अनुशंसा हेतु आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद देता हूं।

शोधकार्य करने की संस्वीकृति एवं सुविधाएं प्रदान करने के लिए मैं राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के निदेशक डॉ. श्रीकृष्ण जोशी तथा भूतपूर्व निदेशक डॉ अजितराम वर्मा के प्रति आभारी हूं। डॉ. रामकृष्ण पाराशर, प्रधान संपादक, नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा दिया गया सहयोग अभिनंदनीय है।

दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी (पटेल नगर) की श्रीमती मीना कुमारी सूरी तथा अन्य कर्मियों, केंद्रीय सचिवालय ग्रंथागार (मंडी हाउस) के संस्कृत अनुभाग के कर्मचारियों एवं राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला की पुस्तकालय में अध्ययनार्थ पुस्तक उपलब्ध कराने के लिए सभी को आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद देता हूं। अन्य संसाधनों के अंतर्गत साहित्य उपलब्ध कराने हेतु मैं श्री तीरथराज सिंह तथा श्री कामेश कुमार शर्मा का आभारी हूं।

पाण्डुलिपि का अध्ययन कर अनेक महत्वपूर्ण सुझावों के लिए महाराजाधिराज महामहिम डॉ. कर्ण सिंह जी, न्यासी रामायण विद्यापीठ का मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूं। जामिया मिल्लिया इस्लामिया यूनिवर्सिटी की हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो माज़दा असद के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने पाण्डुलिपि तैयार करने में मार्गदर्शन किया।

श्रद्धेय गुरुवर प्रो. रमाशंकर तिवारी जी (भूतपूर्व प्रधानाचार्य, साकेत कालेज, फैजाबाद) के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शन करना मेरा पुनीत कर्तव्य है जिन्होंने साहित्य एवं विज्ञान के समन्वित इस प्रस्तुत विषय-विशेष पर मेरा निर्देशन किया। प्रो तिवारी जी न केवल शोध कार्य में मार्गदर्शन अपितु कृपा दृष्टि एवं आशीर्वचनों से मुझे प्रोत्साहित करते रहे और उन्होंने अपने निरंतर अथक परिश्रम द्वारा प्रस्तुत शोध कार्य की सफलता में जो योगदान दिया है, वह सदा अविस्मरणीय एवं मेरे क्षणभंगुर शेष जीवन के लिए प्रेरणा-स्रोत प्रवाहित करता रहेगा।

मैं उन सभी विद्वानों, प्रकाशकों, विचारकों, वैज्ञानिकों तथा साहित्यकारों के प्रति नत मस्तक हूं जिनकी कृतियों की छत्रछाया में मेरा यह शोध कार्य इस स्तर तक पूर्ण हो सका।

डॉ. विष्णुदत्त शर्मा

5/48 वैशाली,
गाजियाबाद-201010 (उ. प्र.)

अनुक्रमणिका

1
विषय परिचय

भगवान को किसी परिभाषा की सीमा में बांधकर परिभाषित करना असंभव है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भगवान ने स्वयं अर्जुन से कहा है—

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥[1]

मेरे प्रकट होने को न देवता जानते हैं और न महर्षि, क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों का आदि-मूल अर्थात महाकारण हूं।

जब देवता और महर्षि ही भगवान के सही रूप व गुणों को जानने में समर्थ नही हैं तो मनुष्य द्वारा सब जान लेना कैसे संभव हो सकेगा ? कुछ महर्षियो, सतो एवं भक्तों को भगवान के अंशों की अनुभूतियां भिन्न-भिन्न रूपों मे हो सकी तथा उन्होंने अपनी-अपनी अनुभूतियों के अनुसार भगवान के रूप व गुणो के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतिपादन किए। भगवान के रूप एवं गुणो के विषय में प्रत्येक धर्म, संप्रदाय, समुदाय तथा व्यक्ति के विचारों में भिन्नता रहने का मुख्य कारण यही है। भिन्नता होते हुए भी इस तथ्य को प्रायः सभी धर्म, सप्रदाय आदि स्वीकार करते हैं कि दृष्टिगोचर होने वाले चर एवं अचर ससार के ऊपर कोई एक असीमित तथा सर्वव्यापी शक्ति अवश्य है जो सबको नियत्रित करती है। साररूप में यह कहा जा सकता है कि असीम एवं चैतन्य शक्ति का समुच्चय ही भगवान है जो सर्वव्यापी है तथा सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हे—

ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता।
अखिल अमोघसक्ति भगवंता॥

1 श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, 10/2

×　　　　　　　　×

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी।
ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥[2]

आज का युग विज्ञान-प्रधान है तथा जब तक किसी बात की पुष्टि विज्ञान द्वारा नहीं हो पाती तब तक मनुष्य ऐसे प्रतिपादनों को मानने को तैयार नही होते—यद्यपि अध्यात्म और विज्ञान दोनों के कार्य-क्षेत्र अलग-अलग हैं तथा तुलना में विज्ञान अभी बहुत छोटा बच्चा है। अध्यात्म क्षेत्र आत्मा है जो दिव्य (सूक्ष्म) है। भगवान (शक्ति) भी सूक्ष्म है। सूक्ष्म के अध्ययन के लिए तत्वज्ञानियों की सूक्ष्म दृष्टि ही समर्थ हो सकती है, न कि भौतिक दृष्टि। अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण को अपना दिव्य रूप दिखलाने की प्रार्थना की। भगवान ने दिव्यरूप दिखलाया किन्तु वह कुछ नहीं देख सके। ध्यातव्य है निम्न श्लोक—

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशो ऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि चः ॥[3]

"हे पार्थ (अर्जुन) ! तू मेरे सैंकड़ों-हजारों अर्थात अनेक रूपों को देख, जो कि नाना प्रकार के भेद वाले और दिव्य अर्थात देवलोक में होने वाले अलौकिक हैं तथा नाना प्रकार के वर्ण और आकृति वाले हैं अर्थात जिनके नील, पीत आदि नाना प्रकार के वर्ण और अनेक आकार वाले अवयव हैं, ऐसे रूपों को देख।" और—

पश्यादि त्यान्वसून्रूद्रानश्विनौ मरूतस्था।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥[4]

"हे भारत ! तू द्वादश आदित्यों को, आठ वसुओं को, एकादश रूद्रों को, दोनों अश्विनी कुमारों को और उनचास मरूद्‌गणों को देख। तथा और भी जिन्हें मृत्युलोक (मनुष्यलोक) में तूने अथवा और किसी ने भी कभी नहीं देखा, ऐसे बहुत से आश्चर्यमय अद्‌भुत दृश्य देख।"

इस प्रकार भगवान ने श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के ग्यारहवें अध्याय के श्लोक 5, 6, 7 में चार बार 'पश्य' पद का प्रयोग कर अर्जुन को उनका दिव्य रूप देखन की आज्ञा दी, किन्तु वह कुछ नहीं देख सके। इस पर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्य चक्षु प्रदान किए और देखने की आज्ञा दी; जैसा कि निम्न श्लोक से प्रकट होता है—

---

2. मानस, उत्तरकाण्ड, 71 (2-4)
3. श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, 11/5
4. श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, 11/6

न तु मा शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥[5]

"तू मुझ विश्वरूपधारी परमेश्वर को इन प्राकृत नेत्रों से नहीं देख सकेगा। जिन दिव्य नेत्रों द्वारा तू मुझे देख सकेगा, वे दिव्य नेत्र (मैं) तुझे देता हू, उनके द्वारा तू मुझ ईश्वर के ऐश्वर्य और योग को अर्थात् अतिशय योग सामर्थ्य को देख सकेगा।"

वैज्ञानिक भी अब इस बात को स्वीकारने लगे हैं कि जड़ के अतिरिक्त चेतन शक्ति का पृथक अस्तित्व है जो भौतिक क्षेत्र से परे है। इस शक्ति की खोज करने के लिए विज्ञान भी अपना कार्य-क्षेत्र बदल रहा है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलिवर लॉज का कथन है कि "मुझे विश्वास है कि अब वह समय निकट आ गया है, जब कि विज्ञान को नए क्षेत्र में प्रवेश करना होगा। विज्ञान अब भौतिक जगत तक ही सीमित नहीं रहेगा। चेतना-जगत भी अब वैज्ञानिक प्रयोग-परीक्षण का महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है।" बीसवीं शताब्दी के महान वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्सटीन की मान्यता भी इसी प्रकार की है कि "मैं ईश्वर को मानता हूं। इस अविज्ञात सृष्टि के अद्भुत रहस्यों में ईश्वरीय शक्ति ही परिलक्षित होती है।" अब विज्ञान भी इस बात का समर्थन कर रहा है कि संपूर्ण सृष्टि का नियमन एक अदृश्य चेतन सत्ता कर रही है। रसायन शास्त्री डॉ. थमल डेविड पार्क्स भी अपने जीवन के अनुभवों को इस प्रकार प्रतिपादित करते हैं—"मेरे चारों ओर जितना भी दृश्य जगत है उसमें नियम और प्रयोजन देखता हूं। मुझे यह मान्यता निराधार जान पड़ती है कि सभी पदार्थ एवं पदार्थों से युक्त यह सृष्टि अकस्मात् मात्र परमाणुओं के संघात से बनी है। मैं तो सर्वत्र कण-कण में बुद्धि व्यवस्था का साम्राज्य देखता हूं—एक ऐसी बुद्धि जो सुपर है, अचिन्त्य-अगोचर है। उस महती बुद्धि को ही भगवान कहता हूं।"

शोध-निष्कर्ष के रूप में सर ए.ए. एडिमुन का कथन है कि "भौतिक पदार्थों के अन्तराल में एक चेतन शक्ति क्रियाशील है जिसे उसके प्राण-जीवन का आधार माना जा सकता है। अब तक हम इसके स्वरूप एवं क्रिया-कलाप से अवगत नही हो सके हैं, परन्तु उसके अस्तित्व को झुठलाया नहीं जा सकता है।" वैज्ञानिक मेक ब्राईट ने भी अपना अध्ययन-निष्कर्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि "परोक्ष जगत में एक ज्ञानयुक्त एवं इच्छायुक्त सत्ता के होने की पूरी सम्भावना है। विश्व की समस्त गतिविधियां इसी से संचालित हैं।" ब्रह्मांडीय चेतना के शोधकर्त्ता प्रो

5 श्रीमद्भगवद्गीता, 11/8

मर्फी ने कहा है कि "एक नए चिन्तन का प्रादुर्भाव हमारी शोध-प्रक्रिया से हं रहा है। मान्यता अब अधिक पुष्ट होती जा रही है कि अन्तरिक्ष ऊर्जा एवं पदाथ वस्तुतः एक ही तत्त्व हैं। उनका उद्गम किसी एक से हुआ है।" प्रसिद्ध दार्शनिव फ्रांसिस बेकन ने तो यहां तक कह दिया है कि "थोड़ी वैज्ञानिक बुद्धि तथा दार्शनिकता मनुष्य को नास्तिकता की ओर ले जाती है। किन्तु गम्भीर शोध बुद्धि एवं दार्शनिकता मनुष्य को आस्तिकता की ओर ले जाती है।" अतएव सृष्टि की नियामक सत्ता के संदर्भ में इन्कार करने से पूर्व गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

विज्ञान ने परमाणु की जो खोज की है उससे भी कण-कण में भगवान की मान्यता प्रतिपादित होती है । पदार्थ का छोटे से छोटा आंखों से दिखलाई देने वाला मात्र टुकड़ा असंख्य परमाणुओं का समुच्चय है। अब तक परमाणु के भी सूक्ष्म तत्व न्यूट्रांस, प्रोट्रांस एवं इलैक्ट्रांस को भी खोज लिया गया है जो परमाणु से भी सूक्ष्मतर होते हैं। परमाणु के नाभिक के विघटन से प्रचण्ड ऊर्जा (शक्ति) उत्पन्न होती है। हिरोशिमा का परमाणु बम-विस्फोट इसकी भयंकर विनाश शक्ति का उदाहरण हमारे सामने है। कुछ समय पूर्व से विज्ञान यह भी मानने लगा है कि प्रत्येक पदार्थ का एक प्रतिपदार्थ (एन्टीमेटर) भी होता है, जो प्रतिछाया रूप में सूक्ष्म संसार में रहता है। जैसे परमाणु के न्यूट्रान्स, प्रोट्रान्स एवं इलैक्ट्रान्स होते हैं, उसी प्रकार प्रतिपदार्थ के परमाणु के भी एन्टी न्यूट्रान्स, एन्टी प्रोट्रान्स तथा एन्टी इलैक्ट्रान्स (पोजिट्रान) होते हैं। डॉ. लियोन लैडरमैन (1965 ई.) ने एन्टी न्यूकिलियस की संरचना करके एन्टीएटम (प्रति परमाणु) का स्वरूप प्रदान किया है। वैज्ञानिकों की मान्यता है कि यदि परमाणु एवं प्रतिपरमाणु में किसी प्रकार टकराव हो जाए अथवा करा दिया जाए तो उस विस्फोट की शक्ति अकेले परमाणु की शक्ति से कई सौ गुनी होगी। जहां तक शक्ति की गतिशीलता का प्रश्न है, इसकी गति 1,86,000 मील प्रति सेकन्ड (प्रकाश की गति) बताई गयी है। क्वाण्टम थ्योरी के अन्तर्गत जो शक्ति के सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म कणों का अध्ययन करती है, इसका अध्ययन चल रहा है। इससे इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि यह शक्ति इतनी अनंत एवं गतिशील है कि उसका अनुमान लगाना साधारण व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं तथा उसे सर्वव्यापी मानकर नतमस्तक होने में ही संतोष होता है। संत तुलसीदास जी उस शक्ति का वर्णन करते हैं—

जय भगवंत अनंत अनामय।
अनघ अनेक एक करुणामय ॥[6]

---

6. मानस, उत्तरकाण्ड, 33 (1)

स्पष्ट ह कि प्रत्यक पदाथ के परमाणु म प्रचण्ड शक्ति छिपा हुई है। पृथ्वी, पहाड़, पत्थर, कोयला आदि धातु भी हमें जड़ दिखाई पड़ते हैं। महाकवि तुलसीदास जी के शब्दों में—

जौं न मिलिहि वरू गिरिजहि जोगू।
गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू ॥[7]

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अध्याय दस के पच्चीसवें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि स्थिर रहने वालों मे हिमालय मैं ही हूं। दृष्टव्य है—

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालय ॥[8]

विज्ञान इस बात को स्वीकार करता है कि प्रत्येक पदार्थ ऊर्जा का जमा हुआ (concentrate) रूप है। आईन्स्टीन के ऊर्जा समीकरण ($E=MC^2$) के अनुसार यदि एक ग्राम पदार्थ को पूर्णतया शक्ति में बदल दिया जाए तो उससे $2143x10^{10}$ (214 खरब 30 अरब) कैलोरी ऊष्मा उत्पन्न होगी। एक कैलोरी ऊष्मा का तात्पर्य एक ग्राम पानी का ताप एक डिग्री सैल्सियस वढ़ाने के लिए प्रयुक्त ऊष्मा की मात्रा से है। इसका अर्थ यह हुआ कि इससे दो लाख चौदह हजार तीन सौ टन शून्य डिग्री सैल्सियस वाले पानी को 100 डिग्री सैल्सियस तक खौलाया जा सकता हे। अभी तक वैज्ञानिक इस तरह की कोई तकनीक विकसित नहीं कर सके है, जिससे पदार्थ को पूर्णतया शक्ति में बदला जा सके और उसका पूरा-पूरा उपयोग किया जा सके।

हमारे तत्व-ज्ञानियों ने एकमात्र पृथ्वी के विषय में जो ब्यौरा दिया है वह चौका देने वाला है। उनके अनुसार पृथ्वी की ऊपरी परत लगभग चालीस मील मोटी है तथा इसके नीचे भूरस नामक तरल पदार्थ है। यह परत गर्म एवं तरल चट्टानों की है। इसके नीचे 700 मील मोटा भाग शिलावरण कहलाता है। शिलावरण के नीचे भी लोहे एवं पत्थर की मिली-जुली परते हैं जो लगभग 1100 मील मोटी है। इसकी परिधि 2500 मील एवं भार $66x10^{13}$ करोड़ टन है (अखण्ड ज्योति माह फरवरी, 1981 पृष्ठ 17)। वैज्ञानिक अभी इस स्तर की खोज नहीं कर सके हे। इसके साथ ही ब्रह्मांड में जितने तारे हैं, वे सभी उसी शक्ति से उत्पन्न हुए हे, जिसको अध्यात्म में ब्रह्म कहा जाता है। यह सम्पूर्ण संसार ब्रह्मा की माया से उत्पन्न है जिसमें अनेक प्रकार के चराचर जीव हैं। महाकवि तुलसीदास जी

---

7 मानस, वालकाण्ड, 70 (3)
8 श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, 10/25

ने कहा है

मम माया संभव संसारा।
जीव चराचर बिबिध प्रकारा॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए।
सब ते अधिक मनुज मोहि भाए॥[9]

कल्पना कीजिए, यदि यह सभी पदार्थ शक्ति में परिवर्तित हो जाएं तो कितनी शक्ति होगी जिसकी कल्पना मात्र से सिर चकराने लगता है। इसीलिए वेदों मे भगवान् को 'नेति-नेति' कहकर ही संतोष करना पड़ा और कण-कण में भगवान का प्रतिपादन किया। प्रस्तुत है मानस में प्रसंग—

सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर मान॥[10]

प्रसन्नता का विषय है कि विज्ञान ने एकपक्षी एवं कठोर दृष्टिकोण को छोड़कर चेतन-शक्ति के विषय में कार्य प्रारम्भ किया है तथा भविष्य में सम्पूर्ण नहीं तो कुछ और अधिक प्रतिपादन दे सकेगा। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे ऋषि-मुनियों एवं तत्व-दार्शनिकों ने जो प्रतिपादन दिए हैं, उन्हें हम केवल मात्र कल्पना ही मान बैठे। प्रत्येक जड़ एवं चेतन भगवान का ही अंश है तथा हमें उसमें भगवान के दर्शन करने चाहिए—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥
× × ×
अस संजोग ईस जब करई।
तबहुं कदाचित सो निरूअरई॥[11]

जड़ एवं चेतन पदार्थ के कण-कण में शक्ति का विपुल भंडार होना वैज्ञानिक तथ्यों से प्रमाणित है। वैज्ञानिक इस बात को स्वीकार करते हैं कि सृष्टि के अद्भुत रहस्यों में ईश्वरीय शक्ति परिलक्षित है तथा कण-कण में अचिन्त्य, अगोचर 'सुपर' बुद्धि विद्यमान है। भौतिक पदार्थों के अन्तराल में एक क्रियाशील चेतन शक्ति के दर्शन करते है तथा अन्तरिक्ष ऊर्जा एवं भौतिक पदार्थों को एक ही तत्व मानते हैं। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहा कि जो ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त एवं बलयुक्त वस्तु है उसको तू मेरे ही तेज (योग) के अंश से उत्पन्न हुआ समझ—

9. मानस, उत्तरकाण्ड, 85 (2)
10. मानस, बालकाण्ड, 12 (दोहा)
11. मानस, उत्तरकाण्ड, 116 (1-4)

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्देवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥[12]

तदन्तर भगवान श्रीकृष्ण ने प्रतिपादित किया है कि मेरे विना कोई भी चर, अचर प्राणी नहीं है अर्थात चर, अचर सब कुछ मैं ही हूं—

यच्चापि सर्वभूतानां वीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्यया भूतं चराचरं ॥[13]

उन्होंने अपने को ही सृष्टि का मूल कारण बतलाया है तथा कहा है कि समस्त सृष्टि मुझसे ही प्रवृत्त हो रही है—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्व प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां वुधा भावसमन्विता ॥[14]

संत तुलसीदास जी ने भी स्वीकारा है कि सम्पूर्ण चराचर जगत् उस शक्ति द्वारा ही निर्मित है—

अग जगमय जग मम उपराजा।
नहिं आचरज मोह खगराजा ॥[15]

अतः उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हमारे तत्वदर्शियों का कण-कण में भगवान होने का प्रतिपादन संदेह से परे एवं विज्ञान-सम्मत है। कुछ व्यक्ति विज्ञान के नाम पर भगवान के अस्तित्व को नकार देते हैं या प्रमाणस्वरूप अपने भौतिक चक्षुओं से दिखलाई देने का दुराग्रह कर बैठते हैं। ऐसी विचारधारा वाले व्यक्तियों को प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रान्सिसी बेकन के पूर्वोक्त परामर्श पर मनन करना चाहिए। उनके द्वारा इस प्रकार अस्वीकारने से भगवान की प्रतिष्ठा न तो घटती है ओर न बढ़ती है। जैसे किसी रेडियो स्टेशन से निर्धारित कार्यक्रमानुसार संगीत का प्रसारण चल रहा है, किन्तु रेडियो के अभाव में हमको सुनाई नहीं दे रहा है, इस आधार पर हमारे यह कहने से कि हमारे, आस-पास संगीत व्याप्त नहीं है, संगीत के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उस समय संगीत व्याप्त है तथा उसे हम सुन सकते हैं, बशर्ते कि उसको पकड़ने का संयंत्र (रेडियो) हमारे पास हो। इसी प्रकार भगवान कण-कण में व्याप्त हैं, भले ही उसे आप मान्यता दें या नही। यदि भगवान के प्रति श्रद्धा और विश्वास नामक संयंत्र आपके हृदय में है तो उसकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति आपको हो सकती है। भगवान दिव्य है तथा

---

12 श्रीमद्भगवद्गीता, 10/41
13 वही—, 10/39
14 वही—, 10/8
15 मानस ———— 59 (3)

नके दर्शन दिव्य चक्षुओं से ही संभव हैं इन भौतिक चक्षुओं से तो उस दिव्य की अनुभूति मात्र से ही संतोष करना पड़ेगा या फिर संजय तथा अर्जुन-स्तर की अध्यात्म-साधना कर दिव्य दृष्टि अर्जित करनी होगी।

यह सर्वविदित है कि हमारा शरीर और यहां तक कि सम्पूर्ण सृष्टि का आरंभ भी पंचमहाभूतों –आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के द्वारा हुआ है। क्योंकि स्वयं ईश्वर ने ही उनको बनाया है, इसलिए हमें विवश होकर यह अनुमान करना पड़ता है कि उसने अपने में से ही बनाया होगा। 'मृत्तिकेत्येव सत्यम्' (सच तो यह है कि मृत्तिका ही वास्तविक उपादान है)–इस उपनिषत्-सिद्धांत के अनुसार पृथ्वी जल से उत्पन्न हुई है या जल का ही विकार है, अतः जलरूप ही है, इसी प्रकार जल अग्नि से उत्पन्न हुआ अथवा जल का रूपान्तर है; अतः जलरूप ही है; अग्नि भी वायु से उत्पन्न अथवा प्रकट हुई है, इसलिए वायु रूप ही है; वायु आकाश से प्रादुर्भूत अथवा अभिव्यक्त हुई, अतः आकाश रूप है और अंत में आकाश ईश्वर से उत्पन्न हुआ और ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है, अतः ईश्वर से अभिन्न है। इस प्रकार सब पदार्थों की ईश्वर से उत्पत्ति और ईश्वर के साथ एकता सिद्ध की जा सकती है।

अब हम शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध-तन्मात्राओं पर इसी शैली से विचार करें। आकाश में एक ही गुण शब्द है, वायु में शब्द और स्पर्श दो हैं, अग्नि में शब्द, स्पर्श और रूप तीन हैं, जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस चार हैं तथा पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध पांचों गुण हैं। इनकी उत्पत्ति आदि को जानने के लिए हमें इन गुणों का विश्लेषण करना होगा। पृथ्वी से प्रारम्भ करके हम देखेंगे कि इसका पांचवां गुण गंध इसके पूर्ववर्ती भूत-जल में नहीं था और बिल्कुल नया है। किन्तु, श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में वर्णन है कि **नासतो विद्यते भावः** और पदार्थ विज्ञान भी यही कहता है कि "जो पदार्थ पहले नहीं था, वह नए सिरे से उत्पन्न नहीं हो सकता" क्योंकि पदार्थ नष्ट नहीं होता बल्कि एक रूप से दूसरे रूप में केवल रूपांतरित होता है। अतः हमें या तो गन्ध को मिथ्या मानकर निकाल बाहर करना होगा, अथवा उसकी जल में भी सत्ता माननी पड़ेगी। पहले पक्ष में पृथ्वी स्वयं मिथ्या हो जावेगी क्योंकि गन्ध ही उसका अनन्य साधारण लक्षण है (गन्धवती पृथिवी) और उसका अस्तित्व जल में भी मान लेने पर पृथ्वी और जल (समानगुण होने के कारण) एक रूप हो जावेंगे।

इसी प्रकार यदि हम चौथे गुण रस को लें, जो सर्वप्रथम जल में दिखाई देता है तो हमें इसी प्रक्रिया का अनुसरण करके या तो इसे मिथ्या समझकर निकाल देना पड़ेगा अथवा अग्नि में पहले से विद्यमान मानना पड़ेगा। इसका परिणाम यह होगा कि पृथ्वी और जल या तो मिथ्या माने जाकर बहिष्कृत कर दिए जाएंगे, अथवा

उन्हे अग्निरूप मानना पड़ेगा। अब तीसर गुण रूप को लीजिए या तो इस मिथ्या कहकर निकाल दीजिए अथवा इसका अस्तित्व वायु में भी मानिए। इस पद्धति से दूसरे गुण स्पर्श का या तो मिथ्या कहकर बाहर कीजिए अथवा आकाश में इसकी अव्यक्त रूप में सत्ता स्वीकार कीजिए। इस प्रकार या तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु को मिथ्या मानना पड़ेगा अथवा आकाश रूप। और अंत में इसी तर्क का प्रयोग करके हमें प्रथम गुण शब्द को या तो मिथ्या मानकर निकाल बाहर करना होगा अथवा उसकी ईश्वर में पहले से ही अव्यक्त रूप में स्थिति माननी पड़ेगी। इस प्रकार पंचभूतों को या तो मिथ्या मानकर हटाइए अथवा उन्हे ईश्वर का रूप मानिए।

यूक्लियड के प्रथम स्वयं सिद्ध नियम 'तदभिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्व नियम' अर्थात जो वस्तुएं किसी एक वस्तु के बराबर होती है, वे परस्पर भी बराबर होती है, के अनुसार पृथ्वी (विश्व)=ईश्वर, अर्थात दोनों समान ही नहीं हैं बल्कि दोनों सर्वप्रकार से एक हैं।

अतः विश्व में ईश्वर की सर्वव्यापकता इस बात को निर्विवाद रूप से सिद्ध करती है कि ईश्वर ही इस संसार का उपादान कारण है। यह बात बिल्कुल सत्य है कि जगत् का रचयिता भी ईश्वर ही है; क्योंकि उसके अतिरिक्त कोई दूसरा है ही नहीं जो उसे रच सकता है।

धर्म का अर्थ है—धारणा। जीवन में ऐसे नैतिक मूल्यों की धारणा, जिससे हमारा कर्म श्रेष्ठ हो और हमारे तथा समाज के जीवन में शान्ति एवं सुख के बेल फले-फूले, धर्म है। धर्म मनुष्य को उसका कर्त्तव्य सुझाता है ताकि उसका निजी जीवन, पारिवारिक जीवन तथा सामाजिक जीवन का कार्य ठीक तरह से चले और सभी के साथ उसका नाता भाई-चारे का तथा दृष्टिकोण कल्याण का बना रहे और प्रभु-प्रीति बने रहने से, अपनी वृत्ति सात्विक रहे। धर्म को विज्ञान (Science) की भी संज्ञा दी जाती है।

यद्यपि धर्म और विज्ञान दोनों का लक्ष्य मनुष्य के सुख की वृद्धि करना है। किन्तु इनमें एक अन्तर भी है कि वैज्ञानिक तो वर्तमान लौकिक जीवन को अधिक सुखी एवं सुविधा-सम्पन्न बनाने का यत्न करता है जबकि धर्म इहलौकिक जीवन के अतिरिक्त मरणोपरांत जीवन के सुख को भी बहुत महत्व देता है। महाकवि तुलसीदास जी ने भी भक्ति (धर्म) और विज्ञान दोनों के ही महत्व को स्वीकारा है जिसको उन्होंने श्रीराम के द्वारा सुतीक्ष्ण मुनि को वरदान स्वरूप वर्णन किया है—

अबिरल भगति बिरति बिग्याना।
होहु सकल गुन ग्यान निधाना॥[16]

---
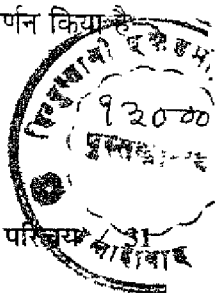
16 मानस, अरण्यकाण्ड, 10 (13)

विज्ञान ने मनुष्य की बुद्धि का विकास तो दिया है परन्तु बुद्धि की दिव्यता छीन ली है। उसने मनुष्य को बिजली और अणुशक्ति तो दी है किन्तु उससे आत्मिक शक्ति ले ली है। विज्ञान ने साधन तो जुटाएं हैं परन्तु आध्यात्मिक साधना को मिटा दिया है। उसने कर्म में यांत्रिक कुशलता तो लाई है किन्तु धार्मिक कुशलता को नष्ट किया है। उसने अन्धश्रद्धा को तो मिटाया है परन्तु मनुष्य को गोला-बारूद देकर आतंक और अत्याचार को बढ़ाया है। जिस तरह से विज्ञान यह बतलाता है कि इस क्रिया (action) की प्रक्रिया (reaction) क्या होगी, उसी प्रकार से परमात्मा भी आध्यात्मिक जगत् के नियम बताते हैं। विज्ञान भौतिक जगत् तक सीमित है। ईश्वरीय ज्ञान आध्यात्मिकता की खोज है। जिस प्रकार विज्ञान के नियम प्रत्येक मनुष्य तथा प्रत्येक स्थान पर लागू होते हैं, इसी प्रकार ईश्वरीय विज्ञान के नियम प्रत्येक स्थान एवं प्रत्येक मनुष्य पर लागू होते हैं। जैसे कोई मनुष्य देह-अभिमानवश क्रोध करता है तो उसका परिणाम दुःख अवश्य होता है, चाहे हिन्दू हो या मुस्लिम, सिक्ख हो या ईसाई—प्रत्येक व्यक्ति पर यह नियम लागू होता है। भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला में प्रयोग किया जाता है। आध्यात्मिक विज्ञान की प्रयोगशाला हमारा जीवन है। भौतिक विज्ञान साकार सृष्टि तक सीमित है परन्तु परमात्मा तो साकार सृष्टि से पार, जो अखण्ड ज्योतिमय तत्व हैं, उसका भी अनुभव कराते है।

विज्ञान का अपना अलग ही अध्ययन क्षेत्र अथवा कार्य-क्षेत्र है। विज्ञान प्रकृति, प्राकृतिक शक्तियों, परिवर्तनों अथवा परिणामों का अध्ययन एवं अनुशीलन करता है। वह मनुष्य को भौतिक सुख उपलब्ध कराता है। अतः इसका अपना महत्व तथा स्थान है। धर्म मनुष्य को अभौतिक अथवा प्रकृति से परे के क्षेत्र मे ले जाता है। वह मनुष्य का ध्यान आत्मा की ओर आकर्षित करता है तथा आपस में आत्मिक नाते से विश्व-बन्धुत्व की भावना पैदा करता है। वह इस कार्य मे सफल रहा है या नहीं वह अलग बात है। धर्म मनुष्य के व्यवहार, व्यापार-विचार इत्यादि के लिए कोई नियम अथवा मर्यादाएं निर्धारित करता है तथा उसे एक उच्च्य लक्ष्य प्रदान करके महानता की ओर प्रेरित करता है। वह उसका नाता परमात्मा से जोड़ कर इन्द्रियातीत सुख अथवा आनंदावस्था में ले जाना चाहता है। विज्ञान मनुष्य की इच्छाओं को पूर्ण करने के साधन ढूंढता है किन्तु धर्म मानव की इच्छाओ को अंकुश में रखने का यत्न करता है। अतः विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि धर्म और विज्ञान परस्पर पूरक हैं, वे दोनों ही मानव के लिए अनिवार्य है—विज्ञान सुख के लिए तथा धर्म आचरण एवं शान्ति के लिए।

2
साहित्य और विज्ञान

अनादिकाल से नाना जातियां अपने विविध प्रकार के संस्कारों, रीति-रिवाजों आदि के साथ भारत मे आती रही हैं। यहां भी पहले से ही अनेक प्राकर के मानवीय समूहों के विद्यमान होने के प्रमाण हैं। इन समूहों के बीच पाए जाने वाले भेद शनै शनैः समाप्त होते चले गए और कालान्तर में भाइयों की तरह एक दूसरे में रच-पच गए। आज का भारतवर्ष विविध समूहों और उनकी भाषाओं, धर्मों, रीति-रस्मों का जीवन्त एवं समन्वित रूप है।

"काल्पनिक प्रेत को घूंसा मारना बुद्धिमानी का काम नहीं है। नगरों और गावों में फैला हुआ, सैंकड़ों जातियों और सम्प्रदायों में विभक्त, अशिक्षा, कुशिक्षा, दारिद्रय और रोग से पीड़ित मानव-समाज आपके सामने उपस्थित है। भाषा और साहित्य की समस्या वस्तुतः उन्हीं की समस्या है। शताब्दियों की सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक गुलामी के भार से दवे हुए ये मनुष्य ही भाषा के प्रश्न हैं और संस्कृति तथा साहित्य की कसौटी हैं। मनुष्य ही बड़ी चीज है, भाषा उसी के सेवा के लिए है। साहित्य-सृष्टि का यही अर्थ है।"[1] अतः जो साहित्य मनुष्य-समाज को रोग-शोक दारिद्रय-अज्ञान तथा परमुखापेक्षिता से बचाकर उसमें आत्मबल का संचार करता है, वह निश्चय ही अक्षय मानवीय-कोष है। उसी महत्वपूर्ण साहित्य का सर्जन तथा उसका निरंतर संवर्धन हमारा प्रकाम्य है।

इस देश के करोड़ों मनुष्यों में आत्म चेतना भरने का काम बहुत दिनों से सस्कृत भाषा करती आई है और आगे भी करती रहेगी, ऐसी सम्भावना है। संस्कृत

1. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है : हिन्दी संचयन, पृष्ठ-3

भारतवर्ष की अपूर्व महिमाशालिनी भाषा है वह हजारों वर्षों से दीर्घकाल में और लाखों वर्ग किलोमीटर में फैले हुए मानव-समाज के सर्वोत्तम मस्तिष्कों में विहार करने वाली भाषा है। उसका साहित्य विपुल है। उसका साधन गहन है एवं उसका उद्देश्य साधु है। उस भाषा को हिन्दी माध्यम से समझने का प्रयत्न करना भी एक तपस्या है। संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की बढ़िया पुस्तकों के जितने उत्तम अनुवाद अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन आदि भाषाओं में हुए हैं, उतने हिंदी मे नहीं हुए। इस प्रकार हमारे प्राचीन साहित्य में ज्ञान का जो विपुल भंडार है उससे पाश्चात्य विद्वान लाभ उठा रहे हैं, अपनी चहुंमुखी प्रगति कर रहे हैं परन्तु खेद है कि हम भारतीय ज्ञान बटोरने और तलाश करने के लिए विदेशी भाषाओं की अनूदित पुस्तकों से लाभ उठाने का प्रयास करते हैं। यह न समझिए कि जो लोग संस्कृत बहुल भाषा का व्यवहार कर रहे हैं, वे ऐसा किसी सम्प्रदाय के प्रति द्वेशवश अथवा घृणावश करते हैं। **हिन्दी को संस्कृत से विछिन्न करके देखने वाले उसकी अधिकांश महिमा से अपरिचित हैं।**

महान् कार्य के लिए विशाल हृदय होना चाहिए। हिन्दी का साहित्य-निर्माण सचमुच एक महान् कार्य है, क्योंकि उससे करोड़ों का भला होना है। अपना यह देश कोई नया साहित्यिक प्रयोग करने नहीं निकला है। इसकी साहित्यिक परम्परा अत्यंत दीर्घ, धारावाहिक और गम्भीर है। दीर्घकाल से ज्ञान के आलोक से वंचित मनुष्यों को हमें ज्ञान देना है। शताब्दियों से गौरवहीन मनुष्यों में हमें आत्मगरिमा का संचार करना है। अकारण अपमानित मूक नरकंकालों को वाणी देनी है। रोग, शोक, अज्ञान, भूख, प्यास, परमुखापेक्षिता तथा मूकता से मानव-जाति का उद्धार करना है। साहित्य का यही काम है। आप क्या लिखेंगे, कैसे लिखेंगे और किस भाषा में लिखेंगे, इन प्रश्नों का निर्णय इन्हीं की ओर देखकर करना हैं। साहित्य के साधकों को मनुष्य की सेवा करनी है तो मानव बनना होगा।

हिन्दी साधारण जनता की भाषा है। जनता के लिए ही उसका जन्म हुआ था और जब तक वह अपने को जनता के काम की चीज बनाए रहेगी, जन-चित्त मे आत्मबल का संचार करती रहेगी, तब तक उसे किसी से भय नहीं है। वह करोड़ों नर-नारियों की आशा और आकांक्षा, क्षुधा और पिपासा, धर्म और विज्ञान की भाषा है। भाषा और साहित्य का सम्बंध माँ-बेटे का है, क्योंकि भाषा साहित्य की जननी है। गणितीय दृष्टिकोण से हम कह सकते हैं कि साहित्य भाषा का समुच्चय (Sub-set) है, किन्तु भाषा साहित्य का समुच्चय नहीं है।

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है (Change is the law of nature)—यह नियम भाषा पर भी लागू होता है। भाषाओं में परिवर्तन होना ही विकास है।

भाषाओं के इतिहास से इस परिवर्तन का सहज ही ज्ञान हो जाता है। वास्तविकता तो यह है कि जितने व्यक्ति हैं, भाषाएं भी उतनी ही हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि किन्हीं भी दो व्यक्तियों की भाषा कदापि एक सी नहीं हो सकती है। अन्तर केवल उच्चारण मात्र में ही न होकर, शब्द भण्डार और यहां तक कि वाक्य विन्यास में भी होता है। एक वर्ग के दो व्यक्तियों की भाषा में भी पर्याप्त अन्तर होता है, उदाहरणार्थ—प्रसाद, प्रेमचन्द तथा निराला को लिया जा सकता है; किन्हीं भी दो की भाषा एक जैसी नहीं ठहरती। एक ही परिवार की भाषाओं में कालान्तर में इतना परिवर्तन हो जाता है कि विषमताओं के कारण एक परिवार की होने में भी संदेह होने लगता है; उदाहरण के लिए—संस्कृत से विकसित भाषाएं ली जा सकती हैं। आज हिन्दी, गुजराती, बंगला और मराठी की संरचनात्मक दृष्टि इतनी विभिन्न है कि सहज भाव से इनकी मूलभूत एकरूपता पर विचार नही आ सकता।

भाषा का कोई अन्तिम स्वरूप नहीं होता। यह सदा आवश्यकतानुसार परिवर्तित होती रहती है। कभी भी नहीं कहा जा सकता कि यह भाषा का अन्तिम स्वरूप है। भाषा को यहां जीवित भाषा समझना चाहिए। भाषा की यही परिवर्तनशीलता, विकास है। भाषा की विकासशीलता के दो पक्ष हैं—भौतिक एव आत्मिक। प्रथम का तात्पर्य उच्चरणावयवों की परिवर्तनशीलता है, चाहे वह सूक्ष्मतम ही क्यों न हो; साथ ही सम्पर्क-भेद के कारण भी भाषा में परिवर्तन होता है। भाषा का यह परिवर्तन उसके बाह्य रूप का होता है। आत्मिक से तात्पर्य भाषा के वस्तु पक्ष से है जो मनःस्थिति से सम्बद्ध है।

भाषा का साहित्य से घनिष्ठ सम्बंध है। एक समय था जब दोनों एक-दूसरे के प्रतिपक्षी हो गए थे क्योंकि साहित्यकार भाषा को आत्मा के नाम पर द्वितीय कोटि की समझते थे और वे उसे बाह्य उपकरण मात्र मानते थे। किन्तु यह भूलना भी भूल ही है कि भाषा के विना साहित्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। आकृति मूलक समीक्षा (Formal oriticism) से इन दोनों की दूरियों से कम होने की सम्भावना बढ़ गई है। भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को ही भाषा-विज्ञान कहा जाता है। भाषा-वैशिष्ट्य को बढ़ाने में भाषाविज्ञान महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है; साथ ही भाषा-वैशिष्ट्य के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए साहित्य सामग्री प्रस्तुत करता है। भाषा वैज्ञानिक भाषा सौन्दर्य का उद्घाटन करता है। भाषा विज्ञान की शैली विज्ञानशाखा आलोचना के क्षेत्र में उपादेय सिद्ध हो रही है। इस प्रकार आंशिक रूप में ही सही—दोनों के सम्बंध को झुठलाया नहीं जा सकता है।

प्राचीन भाषाएं—संस्कृत, अवेस्ता या ग्रीक साहित्य से ही उपलब्ध हुई हैं,

जिनके आधार पर हम कह सकने में समर्थ है कि इन तीनों की जननी एक ही मातृभाषा है। ठीक इसी प्रकार से किसी भाषा के ऐतिहासिक विकास के लिए भी साहित्य ही सहायक होता है। आदिकालीन साहित्य की अनुपस्थिति में भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन असम्भव हो जाता। कहने का तात्पर्य है कि भाषाविज्ञान को साहित्य की सामग्री का पग-पग पर आश्रय लेना पड़ता है। जीवित भाषा के रूप में कोई शब्द कहां से आया, इसके लिए भी हमें साहित्य का सहारा लेना पड़ता है; उदाहरणार्थ—नटखट बच्चों की निम्न पंक्तियों के विकास के लिए—

ओना मासी धम,
बाप पढ़े न हम।

प्राचीन साहित्य के शाकटायन के सूत्र 'ॐ नमः सिद्धम्' को भाषा विज्ञान का खोजने के लिए साहित्य पर ही आश्रित रहना पड़ेगा। पारिभाषिक शब्दावली म कहना चाहें तो कह सकते हैं कि विभिन्न शब्द-रूप जब अपने पुराने रूप की ओर संकेत करते हैं तो हमें नए रहस्यों के उद्घाटन के लिए प्राचीन साहित्य की सहायता की अपेक्षा रहती है।

बोलियों (dialects) में जब पर्याप्त साहित्य रचा जा चुका होता है, तो वे भाषा की श्रेणी में आ जाती हैं। यह आवश्यक नहीं कि केवल साहित्य के सहारे ही कोई बोली भाषा बन ही जाए; फिर भी साहित्य एक महत्वपूर्ण योगदान करता है। संस्कृत को भाषा बनने के लिए अनेक बोलियों को आपस में जोड़ना पड़ा होगा। विद्यापति की मैथिली, सूर की रचनाओं में ब्रज तथा तुलसी की रचनाओं मे अवधी के प्रयोग ने इनकी गरिमा को वास्तव में अक्षुण्ण बना दिया। ये किसी भाषा से टक्कर ले सकने में समर्थ हैं। यह अवश्य है कि इनको भाषा की गरिमा प्राप्त नहीं हो सकी। केवल साहित्य और वह भी कविता के क्षेत्र तक सीमित रह गई। सीधे रूप में कहा जा सकता है कि साहित्य से भाषा को, निश्चित रूप से, स्थायित्व एवं व्यापकता प्राप्त होती है।

विज्ञान का शब्दिक अर्थ है—विशिष्ट ज्ञान। अर्थात किसी विशिष्ट विषय के तत्वों या सिद्धांतों आदि का विशेष-रूप से प्राप्त किया हुआ ज्ञान विज्ञान कहा जाता है। 'विज्ञान' अंग्रेजी के शब्द 'साइंस' का पर्यायवाची शब्द है। साइंस लैटिन शब्द सियो (Scio) से निकला है; जिसका अर्थ है—जानना। अतः साइंस का शब्दार्थ 'ज्ञान' होता है। यह साइंस शब्द उस विशिष्ट ज्ञान के लिए प्रयुक्त होता है जो ठीक क्रम से संग्रहीत हो और किसी नियम या क्रम के अनुसार प्रतिबद्ध हो—

ग्यान अगम प्रत्यूह अनका।

साधन कठिन न मन कहूँ टेका ।।[2]

विज्ञान बोलियों की सीमाएं तोड़ने में सर्वाधिक योगदान करता है। विज्ञान ने दूरी को कम कर दिया है। यातायात के साधनों से महीनो में होने वाली यात्राए दिनों और घण्टों और अब तो क्षणों में होने लगी है। इस प्रकार विभिन्न भापा-भाषी क्षेत्रों का सम्पर्क आसानी से हो जाता है। सामाजिक कारणों—खेलकूद, विवाह सम्पन्नता आदि, धार्मिक अनुष्ठानों आदि में दूर के लोग आज इसी कारण आसानी से एकत्र हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य है कि आज का व्यक्ति अपनी बोलियो तक ही सीमित नहीं है। दूसरे, तकनीक बढ़ने से भी भाषा का उद्धार हुआ है। आज एक छोर से दूसरे छोर तक परिनिष्ठित भाषा में अनेक पुस्तकें मिलती है। समाचार पत्रों, पत्रिकाओं आदि से भाषा का लिखित रूप सामने आता है। इनके सहारे भाषा का प्रसार किसी से छिपा नहीं है। दूसरी ओर ट्रांजिस्टर, टेलीविजन तथा चित्रपट आदि सभी विज्ञान की देन है जिनका कि भाषा के सुनने वाले रूप से सीधा सम्बध है और प्रसार का अच्छा माध्यम है। इस प्रकार हम देखते है कि अनेक कारणों से बोलियां भाषा में परिणत होती दिखाई देती हैं और बोलियो को महत्व मिलता है। बोली और भापा मे अल्प अन्तर होते हुए भी अनेक कारण बोलियों को भाषा की संज्ञा दिलाने में कार्य करते ही हैं। बोलियों में भेद का अवकाश अधिक रहने के कारण वैज्ञानिकों के लिए बोली (dialect) की अपेक्षा भाषा अधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रकार बोलियों से भाषा, भाषा से साहित्य और साहित्य से भाषा-विज्ञान की एक शृंखला बन जाती है जिनके विकास में सहायक होता है—विज्ञान। अतः मेरे विचार से साहित्य और विज्ञान का घनिष्ट सम्बध है। विज्ञान भाषिक एकीकरण का सबसे समर्थ और सबल माध्यम है।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि किसी विशिष्ट विषय के तत्वों या सिद्धांतों आदि का विशेष रूप से प्राप्त किया हुआ ज्ञान 'विज्ञान' होता है। यह विशेष ज्ञान प्रयोग और निरीक्षण के द्वारा प्राप्त होता है। ये प्रयोग और निरीक्षण इन्द्रियों के द्वारा होते हैं। आंखों से देखकर, कानों से सुनकर, नाक से सूंघकर, हाथ या शरीर से स्पर्श कर हम विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करते हैं। "विज्ञान का जो कुछ ज्ञान हमें प्राप्त होता है, वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इन्द्रियों के द्वारा ही होता है। वस्तुतः हमारी इन्द्रियां ही हमारे ज्ञान के द्वार हैं। इस संसार के सारे पदार्थों का वास्तविक ज्ञान केवल इन्द्रियों के द्वारा ही प्राप्त होता है। इन्द्रियो

2 मानस, उत्तरकाण्ड, 44 (2)

के सिवा ज्ञान प्राप्त करने का अन्य मार्ग नहीं है।

विज्ञान के अध्ययन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात निरीक्षण-शक्ति की वृद्धि करना है। विज्ञान के लिए सर्वप्रथम निरीक्षण करने की शक्ति को जागृत कर उसे परिवृद्ध करने की आवश्यकता होती है। वस्तुतः वही अच्छा वैज्ञानिक हो सकता है, जिसमें निरीक्षण की अद्भुत शक्ति विद्यमान हो। इस निरीक्षण-शक्ति के साथ-साथ यदि उसमें प्रयोग करने की क्षमता और निष्कर्ष निकालने का पर्याप्त चातुर्य तथा बुद्धि भी हो, वह एक उच्च कोटि का वैज्ञानिक हो सकता है। प्रयोगों के करने और उनसे निष्कर्ष निकालने के ढंग को वैज्ञानिक विधि कहते हैं। वैज्ञानिक विधि से जो खोज की जाती हैं, उसे वैज्ञानिक अनुसंधान कहते हैं। वैज्ञानिक अनुसंधान से जो बातें प्रतिपादित होती हैं, उनसे ही विज्ञान का ज्ञान प्राप्त होता है। वैज्ञानिक विधि का मुख्य लक्षण प्रयोग है। प्रयोग करो, यही विज्ञान का सिद्धांत है।

वैज्ञानिक का एकमात्र उद्देश्य सत्य की खोज है, जिसे वे प्रयोग, निरीक्षण तथा अनुमान के द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। विज्ञान वास्तव में मस्तिष्क की उपज है। वैज्ञानिक बुद्धि द्वारा सब बातों की परीक्षा करता है और वस्तुतः इसी में उसकी शक्ति है। अनेक प्रयोगों का सम्पादन कर वैज्ञानिक कुछ तथ्यों को एकत्र करता है। उन तथ्यों को सम्बद्ध करके वह उनकी व्याख्या करने की चेष्टा करता है। वह यह जानने की कोशिश करता है कि ये घटनाएं ऐसे क्यों और कैसे होती हैं ? इस प्रकार इन घटनाओं की व्याख्या करने की चेष्टा में अभिकल्पना (Hypothesis) का प्रतिपादन करना पड़ता है। अतः कुछ सम्बद्ध घटनाओं की व्याख्या करने की चेष्टा ही अभिकल्पना (अनुमान) है।

अभिकल्पना के प्रतिपादन के बाद नई घटनाओं के निरीक्षण की चेष्टाए होती हैं, जिनका इस अभिकल्पना से प्रतिपादन हो सके। यदि इन घटनाओं से अनुमान का प्रतिपादन होता है तो अभिकल्पना की सत्यता बढ़ जाती है और अभिकल्पना (अनुमान) सिद्धांत (Theory) हो जाता है। फिर हम सिद्धांत की सत्यता के आधार पर तर्क करते हैं कि अमुक-अमुक घटनाएं घटित हो सकती हैं।

विज्ञान के अन्तर्गत ज्ञान का एक बहुत विस्तृत भण्डार भरा पड़ा है। सुविधा की दृष्टि से इस विज्ञान को विभिन्न विभागों में विभाजित किया गया है। यद्यपि विषय के विवेचन की दृष्टि से विज्ञान के दो प्रधान अन्तर्विभाग हैं—(1) मौलिक या तात्त्विक विज्ञान (Fundamental Science) जिसके अन्तर्गत गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विाान, समाज-विज्ञान और मनोविज्ञान तथा (2)

3. श्री फूलदेव सहाय वर्मा : विज्ञान और उसका महत्व : हिन्दी संचयन, पृष्ठ-182

व्यावहारिक विज्ञान (Applied Science) जिसमें नक्षत्र-विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, खनिज विज्ञान, जन्तु-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, भूगोल और वायुमंडल-विज्ञान। व्यावहारिक-विज्ञान के ज्ञान के लिए मौलिक विज्ञानों का ज्ञान आवश्यक है। किन्तु अध्ययन की दृष्टि से तीन वर्गों में रखने की परिपाटी चल निकली है : (क) प्राकृतिक-विज्ञान (Natural Sciences); जैसे—भौतिक विज्ञान, जीव-विज्ञान, रसायन-विज्ञान; (ख) सामाजिक-विज्ञान (Social Sciences); जैसे—समाज-शास्त्र, राजनीति शास्त्र और (ग) मानविकी (Humanities) जैसे—साहित्य, चित्रकला और संगीतकला आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान और साहित्य में एक अटूट सम्बंध है।

भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है तो वह भाषा विज्ञान कहलाता है। भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लिए जीवित भाषाओं को छोड़कर सम्पूर्ण सामग्री साहित्य से प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि भाषा विज्ञान के तुलनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन के लिए सामग्री साहित्य से प्राप्त होती है। प्राचीन भाषाएं—संस्कृत, अवेस्ता या ग्रिक साहित्स से ही उपलब्ध हुई हे। किसी भाषा के ऐतिहासिक विकास के लिए भी साहित्य ही सहायक होता है। आदिकालीन साहित्य की अनुपस्थिति में तो भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन असम्भव हो जाता। भाषा के विना साहित्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। 'रामचरितमानस' के अन्त में तुलसीदास जी ने 'मानस' को विज्ञान स्वीकारा है—

> **पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्तिप्रदं**
> **मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।**
> **श्रीमद्रामचरितमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये**
> **ते संसारपतंगघोरकिरणेर्दह्यन्ति नो मानवः॥**[4]

भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है और दूसरी विशेषता उसमें धार्मिक भावों की प्रचुरता। जीवन के अनेक क्षेत्रों में धर्म को स्थान दिया गया है। धर्म में धारण की शक्ति है; अतः केवल अध्यात्म पक्ष में ही नहीं, लौकिक आचार-विचारों तथा राजनीति तक में उसका नियंत्रण स्वीकारा है। "वेदों में एकेश्वरवाद, उपनिषदों में ब्रह्मवाद तथा पुराणो मे अवतारवाद और बहुदेववाद की प्रतिष्ठा जन-समाज में हुई है और तदनुसार हमारा धार्मिक दृष्टिकोण भी अधिकाधिक विस्तृत तथा व्यापक होता गया है।"[5]

---

4 मानस, उत्तरकाण्ड, 130 (2)

5 श्री श्यामसुन्दरदास : भारतीय साहित्य की विशेषताएं : हिन्दी संचयन, पृष्ठ-26

विना सा च के हम अनसधान नहीं कर सकते कि पौराणिक एव वैदिक काल म विनान का विकास किस सीमा प था के भाव स प्रेरित होकर जिस शिव और सुन्दर साहित्य का सृजन हुआ, वह वास्तव म हमार गौरव की वस्तु है। वस्तुतः किसी साहित्य-कृति का उद्भव मन की विशेष प्रक्रिया का प्रतिफलन है और उसका चरम ध्येय भी चाहे वह साधारणीकरण से निष्पन्न होने वाली रसानुभूति हो, चाहे मन के सन्तुलन से सम्बन्धित मानसिक स्वास्थ्य, चाहे नीति और आचार के पोषणार्थ शिक्षात्मक प्रभाव—मन से ही सम्बन्धित है।

इसलिए साहित्य की आलोचना के लिए मनोविज्ञान का सहारा लेना अत्यत आवश्यक है। भारतीय आलोचना अत्यंत प्राचीनकाल से मनोविज्ञान की सहायता लेती आई है। स्थायीभाव, संचारी भाव, सात्विक भाव, अनुभाव, हाव, साधारणीकरण प्रक्रिया आदि विषयों का आधार मनोविज्ञान ही रहा है। अतः मनोवैज्ञानिक आलोचना भारतीय साहित्य के लिए कोई नई वस्तु नहीं है। हाँ, आज उसका रूप अवश्य नया है क्योंकि आज मनोविज्ञान के क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति हो चुकी है। अतः आज के आलोचक के लिए रस-सिद्धांत सम्बन्धित मनोविज्ञान मात्र से संतुष्ट हो जाना सम्भव नहीं है। आज तो, अनिवार्यतः, उसे कवि के व्यक्तित्व-निर्माण की प्रक्रिया को समझकर कर्त्ता और कृति में सम्बंध-सूत्र खोजने होंगे और कृति में भी कर्ता की सीमाओं के भीतर मनोविज्ञान की अधुनातन सम्भावनओं का परीक्षण करना होगा। इतना ही नहीं, सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टिकोण से उसकी परीक्षा करते हुए उसे यथासम्भव नवीनतम सिद्धांतों के सहारे कृति विशेष का अनुशीलन करना होगा।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के गौरव-ग्रंथों की मनोवैज्ञानिक समीक्षा अत्यत आवश्यक है। आधुनिक साहित्य के क्षेत्र में तो इस प्रकार की समीक्षा आवश्यक है ही—क्योंकि यहां सचेष्ट रूप से मनोविज्ञान का समावेश किया गया है, किन्तु प्राचीन या मध्यकालीन ग्रंथों में इसकी शोध का महत्व और भी अधिक इसलिए है कि उनके मनोविज्ञान के अप्रत्याशित दर्शन से हम सहसा अभिभूत हो जाते है।

मनोविज्ञान का सम्बंध मन से है और वेदान्त में कहा गया है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मन के अन्दर ही होता है। सामान्यतः मन को परिभाषित करना और शब्दों में बांध लेना कठिन है, क्योंकि मन का विस्तार उसके पहलू (दृष्टिकोण) तथा स्तर आधुनिक विज्ञान की कल्पना से परे की वस्तु है। मन की तीन भौतिक अवस्थाएं होती हैं—(1) सक्रिय, (2) निष्क्रिय तथा (3) तटस्थ। मन में सदैव परिवर्तन होता रहता है और उसमें नित्य नई-नई इच्छा-वृत्तियां उत्पन्न होती रहती

है। मन के तीन पहलू होते हैं—(1) चेतन, (2) अवचेतन तथा (3) अतिचेतन।

भौतिक शरीर मन का वाह्य स्वरूप है, जबकि शक्ति के रूप में स्वयं मन उसका आन्तरिक अथवा सूक्ष्म रूप। मन कर्त्ता और कर्म तथा दृष्टा और दृष्य दोनों हैं। मन और पदार्थ एक ही शक्ति के दो नाम-रूप हैं। यदि शक्ति एक ही है तो इलेक्ट्रॉन, परमाणु, अणु, जीन तथा कोशिका आदि गुणात्मक कण और देश-काल, गुरुत्वाकर्षण, ताप एवं विकिरण तथा सभी प्रकार की चुम्बकीय तरंगे वस्तुतः मन की ही तरंगें हैं। वास्तव में स्वयं मन ही असंख्य नाम-रूपों में प्रकट हो रहा है, क्योंकि चेतनशक्ति और प्रकृति के संयोग से सर्वप्रथम इसी सक्रिय शक्ति की उत्पत्ति होती है। चूंकि चेतन पुरुषों के विचार भिन्न-भिन्न होते है, इसलिए उन पुरुषों के नाम-रूप भी भिन्न-भिन्न रूप से प्रकट होते हैं क्योंकि कारण और कार्य शृंखला एवं सापेक्षवाद की वृत्तात्मक रेखागणित का यही स्वाभाविक परिणाम है।

मन वायु की तरह चंचल है और दृढ़, हठीला एवं शक्तिशाली है जिसे वश मे करना अत्यंत दुष्कर है। किन्तु शक्ति के अनुसार अभ्यास और वैराग्य द्वारा उसे नियंत्रित किया जा सकता है। उड़ता हुआ मन कभी कल्याणकारी नहीं होता, वल्कि स्थिर और एकाग्र मन ही आत्मस्थित होकर कल्याणकारी होता है। जब मन स्थिर और एकाग्र होता है तो वह बुद्धि में परिवर्तित हो जाता है और इसी बुद्धि द्वारा आज विज्ञान ने भी इतनी सफलता प्राप्त की है। लेकिन स्वार्थ और अहज्ञान के वशीभूत राजनेता इसी सफलता का दुरुपयोग करते हैं, सम्पूर्ण संसार मे संदेह, भ्रम और अविश्वास का वातावरण पैदा करते हैं, उन्माद और राष्ट्रीयता के नाम पर दूसरे देशों का शोषण करते हैं। आज का विज्ञान हमारी आसक्ति को बढ़ाने वाला एक विज्ञान बन गया है, हमारी इच्छावृत्तियों एवं वासना-तरगो को उत्तेजित करने वाला एक शास्त्र बन गया है, हमारे अहंकार को अपनी चरमसीमा पर पहुंचाने वाला एक प्रधान साधन बन गया है। आज विज्ञान में उसी संशोधन की आवश्यकता है जिससे वह जड़ पदार्थवाद से चेतना की ओर उन्मुख हो सके, यथार्थवाद से आदर्शवाद की ओर अग्रसर हो सके, अहंवाद से आत्मवाद में समाहित हो सके। दृष्टव्य है महाकवि तुलसीदास जी के इस विषय में विचार—

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद॥[6]

जब विज्ञान जड़पदार्थवाद से चेतना की ओर उन्मुख हो जाता है तब विज्ञान

---

6 मानस, बालकाण्ड, 50 (दोहा)

और धर्म में कोई अन्तर नहीं रह जाता। विज्ञान का निष्कर्ष इन्द्रियजनित ज्ञान पर आधारित है, बुद्धिवादी कौशल द्वारा रचित एवं सापेक्षभ्रम पर आधारित एक भौतिकवादी सिद्धांत है। इस मूल सिद्धांत के अनुसार चेतना निष्क्रिय है, जबकि मन, बुद्धि एवं अहंकार (ego) आदि प्राकृतिक शक्तियां सक्रिय हैं और इस प्रकार परस्पर विरोधी शक्तियां अथवा ऋण (negative) और धन (positive) के संयोग से ही किसी कर्म-व्यापार अथवा हलचल की उत्पत्ति हो सकती है, क्योंकि यूक्लिड की रेखागणित तथा न्यूटन के 'मशीनी ब्रह्माण्डवाद' पर आधारित आधुनिक विज्ञान का यह निष्कर्ष गलत है कि चेतना की उत्पत्ति भी जड़ पदार्थ द्वारा हुई है क्योंकि चेतना और पदार्थ दोनों परस्पर विरोधी तत्व हैं और इनके संयोग से ही सापेक्षवाद, द्वन्द्वात्मक संघर्षवाद तथा 'कारण और कार्य' शृंखला की उत्पत्ति होती है। इसीलिए महाकवि तुलसीदास जी को कहना पड़ा—

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु ॥[7]

इस प्रकार आइन्स्टीन का सापेक्षवाद महर्षि कपिल के सापेक्षवाद के समक्ष बहुत ही छोटा है, क्योंकि पहला सापेक्षवाद केवल भौतिक जगत की व्याख्या कर पाता है, जबकि कपिल का सापेक्षवाद सम्पूर्ण प्रकृति तथा उसके अन्तर्गत असंख्य दिव्य लोकों की सर्वांगीण व्याख्या करता है। क्वाण्टमवाद और सापेक्षवाद का यही दिव्य संदेश है। सापेक्षवाद को महाकवि तुलसीदास जी ने इस प्रकार परिभाषित किया है—

इति बेद बदंति न दंतकथा।
रबि आतप भिन्नमभिन्न जथा ॥[8]

सापेक्षवाद के अनुसार जिस प्रकार प्रकाश की गति पर सभी भौतिक शक्तिया (ताप, प्रकाश, विद्युत, चुम्बकत्व, देश-काल, गति आदि) परस्पर मिलकर एक हो जाती हैं, उसी प्रकार भौतिक परिधि से परे इन्द्रियां, मन एवं बुद्धि आदि शक्तिया भी परस्पर मिलकर सूक्ष्मजगत (astral world) की परा-भौतिक शक्तियों में समाहित हो जाती हैं, क्योंकि सभी प्रकार की प्राकृतिक शक्तियां कारण और कार्य की शृंखला में बंधी हुई हैं। इससे स्पष्ट है कि भौतिक शक्तियां वास्तविक नहीं है, बल्कि परम चेतनशक्ति के हाथों निमित्तमात्र हैं। अतः भौतिक जगत में हमें मन को एक सर्वोच्च शक्ति मानना ही पडेगा और इसी शक्ति द्वारा पदार्थ के कण-तरंगों

---

7. मानस, बालकाण्ड, 5 (दोहा)
8. मानस, लंकाकाण्ड, 110 (8)

का संयोजन, नियमन एवं संचालन होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मन शक्ति है; विचारों का मूल स्थान है, उद्गम स्थल और प्रेरणास्रोत है जिसके द्वारा यदि प्रायोगिक रूप देकर निरीक्षण किया जाए तो विज्ञान की संज्ञा दी गई है और यदि चिन्तन कर सृजन किया जाए तो साहित्य है। अतः विचार-तरंगों पर आधारित साहित्य और विज्ञान का अटूट सम्बंध है जिसका पूर्णरूपेण नियंत्रण मन-मस्तिष्क से होता है।

मनुष्य विज्ञान के पन्ने उलटकर यथार्थवादी बन जाते हैं और धार्मिक ग्रन्थों को कल्पना की उड़ान मान लेते हैं। जो कुछ धार्मिक साहित्यों में उपलब्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण है उसको केवल कपोल-कल्पित कहते हैं। आश्चर्य होता है उस युग पर जब पक्षियों में भी ऐसी दृष्टि हुआ करती थी और तरस आता है इस युग पर जबकि छायाचित्रों को ही यथार्थ मान लिया जाता है, उठती और गिरती हुई तरगों को ही सत्य समझ लिया जाता है। मनुष्य की इस अन्तर्दृष्टि पर ही कहीं परा-भौतिकवाद बनता है और कहीं भौतिकवाद; कभी आदर्शवाद ऊपर उठता है और कभी यथार्थवाद; कभी भावना प्रधान हो जाती है और कभी कर्म प्रधान बन जाता है। यह सभी कुछ प्रकृति और पुरुष के संयोग का ही परिणाम है, उस द्वन्द्वात्मक संघर्ष के खेल का ही फल है। इस संदर्भ में 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड में वर्णित चौपाइयों में दो पक्षियों के बीच वार्तालाप दृष्टव्य है–

उदर माझ सुनु अंडज राया।
देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया॥

x x x

प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा।
देखउँ बालबिनोद अपारा॥[9]

आइन्स्टीन के विचारानुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तथा निर्जीव एवं सजीव सभी वस्तुएं योजनाबद्ध ढंग से चल रहीं हैं। यह विचार भौतिकवादी विचारधारा पर एक प्रत्यक्ष प्रहार है जो इस सिद्धांत का प्रतिपादन करती है कि इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति अनायास एव योजनाविहीन ढंग से हुई है। किन्तु अद्वैत वेदान्त तो स्वयं ईश्वर को भी मनुष्य से पृथक नहीं समझता, क्योंकि ईश्वर ही स्वयं अपने को असंख्य नाम-रूपों से प्रकट कर रहा है। यही कारण है कि अद्वैत वेदान्त यह घोषित करता है 'अहम् ब्रह्मास्मि'। अतः इस दर्शन के अनुसार जीव और परमात्मा का भेद भी सापेक्ष भ्रम के कारण उत्पन्न होता है जिसका मूल कारण अहंकार है। जब बीच से अहंकार

9 मानस, उत्तरकाण्ड, 79 (2) से 80 (4)

हट जाएगा तो जीव स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाएगा।

आज विज्ञान के समक्ष सबसे बड़ा प्रश्न दिशा एवं दृष्टिकोण का है और उस परम उद्देश्य में अहज्ञान ही वह निकट बाधा है जो उसे सत्य के मार्ग में भटका देती है। यही कारण है कि उसे सत्य का बोध न होकर टेलिविजन के रजतपट पर केवल छायाचित्रों के दर्शन होते हैं। सत्य का दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य तो योगियों को ही प्राप्त होता है। जिस प्रकार योगी (mystic) परा-इन्द्रिय अनुभूति प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार भौतिकशास्त्री भी अब इन्द्रियों से परे वास्तविकता का अनुभव प्राप्त करते हैं और योगी की भांति ही वे अपनी अनुभूतियों में परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों का सामना करते हैं। इस प्रकार आधुनिक भौतिकशास्त्र के आदर्शों एवं प्रतिबिम्बों तथा पूर्वीय दर्शनशास्त्र के सिद्धांतो में एकरूपता स्थापित हो जाती है।

विज्ञान जिन साधनों का प्रयोग कर रहा है, वे साधन स्वयं भगवान को समझने के लिए यथेष्ट नहीं हैं किन्तु उन साधनों द्वारा उनकी विभूतियों को समझा जा सकता है और समझा भी जा रहा है। उन विभूतियों को समझकर भी भगवान को समझा जा सकता है और उन विभूतियों की उपेक्षा कर भी भगवान को समझा जा सकता है। यही कारण है कि प्राचीन ऋषि-मुनियों ने अपना समस्त जीवन तथा समस्त कर्म आत्म-अनुसंधान में ही लगा दिया, क्योंकि विभूतियों का वर्णन करने में उन्हें तर्कशास्त्र और बुद्धिवाद की आवश्यकता पड़ती, जिसमें पर्याप्त समय और शक्ति नष्ट होती।

अध्यात्म हमें ईश्वर का मार्ग दिखाता है, किन्तु विज्ञान तर्कशास्त्र और बुद्धिवाद का प्रयोग कर उस मार्ग को कुछ समय के लिए अवरुद्ध कर देता है, उस मार्ग को कुछ लम्बा बना देता है। विज्ञान हमें जीना और मरना भी सिखाता है, आशा, उत्साह, साहस, उमंग, निर्भयता, बलिदान, परिश्रम, लगन आदि आवश्यक गुण भी बताता है, किन्तु वह हमारे अहंकार को और बढ़ा देता है। इसीलिए वह सीधा और संक्षिप्त मार्ग, टेढ़ा-मेढ़ा एवं लम्बा बन जाता है। अध्यात्म के अनुसार भगवान का रास्ता अन्तर्जगत की ओर से गया है, अर्थात आत्म-अनुसंधान द्वारा ही उसे प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उसे जानने का अन्य कोई रास्ता नहीं है। यद्यपि अध्यात्म और विज्ञान का लक्ष्य एक ही है, किन्तु विज्ञान का रास्ता बहिर्जगत की ओर से गया है। जब हम अन्तर्जगत में आत्म-अनुसंधान करेंगे तो बाह्य जगत लुप्त हो जाएगा या परिवर्तित हो जाएगा, किन्तु जब हम किसी अनुसंधान का प्रयोग बहिर्जगत में करेंगे तो अन्तर्जगत हमारे लिए लुप्त-सा रहेगा। इस प्रकार एक समय में एक ही ओर अनुसंधान हो सकेगा। देश और

काल के फलस्वरूप ही विज्ञान प्रकृति की सीमाओं में बंध जाता है, और उसका स्वाभाविक फल है—सापेक्षज्ञान।

इस ब्रह्माण्ड में प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से सम्बन्धित है और सभी किसी विशेष अवस्था में उपयोगी एवं शिक्षाप्रद हैं। कोई एक वस्तु किसी के लिए उपयोगी नहीं हो सकती है, किन्तु वही वस्तु दूसरे के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। संसार के सभी मनुष्यों को एक दृष्टिकोण से अथवा एक ही मापदंड से मापा नहीं जा सकता। वैज्ञानिक दृष्टिकोण भौतिक क्षेत्र के लिए उपयोगी और सफल हो सकता है, किन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र के लिए उसे उपयोगी और सफल नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ विज्ञान के अनुसार मनुष्य का निर्माण पदार्थ द्वारा हुआ है जबकि दर्शन के अनुसार मनुष्य पदार्थ नहीं बल्कि आत्मा है। एक का दृष्टिकोण वैज्ञानिक है जबकि दूसरा दृष्टिकोण आध्यात्मिक है। दोनों ही सिद्धांत अपनी-अपनी जगह सही हैं। यहां एक का सिद्धांत तथा विश्वास दूसरे के लिए उपयोगी नहीं हो सकता, क्योंकि दोनों का उद्देश्य भिन्न-भिन्न है और उसका फल भी भिन्न-भिन्न होगा। विज्ञान के अनुसार पृथ्वी चलती है जिसके कारण मौसम में परिवर्तन होता है, किन्तु अध्यात्मवाद के अनुसार सब कुछ ईश्वर की इच्छा के आधार पर ही होता है। हम एक को सही और दूसरे को गलत नहीं कह सकते क्योंकि दोनों अपने-अपने दृष्टिकोण से सही हैं। विज्ञान यह दावा नहीं कर सकता कि उसका अनुसंधान ही एकमात्र अनुसधान है और उसका निष्कर्ष ही अन्तिम निष्कर्ष है।

विज्ञान जो कहता है लोग उसे सही मानकर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना लेते हैं और उसी के आधार पर रूढ़िवादी नियमों तथा आधारों को अन्धविश्वास समझ लेते हैं। किन्तु वे लोग इस बात को ध्यान में नहीं रखते कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण मन की अन्तिम अवस्था नहीं है, जिसके आधार पर किसी तथ्य को अन्तिम सत्य मान लिया जाए क्योंकि मन का क्रमशः विकास होता है और उसकी अन्तिम अवस्था ही सत्य की अनुभूति है। विज्ञान की प्रगति इस बात पर निभर है कि मनुष्य का भौतिक आकर्षण बना रहे, क्योंकि यदि यह आकर्षण न हो तो मन या तो विकृत हो जाएगा अथवा उसका झुकाव अध्यात्म की ओर हो जाएगा। मन जितना ही अध्यात्म की ओर बढ़ेगा, भौतिक आकर्षण उतना ही कम होता जाएगा और क्रमशः कर्म भी छूटते जाएंगे। इससे स्पष्ट है कि सांसारिक आसक्ति से ही विज्ञान का जन्म हुआ है और उसका अस्तित्व भी उसी आसक्ति पर निर्भर करता है। यदि सांसारिक आसक्ति को भगवान की ओर मोड़ लिया जाए तो वह भक्ति में बदल सकती है। भक्त शिरोमणि तुलसीदास जी ने तो यहां तक कह दिया कि जिसके हृदय में भक्ति बसती है उसके पास काम, क्रोध और लोभ आदि

दुष्ट (सांसारिक आसक्तिया) नहीं जात

खल कामादि निकट नहि जाहीं
बसइ भगति जाके उर माहीं ॥[10]

क्योंकि—

सब कर फल हरि भगति सुहाई।
सो बिनु संत न काहूँ पाई ॥[11]

वैज्ञानिक तो केवल अन्वेषक मात्र हैं और अपने अनुसंधान द्वारा उन्हें जो ज्ञान प्राप्त होता है, वे उस ज्ञान को उसी रूप में प्रकट कर देते हैं। यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम उसे किस रूप में ग्रहण करते हैं। किसी वैज्ञानिक-आविष्कार को आध्यात्मिक रूप में भी ग्रहण किया जा सकता है और शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी। जीवन में उस ज्ञान का प्रयोग ही महत्वपूर्ण है और यह मन के प्रभाव द्वारा ही हो पाता है। इसी प्रकार योगी और साधक भी अन्वेषक ही होते हैं, किन्तु वे अपनी उच्चतम अनुभूतियों को व्यक्त नहीं कर पाते, क्योंकि उसका सम्बन्ध पदार्थ से नहीं होता। विज्ञान के प्रभाव से हम केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना सकते हैं, किन्तु अध्यात्म के प्रभाव से उसमें सन्तुलन स्थापित कर एक ऐसा दृष्टिकोण बना सकते हैं जो हमें वास्तविक कर्मयोग का मार्ग दिखा सकता है। यदि विज्ञान कर्मयोग को ही मानता है तो भौतिक संसार के लिए इससे अधिक सुरक्षित मार्ग आज दूसरा नहीं हो सकता। इसी का संदेश कर्मयोगी भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता के माध्यम से दिया था—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥[12]

(तेरा कर्म में ही अधिकार है, ज्ञाननिष्ठा में नहीं। कर्ममार्ग में कर्म करते हुए तुझे किसी भी अवस्था में कर्मफल की इच्छा नहीं होनी चाहिए। यदि कर्मफल में तेरी तृष्णा होगी तो तू कर्मफल-प्राप्ति का कारण बनेगा। अतः इस प्रकार कर्मफल-प्राप्ति का कारण तू मत बन क्योंकि जब मनुष्य कर्मफल की कामना से प्रेरित कर्म में प्रवृत होता है तब वह कर्मफल रूप पुनर्जन्म का कारण बन ही जाता है।)

इसी कारण महाकवि तुलसीदास जी ने भी जन्म-मरण, हानि-लाभ, सुख-दुःख सभी कुछ काल और कर्म के अधीन बरबस होने का दावा किया है—

---

10. मानस, उत्तरकाण्ड, 119 (8)
11. मानस, उत्तरकाण्ड, 119 (9)
12. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/47

जनम मरन सब दुख सुख भोगा।
हानि लाभु प्रिय मिलन वियोगा॥
काल करम बस होहिं गोसाई।
बरबस राति दिवस की नाई॥[13]

इस प्रकार वैज्ञानिक-जीवन अध्यात्म का विरोधी नहीं अपितु उसी का एक पूरक अंग है। वैज्ञानिक और योगी दोनों मन का ही प्रयोग करते हैं और मन को किसी विषय में स्थिर रखना ही ज्ञान का रहस्य है। वास्तव में देखा जाए तो अध्यात्म में मन का बोध ही मनुष्य की प्रधान समस्या है। यदि मन को केवल राम-नाम से ही बोध हो जाता है तो उस व्यक्ति को किसी भी धर्मग्रंथ (साहित्य) अथवा विज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं।

विज्ञान के क्षेत्र में आवश्यकतानुसार किसी भी नियम को संशोधित या परिवर्तित किया जाना सम्भव है और सच तो यह है कि विज्ञान की तीव्र प्रगति का मूल कारण इसी वैज्ञानिक स्वातंत्र्य में निहित है। उदाहरण के लिए पेड़ से पृथ्वी की ओर गिरते हुए सेब से न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण (gravity) के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था जिसने कुछ वर्षों में न्यूटन के प्रसिद्ध 'गतिशीलता नियमों' (Laws of motion) का विस्तृत तथा परिष्कृत रूप ले लिया था। प्रकाश के गति सम्बंधी कुछ प्रयोगों के परिणामों को समझाने के प्रयत्न में आइन्स्टीन को न्यूटन के इन नियमों में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई और फलस्वरूप सापेक्षवाद (Theory of relativity) का जन्म हुआ। आइन्स्टीन के विचारानुसार प्रकाश की गति सर्वोच्च गतिशीलता है और कोई भी कण इससे अधिक गति से नहीं चल सकता है। सापेक्षवाद सिद्धांत ने भौतिक शास्त्र तथा विज्ञान की अन्य शाखाओं में एक क्रांति ही उत्पन्न कर दी और फलस्वरूप आइन्स्टीन को इस युग का सबसे बड़ा वैज्ञानिक माना गया। साथ ही न्यूटन की प्रतिष्ठा में उसके द्वारा प्रतिपादित नियमों में संशोधन की आवश्यकता से कोई कमी नहीं आई है क्योंकि अपने समय में उपलब्ध अवलोकनों या अनुभवों को विश्लेषित कर उन्हें तर्कसंगत नियमों के सूत्र में बांधना ही उनके जैसे मेधावी मस्तिष्क द्वारा ही सम्भव था। आज तो आइन्स्टीन के निष्कर्षों पर भी कुछ क्षेत्रों में संदेह प्रकट किया जाने लगा है; उदाहरण के लिए भारतीय वैज्ञानिक ने सैद्धांतिक रूप से प्रकाश की गति से अधिक तेज चलने वाले सूक्ष्म कणों की परिकल्पना प्रस्तुत की है जिस पर गत कुछ वर्षों से विवाद चल रहा है।

---

13 मानस, अयोध्याकाण्ड, 149 (3)

वैज्ञानिक का अर्थ है सही अर्थो में जिज्ञासु होना। वह सत्य का शोध करता है। विज्ञान के क्षेत्र में व्यक्तिवाद या अंधविश्वास की तनिक भी गुंजाइश नही होती। प्रत्येक व्यक्ति उचित प्रयोग द्वारा वैज्ञानिक तथ्यों और सिद्धांतों की सही जांच कर सकता है। विज्ञान को राष्ट्रीयता के तंग दायरे में भी नही बांधा जा सकता। विज्ञान एक अन्तर्राष्ट्रीय क्रियाशीलता है। सभी देशों के वैज्ञानिक अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं कि अपने शोध अनुसंधान से एक दूसरे को परिचित कराए, ताकि विज्ञान की प्रगति में किसी प्रकार की बाधा न पहुंचे। यहां यह भी नही भूलना चाहिए कि यह आवश्यक नहीं कि वैज्ञानिक तथ्य अनिवार्य रूप से सदा के लिए निर्दोष तथा पूर्ण हों। वास्तव में नई जानकारी, नए प्रयोगों के फलस्वरूप प्रचलित वैज्ञानिक मान्यताएं दोषपूर्ण सिद्ध हो सकती हैं—तब ऐसी स्थिति में एक सच्चे वैज्ञानिक की हैसियत से वह उन मान्यताओं को त्याग कर नई मान्यताओं को ग्रहण कर लेता है। पूर्वाग्रह से वह सर्वथा मुक्त होता है।

यहां पर महाकवि कालिदास का यह श्लोक उद्धृत करना चाहूंगा कि –

पुराणमित्येव न साधु सर्वम्

न चापि काव्यं नवमित्यवधम् ।

सन्तः परीक्ष्यान्यतर दभजन्ते

मूढः पर प्रत्यपनेय बुद्धि ॥

(अर्थात् यह पुराना है, मात्र इसलिए हर तरह से श्रेष्ठ है, यह बात सही नही है और अमुक रचना नई है इसलिए यह दोषपूर्ण होती और इसे ग्रहण नही करना चाहिए, यह भी ठीक नहीं है। प्रबुद्धजन परीक्षण के उपरांत ही उसे निर्दोष पाने पर ग्रहण करते हैं, जबकि मूर्ख दूसरो की बुद्धि के सहारे निर्णय लेता है।)

विज्ञान का प्रत्येक आविष्कार समाज के लिए नई समस्याएं उत्पन्न करता है जिन्हें हल कर मनुष्य सभ्यता की अगली सीढ़ी पर चढ़ जाता है। अग्नि के आविष्कार ने मनुष्य को प्रस्तर युग से आगे लौह युग तक पहुंचाया, फिर कोयले ओर वाष्प शक्ति ने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया—और अब परमाणु शक्ति एव अन्तरिक्ष अनुसंधान ने मानव समाज को चुनौती दी है कि वह अपने सामाजिक और आर्थिक ढांचे में समुचित परिवर्तन करके ऊर्जा के इस महान स्रोत का भरपूर लाभ उठाए, साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी वह जीवन में उतार सके।

विज्ञान के वर्तमान ज्ञान के सागर को समझने के लिए दीर्घकाल तक अनुशासित अध्ययन तथा परिश्रम नितांत आवश्यक है, परन्तु विज्ञान में किसी प्रकार के अंधविश्वास का कोई स्थान नहीं है। यदि किसी भी बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक का विचार या वक्तव्य तर्क या प्रयोग की कसौटी पर खरा न उतरे, तो उसको

अस्वीकृत कर उसके संशोधन या उसमें परिवर्तन का प्रयत्न ही विज्ञान का प्रगति की ओर ले जाने का एकमात्र साधन है। सच तो यह है कि आज आधुनिक विज्ञान का प्रभाव मानव जीवन के बाह्य अंग तक ही सीमित नहीं है, वरन् उसके द्वारा जनित एक नई प्रकार की मानसिकता ने मानव समाज की विचार-पद्धति, संस्कृति और आध्यात्मिक दिशाओं तक को प्रभावित किया है।

आज विज्ञान एक नए धर्म के रूप में उभर सकता है। ध्यान योग का कुछ वर्ष पूर्व बड़ा प्रचार हुआ है। यह प्रचार तब हुआ, जब प्रयोगशालाओं में यह सिद्ध हुआ कि ध्यानयोगी अपना रक्तचाप नियंत्रित कर लेते हैं, शरीर का तापमान नियमित कर सकते हैं और शरीर के भीतर चलने वाली विविध रासायनिक क्रियाओं को प्रभावित कर सकते हैं। इस प्रकार अध्यात्म और विज्ञान समन्वयन का मार्ग प्रशस्त हो गया है और स्पष्ट लग रहा है कि दोनों को एक दूसरे के सहारे की अत्यधिक आवश्यकता है। विज्ञान की प्रभा से मंडित अध्यात्म श्रद्धालुओं की जो नयी पीढ़ी तैयार होगी, वे ही इस घोर तमस को चीरकर विश्व को ज्योतिर्मय भविष्य की ओर ले जा सकेंगे। इसके लिए आज सम्पूर्ण विश्व की दृष्टि भारत पर टिकी हुई है।

सारांश यह है कि विज्ञान अपनी विचारधारा में पूर्णतः गतिशील है। प्राचीन परम्पराओं से चिपके रहना उसे पसंद नहीं है। विज्ञान के क्षेत्र में हठधर्मिता या अंधविश्वास को सबसे पहले तिलांजलि देनी होती है। प्रचलित मान्यताओं और वैज्ञानिक तथ्यों की दिन-प्रतिदिन नवीन तथ्यों के प्रकाश में छानबीन की जाती है और यदि उनमें दोष पाया जाए तो बिना मोह-ममता के उन्हें त्यागकर नई मान्यताओं के अनुरूप आगे बढ़ा जाता है। अतएव यह ही है वह भारत की सभ्यता और संस्कृति जो अपनी मान्यताएं, अवधारणाएं तथा अंधविश्वास के कारण पिछड़ती गई और प्राचीन भारतीय-साहित्य से अनुसंधानों को पश्चिमी देश अपनाते गए। इन वैज्ञानिक-शोधों के आधार पर उन्होंने अपना पृथक साहित्य सृजन किया। इस प्रकार विज्ञान के तथ्यों को लिपिबद्ध करके साहित्य तैयार किया जाता है, और कालांतर में इस साहित्य पर शोधकार्य किया जाता है जैसा कि इस युग में रामायण, महाभारत, वेद, पुराण तथा उपनिषदों पर किया जा रहा है। निष्कर्षतः साहित्य और विज्ञान में एक शाश्वत एवं अटूट सम्बंध है।

3
भौतिक विज्ञान

वैज्ञानिकों का एकमात्र उद्देश्य सत्य की खोज है, जिसे वे प्रयोग, निरीक्षण और अनुमान के द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। विज्ञान वास्तव में मस्तिष्क की खोज है। वैज्ञानिक बुद्धि द्वारा सब बातों की परीक्षा करता है और वस्तुतः इसी में उसकी शक्ति है। अनेक प्रयोगों का सम्पादन कर वैज्ञानिक कुछ तथ्यों को एकत्र करता है। उन तथ्यों को सम्बद्ध करके वह उसकी व्याख्या करने की चेष्टा करता है। वह यह जानने को उत्सुक रहता है कि ये घटनाएं ऐसे, क्यों होती हैं ?

पदार्थों के भौतिक गुण

वास्तव में 'विज्ञान' प्रकृति (matter) और उसकी शक्तियों (energy or forces) के पीछे छिपे हुए नियमों के अध्ययन का नाम है। प्रकृति में जो रूपान्तर, प्रकारान्तर या परिवर्तन होते हैं और उनके जो गुण (properties) प्रभाव (effects) या प्रयोग (uses) आदि हैं या प्रकृति के जगत् में जो क्रिया-प्रतिक्रिया (action and reaction) होती हैं, उनको विधिपूर्वक जानने और उनके परीक्षण तथा प्रयोग करने का नाम ही 'विज्ञान' है। विज्ञान के विकास ने मनुष्य को भौतिक सुख-सुविधा के असीम साधन दिए हैं जिस पर धन तथा समय इतना लगा है कि कोई हिसाब नहीं किन्तु एक विज्ञान ऐसा भी है जिसके द्वारा सुख प्राप्त करने के लिए एक पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ता। उसके लिए सैंकड़ो वर्ष पुरुषार्थ करने की भी जरूरत नहीं। वह विज्ञान अकेला ही सभी प्रकार के भौतिक सुख प्राप्त करने के योग्य हमें

बना देता है। उस विज्ञान द्वारा सृष्टि की रूपरेखा, आचार परम्परा, व्यवहार-विचार, सब कुछ बदल जाता है। तब यहां कोई भी दु:खदायक व्यक्ति नहीं रहता, न कोई कष्टकारक रीति-नीति ही रहती है। उस विज्ञान का नाम 'योग' है।

श्वेताश्वरोपनिषद् के टीकाकार भट्ट नारायण (आठवीं शताब्दी पूर्वार्ध) ने बतलाया है कि सूर्य से ही सबसे पहले योग का प्रारंभ हुआ था—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः। इति।

(सबसे पहले मैंने इस अविनाशी योग का उपदेश विवस्वत को दिया, विवस्वत ने मनु को दिया, मनु ने इक्ष्वाकु को दिया, इस प्रकार परम्परा से प्राप्त हुए ज्ञान को राजर्षियों ने जाना।)

विज्ञान का यह नियम है कि वैज्ञानिक अपने मस्तिष्क में जिसकी कल्पना करते हैं उसको सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं और प्रमाणित होने पर वह 'सिद्धांत' बन जाता है जिसको मन में धारण कर लिपिबद्ध किया जाया करता है—

निज सिद्धांत सुनावउँ तोही।
सुनु मन धरू सब तजि भजु मोही॥[1]

अतः वेद, उपनिषद् तथा पौराणिक ग्रन्थ लिपिबद्ध किए गए जिनके आधार पर रचित 'रामचरितमानस' एक वैज्ञानिक शास्त्र है। 'मानस' में वर्णित समस्त घटनाओं को यदि किंचित सुधार कर देखें तो पाएंगे कि आज का विज्ञान त्रेतायुग के विज्ञान के सम्मुख अभी बाल्यावस्था में है। उस समय की कल्पनाएं आज के वैज्ञानिक युग में सत्य प्रमाणित होती जा रही हैं।

भारत की धरती से सदैव ही चिन्तन की गंध आती रही है। आज से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व जब आदिम मानव ने सोचना प्रारम्भ किया तो उसको प्रकृति नदी की मनोहर छटा देखने को मिली। उस छटा को देखकर मनुष्य के मन मे एक कूतुहल एवं एक आश्चर्यचकित भावना उद्भूत होने लगी और उसने अपनी सहज वाणी के माध्यम से उस मनोहर छटा को, उस मनोरम नयनाभिराम प्रकृति छवि को उतारने का कार्य आरम्भ कर दिया। पाषाणों तथा भू-धारातल पर चित्रकारी आरम्भ कर दी तथा संकेतों के द्वारा अपने विचारों को दूसरों तक संप्रेषण करना शुरू किया—

---

1 मानस, उत्तरकाण्ड, 85 (1)

अ फन कमल चक्र टकारा
तेग पवन यौवन सिंगारा ॥
अंगुलि अक्षर चुटकिन मात्रा ।
राम करें लक्ष्मण से वात्रा ॥*

प्रकृति में भी एक ऐसा विशेष तत्व था जो मानव को अत्यधिक प्रभावित कर रहा था। प्रातःकाल उदय होने वाले सूर्य की छटा ने उसका मन आकृष्ट करना आरम्भ कर दिया और जब वह आग जलाता था तो उसमें भी उसे एक आश्चर्यजनक तत्व दिखाई देने लगा। जब आकाश में बिजली कौंधती थी तो उसके मन में भी एक हल्की सी प्रसन्नता, शरीर में स्फुरण एवं भय की भावना पैदा होने लगती थी। यह सम्पूर्ण वातावरण मानव के मन पर एक गहरा प्रभाव छोड़ने लगा और इस बात पर सोचने के लिए वह बाध्य हो गया कि अवश्य ही इन सब के पीछे एक ऐसी दैवी शक्ति है जिससे अनुप्राणित होकर यह सब प्रतिदिन एक सतत् प्रक्रिया में निरंतर घटित होता रहता है और होता रहेगा। परिणाम-स्वरूप प्रसन्नता से योगी, स्फुरण से भोगी तथा भय की भावना से रोगी मनुष्य को प्रकृति में एक देवता दिखाई देने लगा। विद्वानों ने इसी प्रक्रिया को प्रकृति का मानवीकरण कहा है।

इन्द्र (बिजली), वायु, पृथ्वी, वरुण (जल), सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि तथा ऊष्मा आदि विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों की मनुष्य ने पूजा की जिससे सुख-समृद्धि प्राप्त कर बुराईयों (पापों) से छुटकारा पाया जा सके। कालान्तर में आर्यों ने विष्णु (जलाशायी), ब्रह्मा (पृथ्वी) तथा महेश (अग्नि) रूप में पूजा आरम्भ कर दी। गोवर्धन-पूजा एवं पत्थर-पूजा आज भी पृथ्वी-पूजन का ही प्रतीक है।

प्रकृति से सम्बन्धित अध्ययन को ही भौतिक शास्त्र (Physics) कहते हैं। दूसरे शब्दों में इसको भौतिक-दर्शन की भी संज्ञा दी जा सकती है। इसका वास्तविक विषय क्षेत्र स्थित नहीं है और न ही सरलता से इसकी सीमा निर्धारित की जा सकती है। यद्यपि सदियों से मानव जाति प्रकृति के संचालन और रूप-परिवर्तन का ज्ञान प्राप्त करती आ रही है किन्तु सामान्य सिद्धांत के स्तर तक न इसको आज तक उत्थापित (elevate) किया और न ही कभी क्रमबद्ध किया गया। अत **प्रकृति में विद्यमान पदार्थ के क्रमगत अध्ययन को ही भौतिक-विज्ञान कहते हैं।** आधुनिक काल में प्रत्येक दशक के पश्चात भौतिकी में मुख्य प्रयास बदल चुके हे क्योंकि एक ओर इंजीनियरी शाखा अथवा अनुप्रयुक्त भौतिकी (applied physics)

---

* स्थानाभाव के कारण इसका विश्लेषण करना सम्भव नहीं है।

जस वैज्ञानिक ज्ञान का क्षेत्र प्रयोगात्मक रूप में परिवर्तित हो चुका है तथा दूसरी ओर नए-नए प्रयोग अथवा सैद्धांतिक शोध के कारण नवीन क्षेत्रों का श्रीगणेश किया जा चुका है।

अध्ययन की दृष्टि से भौतिक-विज्ञान (भौतिकी) को अनेक शाखाओं एवं उपशाखाओं में विभक्त किया जा सकता है, उदाहरणार्थ—पदार्थों के सामान्य गुण, तापिकी, नाभिकी, प्रकाशिकी विद्युत, चुम्बकत्व, इलैक्ट्रानिकी, ध्वनिकी आदि-आदि।

ऊर्जा

आधुनिक विज्ञान में पदार्थ वह शक्ति है जो इन्द्रियों (आंख, कान, नाक, त्वचा, जिह्वा) के माध्यम से मस्तिष्क में संश्लेषित (synthesized) होकर दृश्य जगत की नाना प्रकार की वस्तुओं के रूप में प्रतिबिंबित होती है। वह शक्ति या वस्तु ठोस अथवा द्रव के रूप में हो सकती है अन्यथा ऊर्जा, प्रकाश, विकिरण, चुम्बकत्व, गैस, गंध, स्वाद आदि किसी भी सूक्ष्म रूप में हो सकती है तथा वह शक्ति निर्जीव या सजीव कोई रूप ग्रहण कर सकती है। इस विषय में महाकवि तुलसीदास जी के विचार थे कि—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥[2]

आजकल वैज्ञानिक पदार्थ की एक चौथी अवस्था को भी मानते हैं जिसे प्लाज़्मा (plasma) कहते हैं। यह अवस्था तब आती है जब उस पदार्थ का तापमान 10,000 डिग्री सैल्सियस से ऊपर जाने लगता है और लाखों-करोड़ों डिग्री तक (सूर्य एवं तारे) पहुंच जाता है। इसी असीम शक्ति का प्रसारण सूर्य एवं ताराओं से निरंतर होता रहता है—

मद मोह महा ममता रजनी।
तम पुंज दिवाकर तेज अनी ॥[3]

पूर्ववर्ती भौतिक शास्त्र के अनुसार पदार्थ वह शक्ति है जिसमें द्रव्यमान (mass) होता है तथा उस शक्ति का विस्तार 'देश-काल' (space-time) में होता है। अध्यात्मवाद के अनुसार पदार्थ चार प्रकार (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का माना गया है—

करतल होहिं पदारथ चारी।
तेइ सिय रामु कहेउ कामारी ॥[4]

---

2 मानस, बालकाण्ड, 22 (1)
3 मानस, उत्तरकाण्ड, 13 (3)
4 मानस, बालकाण्ड, 314 (1)

अद्वैतवादी दृष्टिकोण में एक ही परम चेतन शक्ति स्वयं अपने को ही विभिन्न नाम रूपों में प्रकट कर रही है, क्योंकि वही शक्ति अन्ततः पदार्थ की सभी शक्तियों को स्वयं अपने में समेटती हुई भी प्रतीत होती है। इस जगत में एक ही तत्व अथवा शक्ति 'देश-काल-निमित्त' (space-time-causation) की प्रक्रिया से गुजर कर किसी विशेष अवस्था में कुछ होती है और वही शक्ति किसी दूसरी अवस्था में कुछ और हो जाती है, कभी सूक्ष्म होती है और कभी स्थूल बन जाती है, कभी जड़ दिखाई देती है और कभी चेतन हो जाती है, कभी कारण बन कर आती है तो कभी कार्य हो जाती है, कभी देश-काल के रूप में होती है तो कभी लुप्त हो जाती है। उदाहरणार्थ एक ही तत्व कहीं बर्फ, कहीं जल, कहीं भाप और वही तत्व कहीं आक्सीजन तथा हाइड्रोजन तत्वों (elements) का योग है–

$$2H_2O \rightarrow 2H_2 + O_2$$

(जल) (हाइड्रोजन) (आक्सीजन)
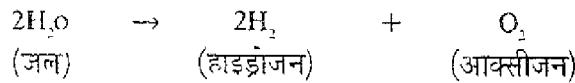
जगत का कर्म-व्यापार ऊर्जा से चलता है। इसी से समुद्र का जल वाष्प बनकर वर्षा के रूप में आता है। अग्नि द्वारा पानी को वाष्प रूप में उड़ाने की प्रक्रिया को वाष्पीकरण कहते हैं। तुलसीदास जी के शब्दों में वाष्पीकरण इस प्रकार होता है –

प्रभु प्रताप बड़वानल भारी।
सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी ॥[5]

सूर्य, चन्द्र एवं तारागणों से प्रकाश के रूप में विकिरण उत्पन्न होता है जिस कारण जीव-जन्तु एव वनस्पति का क्रम-विकास होता रहता है। विद्युत की गर्मी एव प्रकाश से नगरों की जगमगाहट बनी रहती है। विद्युत में गर्मी की उपस्थिति को तुलसीदास जी ने भी स्वीकारा है–

बिबरन भयउ निपट नरपालू।
दामिनि हनेउ मनहुं तरू तालू ॥[6]

किन्तु यह ऊर्जा केवल सूक्ष्म रूप में ही नहीं रहती, बल्कि ठोस एवं द्रव्य पदार्थों में भी सुप्त पड़ी रहती है जिसका प्रयोगकर नाना प्रकार के कार्य होते हैं।

एकु दारूगत देखिअ एकू।
पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥[7]

---

5. मानस, लंकाकाण्ड, श्लोक–3(1)
6. मानस, अयोध्याकाण्ड, 28 (3)
7. मानस, बालकाण्ड, 22 (2)

उदाहरणार्थ वनों के उपजे काष्ठ जैसे पदार्थ में विद्यमान इस सुप्त शक्ति का ही 'संचित ऊर्जा' (Conservation of energy) कहते हैं। ऊर्जा के अनेक रूप है—यथा 'गतिज ऊर्जा', 'स्थितिज ऊर्जा', 'यांत्रिक ऊर्जा', 'आणविक ऊर्जा', 'रासायनिक ऊर्जा' आदि।

क्वांटमवाद एवं सापेक्षवाद

ऊर्जा सिद्धांत के अनुसार पदार्थ के अन्तस्थल में असीम ऊर्जा शक्ति सुप्तावस्था में पड़ी हुई है। जिसे अनेक वैज्ञानिक-प्रक्रियाओं द्वारा जागृत कर जगत का कर्म-व्यापार चलाया जाता है। चूंकि मनुष्य का निर्माण भी चेतना और पदार्थ के संयोग द्वारा हुआ है, इसीलिए मनुष्य में भी वैसी ही असीम शक्ति होनी चाहिए—

ईश्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी ॥[8]

योगी उसी शक्ति को 'कुंडलिनी' के नाम से सम्बोधित करते हैं जिसे जागृत कर वे ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। उस महा-शक्ति को वैज्ञानिक अथवा बहिर्गत प्रक्रिया (objective process) द्वारा नहीं जगाया जा सकता, बल्कि उसे यौगिक विधि अथवा आभ्यान्तिरिक प्रक्रिया (subjective process) द्वारा ही जगाकर आत्मसाक्षात् किया जा सकता है। इस प्रकार एक योगी और वैज्ञानिक में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। यह आधुनिक विज्ञान के लिए बड़े सौभाग्य की बात है कि अब वैज्ञानिकों को परमाणु तथा उप-परमाणु जगत में एक सिद्ध योगी की भांति सत्य का दर्शन प्राप्त होने लगा है। विज्ञान की नई तकनीक द्वारा वह दिव्य-दर्शन प्राप्त करना सम्भव हो गया है। जो कुछ भी हो अब विज्ञान कम से कम इतना तो मानने लगा है कि इस भौतिक जगत से परे और भी बहुत कुछ है तथा उसे जड़-पदार्थ नहीं देखता, बल्कि स्वचेतना (self-consciousness) देखती है—

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ॥[9]

आधुनिक विज्ञान अभी उसी लोक का अनुसरण कर रहा है। जिसमें पदार्थ ऊर्जा बन रहा है और ऊर्जा पदार्थ ($E=MC^2$) जब विज्ञान इस वृत्ति को पार कर जाएगा तो वह 'प्रतिपदार्थ' (antimatter) की दूसरी महावृत्ति में पहुंच जाएगा

---

8 मानस, उत्तरकाण्ड, 116 (1)
9 मानस, बालकाण्ड, 50 (दोहा)

आर प्रकृति के नियमानुसार उसे उसी महावृत्ति अथवा लोक का अनुसरण करना पड़ेगा। इस प्रकार प्रकृति के अन्तर्गत इन असंख्य वृत्तियों एवं असंख्य लोकों की कोई सीमा नहीं है। महाकवि तुलसीदास जी के शब्दों में–

> अगनित लोकपाल जम काला।
> अगनित भूधर भूमि बिसाला॥
> सागर सरि सर विपिन अपारा।
> नाना भांति सृष्टि बिस्तारा॥[10]

वेदान्तानुसार जगत की सभी वस्तुएं अपनी-अपनी जगह पर सही और उपयुक्त हैं। परन्तु जब कोई अपनी सीमा का उल्लंघन कर अहंकारवश अपने को ही कर्त्ता समझ बैठता है तो वह परम चेतनशक्ति समय-समय पर उसे अपनी सीमा का बोध करा देती है। प्राचीन युग में रावण को भी ऐसा ही बोध हुआ था और आधुनिक युग मे क्वान्टमवाद एवं सापेक्षवाद से विज्ञान को भी यही शिक्षा मिल रही है। उन अहंवादियों को शिक्षा देने के लिए ही संत तुलसीदास जी को लिखना पडा–

> **राम अतवर्य बुद्धि मन बानी।**
> **मत हमारे अस सुनहि सयानी॥**
> X X X
> **तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।**
> **हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥**[11]

जब चेतना का उत्कर्ष होता है तो मानसिक स्तर में भी उत्कर्ष होने लगता है, क्योंकि वह मानसिक स्तर भी प्रकृति की भांति स्वचेतना अथवा चेतनपुरुष (आत्मा) से ही संयुक्त है और इस प्रक्रिया में ही व्यष्टि मन (individual mind) सार्वभौमिक मन (universal mind) से संयुक्त हो जाता है अथवा उस स्तर पर पहुच जाता है जहां सम्पूर्ण ब्रह्मांड का ज्ञान एक क्षण में ही उपस्थित हो जाता है। इस जगत में निम्न कोटि के जीव-जन्तु या कीट-पतंग आदि अपनी स्वचेतना का उत्कर्ष इसलिए नहीं कर पाते, क्योंकि उनके पास मनुष्य की भांति उत्कृष्ट मस्तिष्क, मन, बुद्धि आदि प्रकृति द्वारा रचित इलेक्ट्रानिक यन्त्र नहीं होते, क्योंकि निष्क्रिय चेतना अथवा आत्मा निर्लिप्त रह कर इन सक्रिय इलेक्ट्रानिक यन्त्रो के माध्यम से ही देखती, सुनती और अनुभव करती है। परन्तु सांख्यदर्शन के अनुसार

---

10 मानस, उत्तरकाण्ड, 79 (3-4)

11 मानस, बालकाण्ड, 120 (2-4)

इन उत्कृष्ट यन्त्रों की रचना भी प्रकृति के कारणस्वरूप त्रिविध गुणात्मक तरगो द्वारा ही होती है। इसीलिए महाकवि तुलसीदास जी ने कहा है—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥[12]

सृष्टि में इन त्रिगुणात्मक तरंगों का बड़ा महत्व है, क्योंकि जीवजगत का चेतन-स्तर अथवा मानसिक अवस्था इन गुणात्मक तरंगों पर ही निर्भर करती हे ओर जिस प्रकार आइन्स्टीन के समीकरण ($E=MC^2$) द्वारा पदार्थ ही ऊजा ह ओर ऊर्जा ही पदार्थ; उसी प्रकार महामुनि कपिल के समीकरण के अनुसार त्रिगुणात्मक तरंगें (सत्व, रज, तम) ही पदार्थ हैं, जीवजगत है तथा जीवजगत और पदार्थ ही त्रिगुणात्मक तरंगें। इलेक्ट्रान या परमाणु कण इन त्रिगुणात्मक तरगो के केवल वाहक हैं, प्रकृति की वृतात्मक प्रक्रिया को पूर्ण करने वाले केवल साधनमात्र हे और यह प्रक्रिया फोटॉन तथा इलैक्ट्रॉन कणों की टक्कर से आरम्भ होती हे।

न्यूटन के गति-नियम

जेसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि प्रकृति में जो रूपान्तर, प्रकारान्तर या परिवर्तन होते हैं और उनके जो गुण, प्रभाव या प्रयोग आदि हैं या प्रकृति के जगत् में जो क्रिया-प्रक्रिया होती हैं उनको विधिपूर्वक जानने और उनके परीक्षण तथा प्रयोग करने का नाम ही 'विज्ञान' है। भौतिकविद् सर आइज़क न्यूटन (1642-1727) ने सर्वप्रथम प्रकृति के इस परिवर्तन पर 'गति के नियम' तैयार किए और निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रत्येक क्रिया की समान एवं विपरीत दिशा मे अपनी प्रतिक्रिया होती है। संत कवि तुलसीदास जी ने भी वर्णन किया है कि हनुमान जी जिस बल से ऊपर उछलते उतनी ही शक्ति से नीचे की पृथ्वी नीचे पाताल में चली जाती। दृष्टव्य है क्रिया-प्रतिक्रिया का उदाहरण—

बार बार रघुबीर संभारी।
तरकेउ पवनतनय बल भारी ॥
जेहिं गिरि चरन देह हनुमंता।
चलेउ सो गा पाताल तुरंता ॥[13]

---

12 मानस, उत्तरकाण्ड, 42 (4)
13 मानस, सुन्दरकाण्ड, 3 (3-4)

घर्षण

सर जेम्स पी. जूल (1818-1889) ने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया था कि दो वस्तुओं के घर्षण में गर्मी उत्पन्न होती है। यद्यपि गर्मी उत्पन्न करना मनुष्य का आदिकार्य था, किन्तु तुलसीदास जी ने सर जूल से पूर्व ही घर्षण के सिद्धांत से अग्नि उत्पन्न होना स्वीकारा है–

अति संघरपन जौंकर कोई।
अनल प्रगट चंदन ते होई॥[14]

अन्यत्र–

रामकथा मुनिवर बहु बरनी।
ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी॥[15]

तापिकी

आधुनिक विज्ञान स्वीकारता है कि पदार्थ में गर्मी प्राप्त करने के तीन स्रोत हैं—संवाहन (conduction), संनयन (convection) तथा विकिरण (radiation) तीनों प्रकार के संचरित तापों में तीन ही प्रकार के लक्षण पाए जाते हैं जिसको तुलसीदास जी ने अनेक स्थलों पर वर्णन किया है–

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥[16]

अन्यत्र–

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी।
त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी॥[17]

महाकवि तुलसीदास जी ताप (अग्नि) के गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ताप में पदार्थ को पिघलाने की शक्ति है–

निज परिताप द्रवइ नवनीता।
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥[18]

---

14. मानस, उत्तरकाण्ड, 110 (8)
15. मानस, उत्तरकाण्ड, 31 (4)
16. मानस, उत्तरकाण्ड, 20 (1)
17. मानस, आयोध्याकाण्ड, 234 (2)
18. मानस, उत्तरकाण्ड, 124 (4)

यहां तक कि पाला (बर्फ) तो अपने वास्तविक रूप में अग्नि के पास पहुंच ही नहीं सकता—

तात अनल कर सहज सुभाऊ।
हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ॥[19]

प्रकाश द्वारा अंधकार दूर करने के लिए मुख्य ताप स्रोत सूर्य है—

मद मोह महा ममता रजनी।
तम पुंज दिवाकर तेज अनी ॥[20]

महाकवि ने ताप को अग्नि रूप में छ: प्रकार की अग्नि माना है—

1. क्रोधाग्नि—

हंसत देखि नख सिख रिस व्यापी।
राम तौर भ्राता बड़ पापी ॥[21]

क्रोधाग्नि के परिणामस्वरूप हाथ कार्य नहीं करता, छाती जलती रहती है। हाथ में हथियार भी बेकार हो जाता है, स्वभाव बदल जाता है—

बहइ न हाथु दहइ रिस छाती।
भा कुठारु कुंठित नृपघाती ॥
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ।
मोरे हृदयं कृपा कसि काऊ ॥[22]

2. जठराग्नि—

भोजन करिअ तृपिति हित लागी।
जिमि सो असन पचवै जठरागी ॥[23]

3. बड़वाग्नि—

संधानउ प्रभु बिसिख कराला।
उठि उदधि उर अंतर ज्वाला ॥[24]

4. दावाग्नि—

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के।
कामद घन दारिद दवारि के ॥[25]

---

19 मानस, बालकाण्ड, 89 (4)
20 मानस, उत्तरकाण्ड, 13 (3)
21 मानस, बालकाण्ड, 276 (3)
22 मानस, बालकाण्ड, 279 (1)
23 मानस, बालकाण्ड, 118 (5)
24 मानस, सुन्दरकाण्ड, 57 (3)
25 मानस, बालकाण्ड, 31 (4)

5 यागाग्नि

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।
राम कृपां बैकुंठ सिधारा॥[26]

6. कामाग्नि–

चली सुहावनि त्रिविध बयारी।
काम कृसानु बढ़ाव निहारी॥[27]

तापमान के अध्ययन से पता चलता है कि तापमान का स्तर जब −273° सेल्सियस अथवा −459° फारेनहाइट होता है तो उस पदार्थ की तापीय हलचल पूर्णतया लुप्त हो जाती है क्योंकि उस पदार्थ के सभी अणु स्थिर हो जाते हैं अथवा जड़वत हो जाते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यही पदार्थ का निम्नतम तापमान है और वैज्ञानिक भाषा में इसी को चरम शून्य (absolute zero) अथवा निरपेक्ष स्थिरता (absolute rest) कहते हैं। इसका कारण यह है कि इस अवस्था में किसी प्रकार की कोई हलचल नहीं होती, कोई जीवन तथा स्पन्दन नहीं होता। किन्तु कपिल का सापेक्षवाद कहता है कि इस 'चरम शून्य' से परे सूक्ष्म जगत में इसी प्रकार की हलचल होती है और चेतनपुरुष के संयोग से जीवन तथा स्पंदन होता है अथवा जीव को चरम स्थिरता तभी प्राप्त होती है जबकि कारण और कार्य की शृंखला टूट जाती है तथा जीव प्रकृति के बंधन से मुक्त हो जाता है परन्तु यह अवस्था प्राप्त करना कठिन है–

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद।
संत पुरान निगम आगम बद॥[28]

चुम्बकत्व

पदार्थ में चुम्बकत्व एक ऐसी शक्ति है जिससे सभी वस्तुएं आकर्षण एवं विकर्षण नियमों द्वारा अदृश्य रूप से प्रभावित होती रहती हैं। यह प्रबल शक्ति पृथ्वी, सूर्य तथा ताराओं से कण-तरंगों के रूप में निरंतर प्रवाहित होती है। यही शक्ति जीव-जन्तुओं एवं वनस्पति में विद्यमान है जिसके फलस्वरूप आकर्षण और विकर्षण (attraction and repulsion) होता रहता है, द्वन्द्वात्मक संघर्ष चलता रहता है–

---

26 मानस, अरण्यकाण्ड, 8 (1)

27. मानस, बालकाण्ड, 125 (2)

28. मानस, उत्तरकाण्ड, 118 (2)

मोह न नारि नारि कें रूपा।
पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥[29]

महर्षि कपिल कहते हैं कि जब प्रकृति और पुरुष (आत्मा) दो परस्पर विरोधी शक्तियों का संयोग होगा तो अनेक प्रकार की परस्पर विरोधी भौतिक शक्तियों का भी जन्म होना स्वाभाविक है क्योंकि द्वन्द्वात्मक संघर्ष से ही तो जगत् का कर्म व्यापार आगे बढ़ सकेगा, कारण और कार्य की अटूट शृंखला बनी रहेगी और फिर भी कारण से कार्य कठिन होता रहेगा—

कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर ॥[30]

वैज्ञानिक एच.सी. आरेस्ट्ड ने सन् 1820 ई. में ज्ञात किया था कि चुम्बक के समान-ध्रुव आपस में एक दूसरे को ढकेलते हैं जबकि असमान-ध्रुव परस्पर आकर्षित करते हैं। यही कारण है कि भौतिक-जगत में पुरुष का नारी के प्रति आकर्षण और नारी का नारी के प्रति अपकर्षण है। पदार्थ विज्ञान कहता है—"प्रकृति के प्रत्येक अणु में आकर्षण-विकर्षण की दोनों शक्तियां एक साथ हैं। आकर्षण कण (प्रोटोन) एवं आकर्षित कण (इलैक्ट्रॉन) से ही समस्त परमाणु बने हैं।" शक्ति-शक्तिमान का अभेद सृष्टि के अणु-अणु में आज स्पष्ट होने लगा है और यह आश्चर्य नहीं होना चाहिए यदि कल को चलकर विज्ञान कहने लगे कि "उस अणुओं के आकार में सर्वत्र भारतीयों द्वारा पूजित शिवलिंग दीखने लगा है।"

प्रकाशिकी

यह सर्वविदित है कि दर्पण में मुख देखकर रूप संवारा जाता है जो उसका स्वयं का प्रतिबिम्ब होता है—

रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा।
बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा ॥[31]

और बच्चों, वानरों एवं पक्षियों के लिए ये ही प्रतिबिम्ब क्रीड़ा का साधन है—

---

29 मानस, उत्तरकाण्ड, 115 (1)

30 मानस, अयोध्याकाण्ड, 179 (दोहा)

31 मानस, अयोध्याकाण्ड, 1 (3)

जह तह दखहि निज पर छाहीं।
बहु विधि कूजहिं नृत्य कराहीं ॥[32]

अन्यत्र—

रूप रासि नृप अजिर बिहारी।
नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी ॥[33]

यदि प्रतिबिम्ब के विषय में किंचित विचार किया जाए तो देखेंगे कि यह भौतिक विज्ञान की उपशाखा प्रकाश का ही एक अंग है। जब प्रकाश पुंज (beam of light) किसी पदार्थ से टकराता है तो प्रकाश विकिरणें की तीन गति होती है—1. परावर्तन (reflection), 2. अपवर्तन (refraction) तथा 3. अवशोषण (absorption)। परावर्तन की दशा में वस्तु का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। जिस धातुई धरातल पर जितना अवशोषण और अपवर्तन कम होगा उस पर उतना ही अच्छा परावर्तन होगा। इस प्रकार शत-प्रतिशत परावर्तन में प्रतिबिम्ब इतना स्पष्ट होता है कि वस्तु और प्रतिबिम्ब में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। यही कारण है कि राम-रावण युद्ध में राम को रावण के दस सिर तथा बीस भुजाएं दिखाई दीं लेकिन बीस पैर या दस नाभियां नहीं। इसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वास्तविकता यह थी कि रावण जो युद्ध-भूमि में सुरक्षा-कवच पहने हुए था उसके पीछे दो समतल परावर्तक (चित्र 3.1) लगे हुए थे जिनके बीच का कोण 32.73 अंश का था क्योंकि—

$$n = \frac{360}{\theta} - 1$$

$$\theta = \frac{360}{n+1}$$

$$\theta = \frac{360}{10+1} = \frac{360}{11} = 32.73 \text{ अंश}$$

(जबकि θ दो समतलों में मध्य कोण तथा n प्रतिबिम्बों की संख्या है)

ऐसी स्थिति में वास्तविक सिर एवं भुजाओं का ज्ञान न होने के कारण रावण की मृत्यु सुगम नहीं थी। रावण ज्ञानी, विज्ञानी एवं धुरंधर विद्वान था। वह जानता था कि परावर्त्तकों के मध्य 30 अंश का कोण बना रखने पर सिर ग्यारह दिखाई देते और भुजाओं की संख्या बाईस हो जाती। इस प्रकार ग्यारह सिरों में मध्य

32. मानस, उत्तरकाण्ड, 27 (3)
33. मानस, उत्तरकाण्ड, 76 (4)

चित्र 3.1 : 90° पर समतल दर्पणों द्वारा बना प्रतिबिम्ब

का पहचानना सरल था जिसको श्रीराम लक्ष्य बना सकते थे। नाभि पेट की सतह से गहरी होने के कारण प्रतिबिम्ब नहीं बना सकती थी और इस प्रकार नाभिकुंड में तीर लगने से प्रत्यक्ष शरीर आहत होता था जिस कारण रावण की मृत्यु सम्भव थी—

नाभिकुंड पियूष बस याकें।
नाथ जिअत रावनु बल ताकें ॥[34]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर ही रावण को दसानन कहा गया है—

संत कहहिं असि नीति दसानन।
चौथेंपन जाइहि नृप कानन ॥[35]

---

34 मानस, लंकाकाण्ड, 101 (3)

35 मानस, लंकाकाण्ड, 6 (2)

नी

संध्या समय जानि दससीसा।
भवन चलेउ निरखत भुजबीसा ॥[36]

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से रावण को चार वेदों (ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद) तथा छः शास्त्रों (वैशेषिक दर्शन, न्यायदर्शन, सांख्यदर्शन, योगदर्शन, मीमांसादर्शन, वेदान्तदर्शन) का पूर्ण ज्ञान था और इसीलिए रावण को दस सिरों की कल्पना की गई है। यों तो श्रीराम भी बारह कलाओं तथा श्रीकृष्ण सोलह कलाओं में पारंगत थे किन्तु श्रीराम को बारह सिर एवं चौबीस भुजाओं तथा श्रीकृष्ण को सोलह सिर एवं बत्तीस भुजाओं वाला किसी ने नहीं दर्शाया या वर्णन किया क्योंकि ये दोनों महान् विभूतियां कवच धारण नहीं करते थे। यदि श्रीराम कवच धारण करते तो अवश्य ही अनेक सिर वाले कहलाते।

संतकवि तुलसीदास जी ने परावर्तन नियम को ध्यान में रखते हुए ही रेत में मृगतृष्णा (चित्र 3.2) या मरीचिका (mirrage) का वर्णन किया है–

तृषित निरखि रवि कर भव बारी।
फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ॥[37]
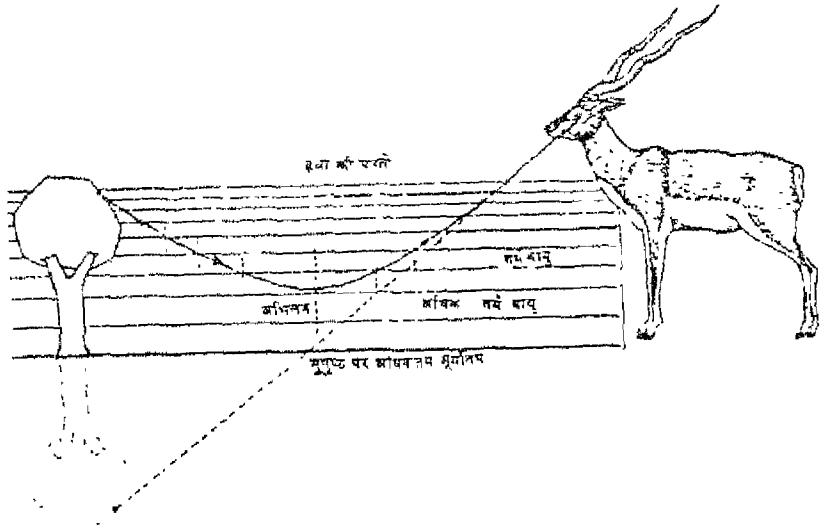
चित्र 3.2 मरीचिका–निर्माण (मृगतृष्णा)

---

36. मानस, लंकाकाण्ड, 9 (3)
37. मानस, बालकाण्ड, 42 (4)

अन्यत्र—

तृषा जाइ बरू मृगजल पाना।
बरू जामहिं सस सीस बिषाना ॥[38]

जर्मनी में 'शिव लैसर' नामक अदृश्य प्रकाश-पुंज को विकसित किया गया है। ये लैसर विकिरणें दूर से ही किसी वस्तु को भस्म कर देती हैं तथा आयुर्विज्ञान, उद्योग एवं रक्षा-उपकरणों में बहुत उपयोगी हैं। यद्यपि वैज्ञानिकों ने 'शिव लैसर' का आविष्कार बीसवी शताब्दी में किया है और इसका नामकरण भी शिवजी के तीसरे नेत्र से निकली अग्नि के नाम पर ही किया गया है, किन्तु तुलसीदास जी ने तो इसका वर्णन पहले ही कर दिया था—

तब सिवं तीसर नयन उधारा।
चितवत कामु भयउ जरि दारा ॥[39]

रेडार (RADAR) अंग्रेजी के शब्दों Radio Detection and Ranging का संक्षिप्त रूप है जिसका अर्थ है रेडियो तरंगों का संधान तथा परासन। यह तकनीक द्वितीय महायुद्ध (1939-42) में विकसित की गई थी। रेडार में सूक्ष्म तरंगों वाली स्पदन (pulses) को प्रेषित किया जाता है जो वापिस अपने लक्ष्य (target) से प्रतिबिम्वित होने पर प्राप्त की जाती है। इनका उपयोग वर्षा-तूफानों की भविष्यवाणी करने तथा वायुयानों की परछाईं से उसकी वास्तविक स्थिति को ज्ञात करने में किया जाता है। द्वितीय महायुद्ध में ज्ञात की गई तरंगों का विवरण तुलसीदास जी 'मानस' में पहले ही दे चुके हैं—

निसिचर एक सिंधु महुं रहई।
करि माया नभु के खग गहई ॥
X X X
गहइ छाँह सक सो न उड़ाई
एहि बिधि सदा गगनचर खाई ॥[40]

यद्यपि वैज्ञानिकों ने वातानुकूलन (airconditioning) पर शोध-कार्य इसी शताब्दी मे किया है किन्तु तुलसीदास जी ने राजा जनक के महल को, जहां श्रीराम-लक्ष्मण-विश्वामित्र ठहरे थे, गर्मियों मे गर्म और सर्दियों में सर्द अर्थात प्रत्येक मौसम में सुखदायी बतलाकर वातानुकूलित स्थान की ओर संकेत किया है—

सुंदर सदनु सुखद सब काला।
तहां बासु लै दीन्ह भुआला ॥[41]

---

38 मानस, उत्तरकाण्ड, 121 (9)
39 मानस, बालकाण्ड, 86 (3)
40 मानस, सुन्दरकाण्ड, 2 (1-2)
41 मानस, बालकाण्ड, 216 (4)

ध्वनि एक ऊर्जा है। आधुनिक विज्ञान की ऐसी मान्यता है कि एक ऊर्जा दूसरी ऊर्जा के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह स्थिति किन्हीं विशेष निमित्तों के उपस्थित होने पर होती है। रेडियो द्वारा ध्वनि का प्रसारण किया जाता है, यहां ध्वनि विद्युततरंगों में परिवर्तित हो जाती है और श्रुतियंत्र में पहुंचकर वह पुनः ध्वनिरूप में बदल जाती है। प्राकृतिक अथवा ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार उच्चारण और श्रवण के जो साधन सामान्यतः प्राणी को उपलब्ध है, सांसारिक व्यवहार को संतुलित रखने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय दर्शन ध्वनि के आश्रयरूप में आकाश को स्वीकार करता है। यदि आधुनिक विज्ञान के अनुसार ऊर्जा का निराश्रित रहना संभव नहीं, तो उसका कोई आश्रय मानना आवश्यक होगा। इसलिए ध्वनि या शब्द की उत्पत्ति के तीन कारण है—संयोग, विभाग तथा शब्द। शब्द का समावायिकरण आकाश है। महर्षि कपिल ने कहा था—

संयोगाद् विभागाच्च शब्दाच्च शब्दनिष्पत्ति।[42]

महाकवि तुलसीदास जी ने 'मानस' में पांच प्रकार के शब्दों को स्वीकारा है जिनसे पांच ध्वनि (वेदध्वनि, वन्दिध्वनि, जयध्वनि, शंखध्वनि और हुलूध्वनि) उत्पन्न होती हैं—

पंच सबद धुनि मंगल गाना।
पट पांवड़े परहिं बिधि नाना॥[43]

पांच प्रकार के शब्दों (तन्त्री, ताल, झांझ, नगारा और तुरही) का अनेक प्रसंगों में संत तुलसीदास जी ने वर्णन किया है—

धरू मारू बोलहिं घोर।
रहि पूरि धुनि चहुं ओर॥[44]

और—

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई।
बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥[45]

परीक्षणों से यह देखा गया है कि जल-वायु आदि ध्वनि को वहन करने

42. वैशेपिकदर्शनम्, अध्याय-2, आन्हिक-2, सूत्र-31 (110)
43. मानस, बालकाण्ड, 318 (2)
44. मानस, लंकाकाण्ड, 100 (3)
45. मानस, किष्किंधाकाण्ड, 14 (1)

के माध्यम है। बादल में बिजली की चमक (प्रकाश) और गरज (ध्वनि) एक साथ होते हैं; किन्तु चमक तत्काल दिखाई दे जाती है जबकि गरज उसके कुछ क्षण अनन्तर सुनाई देती है, यहां ध्वनि का वाहक-माध्यम वायुमंडल है—

> **घन घमंड नभ गरजत घोरा।**
> **प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥**
> **दामिनि दमक रह न घन माहीं।**
> **खल के प्रीति जथा थिर नाहीं॥**[46]

इंजीनियरी

जैसे कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि आधुनिक भौतिक विज्ञान में केवल ऊर्जा (energy) का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। ऊर्जा पांच वर्गों में विभाजित है—ताप, प्रकाश, विद्युत, चुम्बकत्व, ध्वनि। इन सभी प्रकार की ऊर्जाओं को दैनिक जीवन में प्रयोग लाने पर अनुप्रयुक्त भौतिक (applied physics) के क्षेत्र में पदार्पण किया जाता है। इन क्षेत्रों में विशेषकर इंजीनियरी, वैमानिकी आदि प्रसगों को समायोजित किया जा सकता है।

जहां तक भारतवर्ष की इंजीनियरी का प्रश्न है वह इतनी बढ़ी-चढ़ी थी और आज भी है जिसे देखकर सहज ही विश्वास नहीं हो पाता। कलकत्ता में बना हावड़ा ब्रिज एक ऐसा स्तम्भ रहित पुल है जिसकी कारीगरी देखकर सिर चकराता है। रामायण काल में भी नल-नील जैसे ऐसे विद्वान इंजीनियर थे जिन्होंने सौ योजन (चार सौ कोस) का पुल बिना किसी स्तम्भ के बनाया था और वह भी केवल पाषाण खण्डों एवं वृक्षों के आधार पर—

> **अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ।**
> **आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाई॥**[47]

आज तक घर को नींव सहित उठाना एक अतिश्योक्ति थी, किन्तु सुना गया है कि इसी दशाब्दी में आधुनिक विज्ञान ने इंगलैंड में किसी घर को पूर्णरूपेण उठाने और उसे पुनर्स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली है। आज हम आश्चर्य करते हैं किन्तु प्राचीन भारत का उन्नत विज्ञान इस विधि से पूर्णतया अवगत था—

---

46 मानस, किष्किंधाकाण्ड, 13 (1)

47 मानस, लंकाकाण्ड, 1 (दोहा)

अगि लघु रूप गयउ हनुमता
आनेउ भवन समेत तुरंता ॥[48]

वैमानिकी

विमान नामक यंत्र तो वैदिक काल से ही इस देश में प्रचलित था। संस्कृत में 'वी' पक्षी को कहते हैं और 'मान' का अर्थ अनुरूप अथवा सदृश है। इसलिए विमान का अर्थ 'पक्षी के सदृश' होता है। वेद में विमान बनने की विधि बतलाते हुए कहा गया है—

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पततां,
वेद नावः समुद्रियाः। (ऋग्वेद)

(अर्थात जो आकाश में पक्षियों की स्थिति को जानता है, वह समुद्र-आकाश की नाव-विमान को जानता है)। वेद में विमान बनाने की इस विधि से यही ज्ञात होता है कि विमान की रचना पक्षियों के ही सिद्धांत पर हुई थी। आज हम प्रत्यक्ष भी वायुयानों को चिड़िया की ही आकृति का उड़ते हुए देखते हैं।

पंचतंत्र की एक कथा में लिखा है कि एक धूर्त मनुष्य विष्णु का रूप धारण करके गरूड़ की आकृति का ही वाहन लाया करता था। भगवान शिवजी के पुत्र कार्तिकेय के विमान की आकृति मयूर की थी। वाल्मीकीय रामायण में पुष्पक विमान का वर्णन है—

ब्रह्मणोर्थे कृतं दिव्यं दिवि यद्विश्वकर्मणा।
विमानं पुष्पकं नाम सर्वरत्नविभूषितम् ॥[49]

महाकवित तुलसीदास जी ने भी रावण के पास पुष्पक विमान का वर्णन किया है जिसको विभीषण ने रावण मरणोपरांत श्रीराम के सम्मुख समर्पित कर दिया था—

लै पुष्पक प्रभु आगें राखा।
हंसि करि कृपासिंधु तब भाषा ॥[50]

श्रीमद्भागवत में शाल्व राजा के विमान का भी वर्णन आया है। आज से पांच हजार वर्ष पूर्व एक शाल्व नाम के राजा थे। उनके 'सौभ' नामक विमान था, जिसे सौभनगर कहते थे। इस वायुयान को लेकर राजा शाल्व ने द्वारका पर

---

48. मानस, लंकाकाण्ड, 54 (4)
49. वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकाण्ड, सर्ग-9
50. मानस, लंकाकाण्ड, 116 (2)

चढाई की थी और उसने वहां वीर यादवों के छक्के छुड़ा दिए थे। भगवान श्रीकृष्ण ने बाणों और गदा द्वारा उसको छिन्न-भिन्न करके समुद्र में गिराया था। शाल्व का यह विमान कभी आकाश में उड़ा करता, कभी पहाड़ों की चोटियों पर चढ़ जाता और कभी जल में तैरने लगता तथा कभी पनडुब्बी की भांति जल में प्रवेश कर जाता—

स लब्धवा कामगं यानं तमोधाम दुरासदं।
ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं कृष्णिकृतं स्मरन्॥
क्वचिद भूमौ क्वचिद व्योम्नि गिरिश्रृंगे क्वचित्॥[51]

उसनें समस्त सेना रहा करती थी, वह बहुत ही बड़ा था। एक ही वायुयान मे वहीं न्यायालय हो, वहीं युद्ध की सारी सामग्री हो, आराम के सभी सामान विद्यमान हों और प्रजा भी उसमें बसती हो—यह कितने आश्चर्य की बात है। सोचिए, कितनी भारी शक्ति उस एक वायुयान में थी। ऐसा वायुयान आज संसार मे देखने में नहीं आता। सबसे विशाल और भव्य विमान कर्दम ऋषि का था। श्रीमद्भागवत में इसका भी अपूर्व वर्णन देखने योग्य है। विमानों के बनाने वाले कारीगर इस देश में बौद्ध काल तक मौजूद थे। किन्तु पाश्चात्य सभ्यता की प्रशंसा करने वाले तथा पाश्चात्य तकनीक को उन्नत समझने वाले रॉइट बन्धुओं (Wright Brothers) को ही विमान का आविष्कारक मानते हैं।

इन सब उपलब्ध आंकड़ों को यदि एकत्र किया जाए तो हमारे सभी प्राचीन ऋषियों-मुनियों पर अपने-अपने विमान थे। सर्वप्रथम पुष्पक विमान कुबेर के पास था, जिसे रावण ने विजय करके प्राप्त किया था—

एक बार कुबेर पर धावा।
पुष्पक जान जीति लै आवा॥[52]

शिव जी एवं ब्रह्मा जी के पास भी अपने विमान थे—

सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा।
चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा॥[53]

रामायण काल में न केवल वायुयान थे बल्कि अन्तरिक्ष यान भी उपलब्ध थे जहां से पृथ्वी का सम्पूर्ण दृश्य देखा जा सकता था—

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना।
देखत रन नभ चढ़े विमाना॥[54]

---

51 श्रीमद्भागवत
52 मानस, बालकाण्ड, 178 (4)
53 मानस, बालकाण्ड, 313 (1)
54 मानस, लंकाकाण्ड, 80 (1)

उस समय एसे भी विमान थे जो न केवल चन्द्रमा या अन्य लोकों को जाने में समर्थ थे, बल्कि सूर्य तक भी जाने का प्रयास करते। यह असफल प्रयास भी नवयुवकों ने किया—

हम दो बंधु प्रथम तरूनाई।
गगन गए रवि निकट उड़ाई॥
तेज न सहि सक सो फिरि आवा।
मैं अभिमानी रवि निअरावा॥[55]

श्रीराम के त्रेता युग में विमानों से रॉकेटों का भी प्रयोग करना और उन्हे मिसाइल रूप में भी प्रयोग करना अत्याधिक सरल था। इस प्रक्रिया में हथियारो से मार पड़ती किन्तु मारने वाला अज्ञात रहता था—

धरू धरू मारू सुनिअ धुनि काना।
जो मारइ तेहि कोउ न जाना॥[56]

इन सब उपलब्ध प्रमाणों से जाना जाता है कि भारत में विमान बनाने की कला ज्ञात थी। विमान पक्षी की आकृति के बनते थे। इसीलिए विष्णु का वाहन गरूड़ तथा कार्तिकेय का वाहन मयूर कहा गया है। उस समय विमान रूप मे नभ-रथों का भी प्रचलन था—

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ॥[57]

विमानों के सम्बन्ध में भारद्वाज ऋषि प्रणीत एक प्राचीन पुस्तक 'अंशुबोधिनी' है। इस पुस्तक में अनेक विद्याओं का वर्णन है। प्रत्येक विद्या के लिए एक-एक अधिकरण रखा गया है। इन अधिकरणों में एक विमान अधिकरण भी है। इस अधिकरण में आए हुए भारद्वाज ऋषि के 'शक्त्युद्गमोघष्टौ' सूत्र पर बोद्धायन ऋषि (600 वर्ष ई.पू.) की वृत्ति इस प्रकार है—

शक्तुद्गमो भूतवाहो धूमयानशिखोद्गमः।
अंशुवाहस्तारामुखो मणिवाहो मरूत्सखः॥
इत्यष्टकाधिकरने वर्गाण्युक्तानि शास्त्रतः॥

इन श्लोकों में विमान की रचना और आकाश संचारी गति के आठ विभाग इस प्रकार हैं—(1) 'शक्तुद्गम' बिजली से चलने वाला; (2) 'भूतावाह' अग्नि, जल और वायु आदि से चलने वाला; (3) 'धूमयान' वाष्प से चलने वाला; (4) 'शिखोद्गम'

---

55 मानस, किष्किंधाकाण्ड, 27 (1-2)
56 मानस, लंकाकाण्ड, 72 (2)
57 मानस, अरण्यकाण्ड, 28 (दोहा)

पचशिखी के तेल से चलने वाला; (5) 'अंशुवाह' सूर्य-किरणों से चलने वाला; (6) 'तारामुख' चुम्बक से चलने वाला; (7) 'मणिवाह' सूर्यकान्त अथवा चन्द्रकान्त आदि मणियों से चलने वाला तथा (8) 'मरुत्सखा' केवल वायु से चलने वाला।

अनेक प्रकार के गगन वाहनों, वायुयानों के धरती पर उतरने के लिए हवाई-पट्टियों का भी प्रावधान था। महाकवि तुलसीदास जी ने ऐसे अनेक हवाई अड्डों का 'मानस' में वर्णन किया है जहां पर पुष्पक विमान आदि उतरता था—

तुरत विमान तहां चलि आवा।
दंडक वन जहँ परम सुहावा॥

X X X

तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा।
चला विमानु तहाँ ते चोखा॥[58]

अन्यत्र—

आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरउ उतरेउ भूमि विमान॥[59]

प्राचीन भारम में विमान मानव रहित एवं स्वचालित थे—

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु॥[60]

वायुयान के अतिरिक्त इंजीनियरी क्षेत्र में मिसाइल का भी अपना पृथक महत्व है। मिसाइल एक वाहक रूप में प्रयोग होता है जिसको आरम्भ में ही जो शक्ति दी जाती है उसी के आधार पर उसकी गति निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त मिसाइल को मध्य मार्ग में किसी भी रूप में ऊर्जा (ईंधन) देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रारम्भ में ही इसका विस्फोट कर दिया जाता है ताकि निर्धारित लक्ष्य पर पहुच सके। जबकि रॉकेट में मध्य मार्ग में भी ऊर्जा दी जाती है और तभी यह गन्तव्य स्थान पर पहुंच पाता है। मिसाइल की गति आद्योपरांत एक समान होती है। संतकवि तुलसीदास जी ने भी 'मानस' में मिसाइल का उदाहरण प्रस्तुत किया है—

चढु मम सायक सैल समेता।
पाठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥[61]

---

58 मानस, लंकाकाण्ड, 119 (1-3)

59 मानस, उत्तरकाण्ड, 4-क (दोहा)

60 मानस, उत्तरकाण्ड, 4-क (दोहा)

61 मानस, लंकाकाण्ड, 59 (3)

उपर्युक्त उदाहरण में श्री भरत ने हनुमान जी को अपने बाण रूपी मिसाइल के द्वारा श्रीराम के पास भेजने का प्रस्ताव रखा जिसको हनुमान जी ने अस्वीकार कर दिया था। इसके अतिरिक्त रॉकेटों को आसमान से विध्वंसक-कार्य के लिए पृथ्वी पर गिराया जाता है जिसके फलस्वरूप कहीं-कहीं पर धरातल में इतने गहरे से प्रवेश कर जाते हैं कि पाताल-तोड़ कुओं के समान जल-धारा फूट निकलती है। ध्यातव्य है प्रस्तुत उदाहरण—

नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा।
महि ते प्रगट होहिं जलधारा ॥[62]

आज कुछ ऐसे अन्वेषक हैं जिनकी यह मान्यता है कि प्राचीन काल मे अन्तरिक्ष से अन्य ग्रहों (planets) से बुद्धिमान एवं विकसित प्राणियों का आगमन इस पृथ्वी पर हुआ और उन्हीं के द्वारा मानव सभ्यता की नींव रखी गई—

सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृंद।
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद ॥[63]

उन्हीं विचारकों में एक स्विच अन्वेषक एरिक वॉन डेनिकेन भी हैं जिन्होने अनेक पुस्तकें (Chariots of God-1961; In search or Ancient Gods-1973, Miracles of the Gods-1976) लिखी हैं और संसार के विभिन्न देशों में भ्रमण कर प्राचीन कलाकृतियों, पुरातत्व अवशेषों तथा गुफाचित्रों आदि का गहन अध्ययन कर अनेक प्रकार के सूत्रों का संकलन किया है और उनका सचित्र तथा प्रमाणिक विवरण अपनी पुस्तकों में प्रस्तुत किया है।

सन् 1971 ई. में पृथ्वी से परे जीव (extra-terrestrial life) सम्बन्धित रूसी एवं अमेरिकी वैज्ञानिकों की आर्मेनिया (रूस) में एक बैठक हुई जिसमें निर्णय लिया गया कि अन्य ग्रहों पर विकसित सभ्यताओं की सम्भावनाएं अत्यधिक है तथा हमारा वर्तमान वैज्ञानिक ज्ञान उनसे सम्पर्क स्थापित करने में समर्थ नही है। अतः यही कारण है कि आधुनिक विज्ञान के द्वारा आज मानव अंतरिक्ष मे नाना प्रकार के अनुसंधान कर रहा है। कभी चन्द्रमा, कभी मंगल, कभी शुक्र और कभी अंतरिक्ष में ही अपनी प्रयोगशालाएं संचालन में प्रयत्नशील हैं।

डेनिकेन के अनुसार रॉकेट विज्ञान के संस्थापक प्रोफेसर हरमन ओबथ का विचार है कि पृथ्वी से परे भिन्न लोक के मनुष्यों का पदार्पण इस पृथ्वी पर हुआ—

62 मानस, लंकाकाण्ड, 51 (1)

63 मानस, उत्तरकाण्ड, 11-ग (दोहा)

64 मानस, बालकाण्ड, 102 (2)

जबहिं संभु कैलासहिं आए।
सुर सब निज निज लोक सिधाए ॥[64]

प्रोफेसर हरमन ओबर्थ के विचार से उड़न तश्तरियां (Flying saucers) अतरिक्ष यान हैं और इनमें बैठकर अन्य ग्रहों के बुद्धिमान प्राणी पृथ्वी पर आते रहे हैं।

इस पृथ्वी पर देवताओं के आगमन के सम्बंध में अन्य विचारकों ने भी अनुसंधान किया है। उन्हीं विचारकों में प्रमुख रूसी अन्वेषक निकोलाई रोयरिख (1874-1947) का नाम भी आता है जो अपनी अनेक पुस्तकों (Heart of Asia, Himalayas; Abode of Light etc.) में इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है कि हिमालय के उच्च शिखरों पर देवताओ का प्रवास है तथा वह केन्द्र आध्यात्मिक ज्ञान का भण्डार है। प्रसिद्ध रूसी आत्मदर्शिनी मैडम ब्लेवादस्की ने भी अपनी पुस्तक "The Secret Doctrine" में इसी प्रकार के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया हे। किन्तु यह कोई नवीन सिद्धांत नहीं है क्योंकि असंख्य उदाहरण हमें रामायण, महाभारत तथा पौराणिक ग्रंथों में मिलते हैं जबकि देवताओं का आगमन इस पृथ्वी पर अनेकों बार हुआ है। देवता अपने सूक्ष्म शरीर (astral body) को स्थूल शरीर (physical body) में परिवर्तन कर लेने की विद्या में प्रवीण होते हैं। प्रस्तुत है महाकवि तुलसीदास जी की इस प्रसंग में स्वीकारोक्ति—

देवदनुज धरि मनुज सरीरा।
बिपुल बीर आए रनधीरा ॥[65]

उड़न तश्तरियों (UFOs)[66] की भी अपनी विचित्र कहानी है। पाश्चात्य देशो मे तो इन्हें हजारों बार देखा गया है, इन पर सैंकड़ों लेख तथा चित्रमय पुस्तके भी प्रकाशित हो चुकी हैं और यहां तक कि अनेक फिल्में भी बनाई जा चुकी है। 23 नवम्बर, सन् 1953 ई. को मिशीगन में किनरास हवाई अड्डे पर एक अज्ञात वस्तु रेडार के पर्दे पर दृष्टिगोचर हुई। फ्लाइट लेफ्टिनेंट आर. विल्सन को, जो जैट विमान एफ-86 के प्रशिक्षण उड़ान पर था, उस अज्ञात वस्तु का पीछा करने का आदेश दिया गया। रेडार विशेषज्ञों ने पर्दे पर 250 किलोमीटर तक उसका पीछा करते हुए विल्सन को देखा, किन्तु अचानक तेजी से उड़ती हुई दोनों वस्तुओं आपस में मिल गई, ऐसा रेडार के पर्दे पर देखा गया। विल्सन के जैट वायुयान से रेडियो सम्पर्क टूट गया। किन्तु आश्चर्यजनक बात यह थी कि बहुत खोज

---

65 मानस, बालकाण्ड, 250 (4)

66 UNidentified Flying Objects

अहमदाबाद संस्करण ने एक समाचार प्रकाशित किया—"शहर के ऊपर से यू एफ ओ. उड़ी।" बाद में समाचार मिला कि वह अज्ञात उड़न ज्वाला उदयपुर, अजमेर, इन्दौर, खण्डवा, अहमदाबाद, बड़ौदा, बम्बई, पुणे, औरंगाबाद, सतारा, अहमदनगर और मध्यवर्ती कई स्थानों पर दिखाई दी थी। 10 मार्च, सन् 1978 इ को भी इसी तरह की वस्तु को देखने का समाचार मिला और 3 अप्रैल से 17 अप्रैल के बीच भी कई दिन ऐसी ही अग्नि ज्वालाएं देखी गई। 3 अप्रैल, सन् 1978 ई. को श्री घुनकर करिया ने आकाश में उड़ती हुई एक अग्निज्वाला का चित्र अपने कैमरे में खींचा था। कहा जाता है कि वह अज्ञात वस्तु लगभग सो किलोमीटर की ऊंचाई पर उड़ रही थी और उसकी गति लगभग दस किलोमीटर प्रति सेकण्ड थी।

इन घटनाओं से कुछ लोगों का विश्वास है कि अन्य ग्रहों के विकसित प्राणी भूलोक पर आते हैं और चुम्बकीय क्षेत्र (magnetic field) बनाकर अथवा समय के आयाम (dimension) को लुप्त कर पृथ्वी के मनुष्यों तथा जहाजों को किसी अज्ञात लोक में अपहरण कर ले जाते हैं। इन विचित्र घटनाओं का विशद विवेचन अमेरिका के चार्ल्स बर्लिट्ज ने अपनी पुस्तक 'Bermuda Triangle' मे किया है। यहां पर यह कहना तर्कसंगत होगा कि उड़न-तश्तरियों का सम्बंध बरमूडा त्रिकोण की घटनाओं से भी जोड़ा जा सकता है। बरमूड़ा के पास एक ऐसा समुद्री त्रिकोण है जिसके आसपास विगत तीस वर्षो से लगभग सौ से भी अधिक वायुयान तथा समुद्री जलयान लुप्त हो चुके हैं और एक हज़ार से भी अधिक लोग गायब हो चुके हैं, किन्तु व्यापक सरकारी खोज के उपरांत आज तक उनका कोई चिन्ह नहीं मिल सका।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर पुष्टि होती है कि संतकवि तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में भौतिक विज्ञान को पूर्णतया आत्मसात् किया है। जब हम जगत और सृष्टि की रचना का अध्ययन एवं चिन्तन-मनन दैवी दृष्टिकोण से करते हे तो भौतिक शास्त्र भी एक भक्ति का विषय बन जाता है। चूंकि आज भौतिक विज्ञान का सम्बंध जगत के सभी कर्म-व्यापार से है, इसलिए वह केवल भौतिक विज्ञान ही नहीं है अपितु एक आध्यात्मिक शास्त्र भी है। अध्यात्म एक ऐसी प्रक्रिया हे जिसमें जगत की सभी प्रक्रियाओं का अंत हो जाता है।

अमेरिका के टेक्सास विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के प्रोफेसर डॉ ई सी जी. सुदर्शन के विचार से किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर उसका अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। डॉ. सुदर्शन कहते हैं कि इसी प्रकार भौतिक विज्ञान भी साध्य नहीं है, बल्कि साधनमात्र है और ज्ञान प्राप्त हो जाने पर अध्यात्म मे

[illegible] परिसंवाद [illegible] 5 नवम्बर सन् 1977 ई. को जवाहर लाल नेहरू
के अंतर्गत [illegible]नक यह कहना उचित है कि जैसा दृष्टिकोण
होगा शास्त्र भी वैसा ही बन जाएगा क्योंकि मूल रूप से दर्शन और विज्ञान में कोई अन्तर नहीं है। लेकिन यह दृष्टिकोण स्वयं किसी शास्त्र में नहीं होता, बल्कि चेतनपुरुष में होता है और वह आध्यात्मिक दृष्टिकोण आज के वैज्ञानिकों के व्यवहार और चरित्र में भी परिलक्षित होना चाहिए तभी भौतिक विज्ञान अध्यात्म का विषय बन सकता है।

4
रसायन विज्ञान

हम प्रतिदिन अनेक प्रकार के परिवर्तन देखते हैं। यथा—दूध खट्टा हो जाता है, लोहे पर जंग लग जाता है, गन्ने का रस पड़ा रहने पर सिरका बन जाता है, इत्यादि। इन सब क्रियाओं में पदार्थ का स्वभाव बदल जाता है और नए गुण वाले नए पदार्थ बनते हैं। इसके अतिरिक्त ये परिवर्तन स्थायी हैं और इन्हें सरलता से उलटा नहीं जा सकता। ऐसे परिवर्तनों को रासायनिक परिवर्तन कहते हैं। विज्ञान की वह शाखा, जिसके अन्तर्गत हम रासायनिक परिवर्तनों का अध्ययन करते हैं, रसायन विज्ञान कहलाती है। विभिन्न पदार्थों की रचना और इसके गुणों का अध्ययन भी इसी में सम्मिलित है।

पुरातन काल में रसायन विज्ञान को कीमिया (alchemy) कहते थे। उस समय उनका ध्येय केवल पारस पत्थर बनाना, सार्वजिक विलायक (universal solvent) तैयार करना तथा अमृत (elixir of life) की खोज करना था। रसायन एक अत्यंत प्राचीन विज्ञान है। प्राचीनकाल में हमारे पूर्वज अयस्कों (ores) से धातुओं को निकालने, औषधि तथा रंग बनाने एवं किण्वन (fermentation) की विधियाँ जानते थे। महरौली (दिल्ली) में कुतुब मीनार के पास जो अशोक का लौह स्तम्भ है, वह धातु विज्ञान में उनकी कुशलता का प्रमाण है। आर्यों का सोमरस तथा द्राविडों की ताड़ी निश्चय ही किण्वित द्रव्य थे। द्रव्य सूक्ष्म व अपरिवर्तनशील कणों अर्थात् परमाणुओं से बना है। यही हमारा आधुनिक सिद्धांत है। सुश्रुत, चरक, वागभट्ट आदि के लेखों से उस युग में आयुर्वेद के सम्बंध में हमारी कुशलता का परिचय मिलता है। प्रसिद्ध भारतीय रसायनज्ञ नागार्जुन (100 ई.पू.) ने पारे से अनेक उपयोगी औषधियां तैयार कीं जिनका वर्णन उन्होंने अपने ग्रंथ 'रस रत्नाकर' में किया।

दार्थों की रचना एवं लाक्षणिक गुणों के कारण होने वाले परिवर्तनों विश्लेषण तथा संश्लेषण के अध्ययन से सम्बंधित विषय को रसायन विज्ञान कहते हैं। ये परिवर्तन दो प्रकार के हैं—भौतिक तथा रासायनिक। भौतिक परितर्वन में पदार्थ का रूप बदल जाता है किन्तु कुछ समय के पश्चात वह अपनी वास्तविक स्थिति में आ जाता है। उदाहरणार्थ लौहे को चुम्बक पर रगड़ने से चुम्बक बन जाता है और भौतिक परिवर्तन के कारण फिर लोहा बना रहता है। पानी अपने हिमांक पर बर्फ हो जाता है किन्तु पिघलने पर फिर पानी का रूप ग्रहण कर लेता है। अतः रसायन विज्ञान भौतिकी की भांति मूल विज्ञान समझा जाता है परन्तु यह भी पदार्थ तथा इसके अनेक रूपों का अध्ययन भौतिकी के द्वारा इसकी रचना समझने के पश्चात करता है।

रासायनिक परिवर्तन

विज्ञान के अनुसार जब एक तत्व किसी दूसरे तत्व में परिवर्तन हो जाता है तो इस क्रिया को वैज्ञानिक भाषा में **उत्परिवर्तन** (transmutation) कहते हैं। सामान्यत किसी पदार्थ के असंख्य परमाणु अपने स्वाभाविक गुणों द्वारा अणुओं (molecules) के छोटे-छोटे समूह बनाते रहते हैं और किसी विशिष्ट तत्व के प्रत्येक अणु मे एक ही प्रकार के कई परमाणु होते हैं, किन्तु यौगिक या मिश्रित तत्वों मे दो या अधिक भांति के भी परमाणु होते हैं। जो पदार्थ एक ही प्रकार के परमाणुओं से बने होते हैं उन्हे मौलिक पदार्थ अथवा रासायनिक तत्व (elementary substance) कहते हैं किन्तु इसके विपरीत जिन पदार्थों के अणु दो या अधिक तत्वों के परमाणुओं के योग से बनते हैं उन्हें **'यौगिक पदार्थ'** (compound substance) कहते हैं। रसायन शास्त्र के नियमों के अनुसार पदार्थ के तत्वो में किसी भी परिवर्तन को जिसके द्वारा ठोस पदार्थ को दव अथवा द्रव पदार्थ को गैस में बदल दिया जाता है और इस परिवर्तन में उस तत्व के अणु अपने मौलिक स्वरूप में उसी प्रकार बने रहते हैं तो विज्ञान में इस परिवर्तन को **भौतिक परिवर्तन** (physical change) कहते हैं। इस परिवर्तन में पदार्थ का बाह्य स्वरूप, रंग-रूप तथा गुण आदि बदल जाते हैं, किन्तु पदार्थ का आन्तरिक स्वरूप अथवा मौलिक अस्तित्व उसी प्रकार बना रहता है। उदाहरणार्थ बर्फ, जल और वाष्प के परस्पर परिवर्तन को 'भौतिक परिवर्तन' कहा जाएगा क्योंकि इस प्रक्रिया में आक्सीजन तथा हाइड्रोजन के अणुओं का अस्तित्व उसी प्रकार बना रहता है जो फिर घूम कर अपने मौलिक स्वरूप में वापिस आ जाते हैं। इसके विपरीत जब किसी पदार्थ

क अणुओं का विखंडन होकर एक तत्व किसी दूसरे तत्व में परिवर्तित हो जाता है (जैसे जल के अणु, हाइड्रोजन और आक्सीजन में बदल जाते हैं) और उसे सरलता से पुनः परिवर्तित नहीं किया जा सकता तो विज्ञान में उस क्रिया को **'रासायनिक परिवर्तन** (chemical change) कहते हैं। यह एक स्थायी परिवर्तन होता है जिसमें पदार्थ का आन्तरिक स्वरूप एक दूसरे तत्व पर परिवर्तित होकर एक सर्वथा नई वस्तु का रूप ग्रहण कर लेता है।

पदार्थों के रासायनिक गुण

रासायनिक परिवर्तन में पदार्थ की संरचना में अन्तर आ जाता है। उदाहरणार्थ दूध को गर्म कर जामन देने पर दही बन जाती है किन्तु दही फिर दोबारा दूध नहीं बन सकता। इस प्रकार रासायनिक परिवर्तन में न केवल रूप बदलता है अपितु गुण भी बदल जाते हैं—

परम धर्ममय पय दुहि भाई।
अवटै अनल अकाम बनाई॥
× × ×
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता।
बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥[1]

अतः रसायन शास्त्र का सम्बंध केवल उन परिवर्तनों से है जब पदार्थ की आणविक संरचना बदलने पर घटित होती है। वैदिक काल से ही भारत में रसायन शास्त्र एक साहित्यिक निधि रहा है जो अथर्ववेद के नाम से प्रख्यात है। प्राचीन हिन्दु साहित्य में निथारना, घोल बनाना, रवे तैयार करना, आसवन (distillation) तथा ऊर्ध्वपातन (sublimation) के विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। महर्षि कणाद ने अपने ग्रंथ 'वैशेषिकदर्शनम्' में पदार्थों (द्रव्यों) का विभाग इस प्रकार किया है—

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो
दिगात्मा मन इति द्रव्याणि॥[2]

अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल (समय), दिशा, जीवात्मा और परमात्मा, मन ये द्रव्य हैं। महर्षि कणाद कहते हैं कि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थों के परस्पर साधर्म्य और वैधर्म्य की जानकारी

---

[1] मानस, उत्तरकाण्ड, 116 (7-8)

[2] वैशेषिकदर्शनम्, आन्हिक-1, अध्याय-1, श्लोक-5

से साथ उस विशेष से उत्पन्न हुए तत्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है (वैशेषिकदर्शनम् आह्निक 1 अध्याय 1 श्लोक 4)

किस पदार्थ में कितने गुण होते हैं, इसका संकलन किसी विद्वान ने निम्न श्लोक में किया है—

> वायोर्नवैकादश तेजसो गुणाः,
> जलक्षितिप्राणभूतां चतुर्दश।
> दिक्कालयोः पंच षडेव चाम्बरे,
> महेश्वरेऽष्टौ मनसस्तथैव च॥

अर्थात वायु के नौ; तेज (अग्नि) के ग्यारह; जल, पृथ्वी और जीवात्मा प्रत्येक के चौदह-चौदह, दिशा और काल के पांच; आकाश में छः; परमात्मा में आठ और मन के आठ गुण माने गए हैं। इसे सरलता से समझने के लिए गुणों का क्रम इस प्रकार सामने रखना चाहिए—

> गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व (सांसिद्धिक, नैमित्तिक), गुरुत्व, स्नेह, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार (भावना, वेग, स्थितिस्थापक), शब्द।

वायु के नौ गुण — स्पर्श से अपरत्व (समीप होना) तक आठ और नौवां 'वेग' नाम संस्कार।

तेज के 11 गुण — रूप से द्रवत्व (नैमित्तिक) तक दस, और ग्यारहवां वेग नामक संस्कार।

जल, 14 — रस से स्नेह तक तेरह और चौदहवां (वेग स्थिति-स्थापक नामक) संस्कार।

पृथ्वी, 14 — गन्ध से गुरुत्व तक तेरह और चौदहवां संस्कार (वेग, स्थितिस्थापक दोनों)। मध्यगत द्रवत्व नैमित्तिक है।

जीवात्मा, 14 — संख्या से विभाग तक पांच, बुद्धि से संस्कार (भावना नामक) तक नौ।

दिशा, 5 — संख्या से विभाग तक।

काल, 5 — संख्या से विभाग तक।

आकाश, 6 — संख्या से विभाग तक पांच, छटा शब्द।

परमात्मा, 8 — संख्या से विभाग तक पांच, बुद्धि, इच्छा, प्रयत्न ये तीन।

मन, 8 — संख्या से अपरत्व तक सात, आठवां संस्कार (वेग नामक)।

कौन-सा गुण किन पदार्थों (द्रव्यों) में रहता है, गुणों के क्रम से यह इस प्रकार है—

गन्ध — केवल पृथ्वी में।
रस — पृथ्वी और जल में।
रूप — पृथ्वी, जल और तेज (अग्नि) में।
स्पर्श — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में।
संख्या से विभाग तक—सब पदार्थों में।
परत्व, अपरत्व — विभु द्रव्यों को छोड़ कर शेष सब में।
द्रवत्व — जल में (सांसिद्धिक), पृथ्वी, तेज में (नैमित्तिक)।
गुरुत्व — पृथ्वी, जल में।
स्नेह — केवल जल में।
बुद्धि से संस्कार (भावना तक)—जीवात्मा में।
बुद्धि, इच्छा, प्रयत्न— जीवात्मा, परमात्मा दोनों में।
वेग संस्कार — विभु द्रव्यों को छोड़कर शेष सब में।
स्थितिस्थापक — केवल पृथ्वी में।
शब्द — आकाश में।

पदार्थों के इन्हीं कुछ गुणों को महाकवि तुलसीदास जी ने भी स्वीकारा है। प्रस्तुत हैं रामचरितमानस से उद्धृत कुछ प्रसंग—

स्नेह गुण—

प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई।
जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥[3]

स्थितिस्थापक गुण—

राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा।
थल बिहीन तरू कबहुँ कि जामा ॥[4]

गन्ध गुण—

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।
बिनु महि गंध कि पावइ कोई॥[5]

---

3 मानस, उत्तरकाण्ड, 88 (4)
4 मानस, उत्तरकाण्ड, 89 (1)
5 मानस, उत्तरकाण्ड, 89 (2)

रस गुण

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा।
जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥[6]

रूप गुण–

सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई।
जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई ॥[7]

स्पर्श गुण–

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा।
परस कि होइ बिहीन समीरा ॥[8]

आधुनिक विज्ञान में पदार्थों के अनेक सामान्य भौतिक गुणों (जड़त्वता, कठोरता, संपीड़यता, दृढ़ता, तन्यता, धातवर्ध्यता, प्रत्यास्थता, विभाज्यता, भंगुरता, संसजनता, लगिष्णुता) का वर्णन किया गया है और इसी के आधार पर क्रिया-प्रतिक्रिया की शृंखला चलती रहती है। अतः रसायन शास्त्र पदार्थों में होने वाली क्रिया-प्रतिक्रियाओं का क्रमबद्ध अध्ययन है। प्रकृति में उपलब्ध पदार्थों की तीन अवस्थाएं हैं–ठोस, द्रव और गैस। ठोस पदार्थ भी दो प्रकार के होते हैं–अकार्बनिक (धातु) तथा कार्बनिक (अधातु)। इस प्रकार प्रकृति में पाए जाने वाले पदार्थ चार श्रेणियों में रखे गए–(1) अकार्बनिक (धातु), (2) कार्बनिक (अधातु), (3) द्रव तथा (4) गैस और सम्भवतया महाकवि तुलसीदास जी का संकेत इन्हीं चार पदार्थों से है जिनका हमारे जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है–

करतल होहिं पदारथ चारी।
तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥[9]

चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम मोक्ष) का हमारे जीवन पर पर्याप्त प्रभाव है। धर्म का अर्थ है–धारण करना जो पृथ्वी का प्रतीक है। अर्थ प्रवाही है इसीलिए जल का प्रतीक है। काम जीव को दग्धता है इस कारण अग्नि का प्रतीक और मोक्ष भाववाचक संज्ञा होने के कारण वायु एवं गगन का प्रतीक मात्र है।

---

6. मानस, उत्तरकाण्ड, 89 (3)
7. मानस, उत्तरकाण्ड, 89 (3)
8. मानस, उत्तरकाण्ड, 89 (4)
9. मानस, बालकाण्ड, 314 (1)

क्रिया-प्रतिक्रिया

रासायनिक पदार्थो में होने वाली क्रिया-प्रतिक्रियाएं अग्नि, आर्द्रता (humidity) उत्प्रेरक (catalyst), प्रकाश आदि अनेक कारकों पर निर्भर करती हैं। अमेरिकी वेज्ञानिक डॉ. हेराल्ड क्लेटन ऊरे के अनुसार पृथ्वी का आदिम वातावरण (primitive atmosphere) वर्तमान वातावरण की तुलना में अन्तरिक्ष की परावेंगनी किरणो (ultraviolet rays) के प्रति अत्यधिक ग्रहणशील था। इस सिद्धांत के अनुसार सूर्य द्वारा विकसित पराबैंगनी किरणों की प्रतिक्रिया से पृथ्वी के वातावरण में व्याप्त जल के सूक्ष्म कण, मिथेन, अमोनिया आदि तत्वों के सूक्ष्म कणों के समिश्रण द्वारा एक भिन्न प्रकार के जटिल (complex) अणुओं का निर्माण हुआ। ऊरे के अनुसार प्रत्येक अणु सम्भवतः 20 या 30 पृथक अणुओं से युक्त था जिसके फलस्वयप 'एमिनो अम्ल' (amino acid) बनता है। चूंकि उन अणुओं में पराबैंगनी किरणो से प्राप्त आंतरिक ऊर्जा विद्यमान थी, इसलिए उन अणुओं से संचित ऊर्जा द्वारा इस पृथ्वी पर अनेक प्रकार के रासायनिक परिवर्तन हुए और इस परिवर्तन के फलस्वरूप प्रोटीन, ग्लूकोज, सुक्रोज, कार्बन, नाइट्रोजन आदि विभिन्न तत्वों के मिश्रण द्वारा 'जीव द्रव्य' (protoplasm) की सृष्टि हुई। इस प्रकार पदार्थ के इन विभिन्न तत्वों के संयोग से इस पृथ्वी पर **आदिम** (primitive) जीव का जन्म हुआ—

> **आदि सृष्टि अपजी जबहिं तब उत्पति भै मोरि।**
> **नाम एकतनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि॥**[10]

इस प्रक्रिया द्वारा एक रासायनिक वृत (cycle) का उदय हुआ जो समय के प्रवाह में क्रम विकसित होता गया और असंख्य अणुओं के जटिल संयोग द्वारा इस पृथ्वी पर नाना प्रकार के जीव जन्तुओं का प्रादुर्भाव हुआ। जड़ पदार्थ के अणुओं के समूह किस सीमा पर जाकर 'जीव द्रव्य' में परिवर्तित हो जाते है, विज्ञान के अनुसार इसका उत्तर वातावरण में व्याप्त असंख्य विषाणुओं (Viruses) द्वारा प्राप्त होता है। विषाणु एक अत्यंत सूक्ष्म कण होता है जो प्रोटीन और न्यूक्लिक अम्ल (nucleic acid) का बना होता है। इन सूक्ष्म विषाणुओं को बोतल में भरकर यदि वर्षो तक सुरक्षित रखा जाए तो भी इनमें जीवन का कोई लक्षण प्रकट नही होता बल्कि केवल रासायनिक मिश्रण मात्र प्रतीत होते हैं। जब इन विषाणुओ (वाइरसों) को किसी जीव की कोशिका (cell) में प्रविष्ट करा दिया जाए तो ये

---

10 मानस, बालकाण्ड, 162 (दोहा)

रासायनिक कण सक्रिय एवं सजीव होकर स्वत: प्रजनन करने लगते हे इस क्रिया द्वारा निर्जीव वाइरस सजीव कोशिका में पहुचकर स्वय निर्जीव से सजीव रूप ग्रहण कर लेता है

जीव-द्रव्य

क्वान्टमवाद और सापेक्षवाद के अतिरिक्त बीसवीं सदी के आरम्भ में महान् भारतीय वैज्ञानिक सर जगदीश चन्द्र बोस (1858-1937 ने एक ऐसी उद्घोषणा यूरोप मे जाकर की जिससे सम्पूर्ण वैज्ञानिक जगत स्तब्ध हो गया। बोस ने अपने प्रयोगो द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि चेतना का संयोग पदार्थ के कण-कण से है तथा निर्जीव और सजीव पदार्थों के मध्य वस्तुतः कोई सीमारेखा नहीं है और इस प्रकार वेदान्त का यह सिद्धांत बोस द्वारा प्रमाणित हो गया। अतः निर्जीव एवं सजीव वस्तुतः एक ही तत्व हैं जो परस्पर एक में ही (प्रकृति और पुरुष) गुंथे हुए है। बोस ने इस तथ्य पर जोर दिया कि हमें प्रकृति की भिन्नता में मूलभूत एकता का दर्शन होता है। महाकवि तुलसीदास जी के शब्दों में—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥[11]

सर जगदीश चन्द्र बोस ने यह भी कहा कि ये वैज्ञानिक तथ्य उस महान् संदेश की ओर संकेत कर रहे हैं जो आज से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों ने गंगा के सुरम्य तट पर दिया था कि इस ब्रह्मांड के असंख्य नाम-रूपो म एक ही शक्ति (परमात्मा) विद्यमान है। संत तुलसीदास जी ने 'मानस' मे काकभुशुण्डि जी द्वारा गरूड़ जी को भी इसी प्रकार का संदेश सुनाया था—

भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति विचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन ॥[12]

अतः स्पष्ट है कि निर्जीव और सजीव के बीच कोई सीमारेखा नहीं है, क्योंकि वस्तुतः पदार्थ स्वयं अपने में कोई शक्ति नहीं है, अपितु आत्मा (परमाणु) के प्रकाश से ही सब कुछ प्रकाशित होता है। कोई पदार्थ जड़ अथवा निर्जीव इस कारण प्रतीत होता है, क्योंकि अपनी इन्द्रियों द्वारा उस पदार्थ के अन्तस्थल में विद्यमान चेतन्य अथवा आत्मा को हम देख नहीं पाते और सापेक्षभ्रम के फलस्वरूप जड

---

11 मानस, बालकाण्ड, 7-ग (दोहा)

12 मानस, उत्तरकाण्ड, 81-क (दोहा)

पदार्थ को ही एक वास्तविक शक्ति मान लेते हैं। प्रस्तुत है सापेक्षभ्रम का दृष्टांत—

नौकारूढ़ चलत जग देखा।
अचल मोह बस आपुहि लेखा॥
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी।
कहहिं परस्पर मिथ्यावादी॥[13]

जीव शास्त्री कहते हैं कि जीव द्रव्य (protoplasma) का एक निश्चित स्वरूप होता है जिससे सभी जीवों का शरीर निर्मित है। वैशेषिक शास्त्र की मान्यता है कि समस्त जगत् की उत्पत्ति पांच भूतों अथवा चार प्रकार के परमाणुओं से होती है। इसलिए यह जगत पाञ्चभौतिक अथवा चातुर्भौतिक है। आधुनिक तत्वविदों (metaphysicist) का कहना है कि वैशेषिक की यह मान्यता उचित नहीं है, क्योंकि अनेक पदार्थ ऐसे हैं जिनमें पृथ्वी आदि भूतों का कोई अंश नहीं है। उदाहरणार्थ स्वर्ण का विश्लेषण करने पर अन्तिम कण तक यह केवल स्वर्ण है, इसमें अन्य किसी भूत आदि का कोई अंश या संमिश्रण उपलब्ध नहीं होता। आधुनिक तत्वविदों का ऐसा कथन अनुपयुक्त नहीं है, किन्तु स्वर्ण में पृथ्वी आदि भूतों की तलाश करना ऐसा ही है जैसे कपास के डोडे मे कमीज का ढूंढना।

जगह घेरने वाले सब पदार्थों को वैशेषिक शास्त्र चार वर्गों में विभक्त करता है—पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु। अति स्थूल पदार्थ पृथ्वी वर्ग में, तरल जल वर्ग में, ज्वलनशील तेजस् वर्ग में तथा गैसों को वायु वर्ग में माना है। यही कारण है कि संत तुलसीदास जी ने शरीर के इस पिंजड़े को पाँच महाभूतों द्वारा निर्मित कहा है—

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचि अति अधम सरीरा॥[14]

सृष्टि-रचना की यात्रा में संलग्न तत्वों के मूल स्थान एवं मूलरूप को खोजने के लिए अति प्राचीन काल से मानव द्वारा महान एवं सफल प्रयत्न होते रहे हे। चिन्तनशील मानव ने उसकी जानकारी हेतु स्थूल जगत से प्रतियात्रा प्रारम्भ की। उन्होंने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के प्रथम कणों को मूलतत्व मानकर जगत् रचना-प्रक्रिया का विवरण प्रस्तुत किया। स्थूल जगत् जिस रूप में दीखता है, कणाद आदि आचार्यों ने उसी के आधार पर इसकी व्याख्या करने का प्रयास किया हे। इसमें सन्देह नहीं, कि इस स्थूल दृश्यमान पृथ्वी के पीछे छोटे से छोटा पृथ्वी का

---

13 मानस, उत्तरकाण्ड, 72 (3)
14 मानस, किष्किंधाकाण्ड, 10 (2)

कण विद्यमान है यह ऐसा ही सन्मान्य मूलतत्व है जैसे आधुनिक
में एलिमेंट element का कण इस कण की रचना कैसे हुई इस विषय को
महर्षि कणाद ने अपने शास्त्र की सीमा में नहीं लिया जैसे एलीमेंट
के कण की रचना का विवरण प्रस्तुत नहीं करता तथा उसी को मूल मानकर आगे
का विवेचन करता है। इसी कारण दृश्यमान चारों भूत तत्वों के परमसूक्ष्म कणो
को ही जगत् का मूल मानकर कणाद ने उसके आगे का सृष्टि-रचना विषयक
विवरण प्रस्तुत किया है। उसे इस विवेचन से कोई प्रयोजन नहीं, कि उन कणो
की रचना कैसे होती है। इसी कारण उन्हें (तत्वों) नित्य (अविनाशी) मान लिया
गया है। महाकवि तुलसीदास जी कहते हैं कि महाप्रलय में भी तत्व का विनाश
नही होता—

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं।
महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं॥[15]

जिन महान पारदर्शी तत्वविद मनीषियों ने अथक परिश्रम एवं दिव्य मेधा के द्वारा उन गहन-गम्भीर अचिन्तनीय विषयों का विवेचन किया, संसार-अरण्य में भटकते मानव के लिए यथार्थ का पथ प्रशस्त किया, केवल लोक-कल्याण की भावना से जिन्होंने अपना स्पृहणीय जीवन ऐसे सत्प्रयासों के लिए अर्पण किया है, वे चाहे प्राचीन हैं या अर्वाचीन, हमारे लिए बन्दनीय हैं—

सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना।
तत्व बिचार निपुन भगवाना॥
तेहिं मनु राज कीन्ह बहुकाला।
प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला॥[16]

यद्यपि वैज्ञानिक जगत में लगभग 105 प्रकार के रासायनिक तत्व (परिशिष्ट-6) पाए जाते हैं, किन्तु इनमें से लगभग बीस तत्व ही जीव द्रव्य के लिए आवश्यक माने जाते हैं। उदाहरणार्थ—कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, कैल्सियम, फास्फोरस, पोटेशियम, सल्फर, क्लोरीन, मैग्नीशियम, सोडियम, लौह, आयोडीन आदि प्रमुख तत्व ही 'जीव द्रव्य' के लिए आवश्यक है, किन्तु सांख्यदर्शन के अनुसार त्रिबिध गुण-विकार (सत्व, तम, रज) ही मूलतत्व है। और इन्हीं तत्वों के सामंजस्य से असंख्य तत्वों, शक्तियों एवं वस्तुओ का क्रम विकास होता है। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति आदि तीनों अवस्थाएं तथा सत्व,

---

15 मानस, उत्तरकाण्ड, 93 (3)

16 मानस, बालकाण्ड, 141 (4)

रज और तम आदि तीनों गुणरूपी कपास से तुरीयावस्थारूपी रूई को निकालकर ओर फिर उसे संवारकर उसकी सुन्दर कड़ी बत्ती बनावे। इस प्रकार तेज की राशि विज्ञानमय दीपक जलाने मे जब आत्मानुभव के सुख का सुन्दर प्रकाश फैलता है तब संसार के मूल भेदरूपी भ्रम का नाश हो जाता है। महाकवि तुलसीदास जी के शब्दों में प्रस्तुत है 'मानस' का प्रसंग—

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि ॥[17]

इसीलिए परमाणुओं की तरह जीव की कोशिकाओं में भी द्वन्द्वात्मक संघर्ष चलता रहता है, क्योंकि प्रकृति और पुरुष के संयोग का यही स्वाभाविक परिणाम है। महाकवि तुलसीदास जी ने कहा है कि—

तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाई बिहगेस ॥[18]

उपापचय

विज्ञान के अनुसार इन सूक्ष्म कोशिकाओं में जीवन के सभी आवश्यक तत्व विद्यमान होने हैं। इन कोशिकाओं द्वारा ही जीव-रसायन समस्त शरीर में प्रवाहित होता रहता है। इन कोशिकाओं में सदैव प्रोटीन, न्यूक्लिक अम्ल, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, लवण, जल तथा अनेक प्रकार के तेजाब मौजूद होते हैं। प्रोटीन में आधे से अधिक कार्बन होता है तथा शेष आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, सल्फर, फास्फोरस तथा अन्य धातुएं होती हैं। प्रोटीन के अणु (molecules) हजारों परमाणुओं (atoms) द्वारा बने होते हैं और उनके अणु 'एमिनों अम्ल' (Amino acids) के मिश्रण द्वारा निर्मित होते हैं। इस प्रकार प्रकृति द्वारा प्रदत्त रसायनों से मानव शरीर में ग्रंथियां ऐसी बन जाती हैं जिनका पृथक्करण कठिन होता है और संत कवि तुलसीदास जी को अपने ये विचार इसी कारण व्यक्त करने पड़े—

सो मायाबस भयउ गोसाईं।
बंध्यो कीर मरकट की नाईं ॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई।
जदपि मृषा छूटन कठिनई ॥[19]

---

17 मानस, उत्तरकाण्ड, 117-ग (दोहा)
18 मानस, उत्तरकाण्ड, 118-क (दोहा)
19 मानस, उत्तरकाण्ड, 116 (2)

[illegible] वैज्ञानिक ए.एम्मी का कहना है कि मानव शरीर में एक लाख प्रकार के प्रोटीन्स होते हैं जो केवल बीस विभिन्न प्रकार के 'एमिनो एसिड' द्वारा बनते हैं। कोशिकाओं में विद्यमान प्रोटीन्स का लगभग आधा भाग **एन्जाइम्स** (enzymes) होता है जो कोशिकाओं की रासायनिक प्रक्रियाओं को लाखों गुना अधिक तीव्र बना देता है। इन कोशिकाओं में एन्जाइम भी हजारों प्रकार के होते हैं। प्रत्येक कोशिका लगभग एक लाख एन्जाइम अणुओं का समूह होती है और उनमें परस्पर सामञ्जस्य होता रहता है। इनकी रचना विचित्र होती है—

उदर माझ सुनु अंडज राया।
देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया॥
अति विचित्र तहँ लोक अनेका।
रचना अधिक एक ते एका॥[20]

इस प्रक्रिया में पूर्ण विखण्डन होने पर प्रोटीन्स के अणु एक विशेष प्रकार के समान-अणुओं में खण्डित हो जाते है जिन्हें **'एमिनो अम्ल'** कहते हैं। अर्थात प्रोटीन्स 'एमिनो अम्ल' का ही समिश्रण अथवा यौगिक (compound) होता है और वह अम्ल छोटी-छोटी ईकाइयों द्वारा ही प्रोटीन्स अणुओं का निर्माण करता है। जीवन स्वरूप इन एन्जाइम तत्वों के अन्य सहायक तत्व, यथा—विटामिन्स एवं हारमोन्स, भी होते हैं। इसके अतिरिक्त मैग्नीशियम, क्लोरीन आदि अन्य तत्वों के विद्युत-कण (ions) भी विद्यमान होते हैं। जिस प्रकार ताप के प्रभाव से अणुओं का विखण्डन होता रहता है उसी प्रकार शरीर के अणुओं का भी गठन एवं विघटन हुआ करता है। इस रासायनिक प्रक्रिया द्वारा जीव के भौतिक अस्तित्व को ही जीवन प्रवाह अथवा वैज्ञानिक भाषा में **उपापचय** (मैटाबोलिज़्म) कहते हैं। अत उपापचय जीवों के शरीर के अन्दर होने वाला रासायनिक परितर्वन है। खाद्य पदार्थो का पचना तथा उनका अवशोषण, शरीर के विभिन्न भागों में ऑक्सीजन तथा खाद्य पदार्थों का स्थानान्तरण, ऊर्जा का उत्पन्न होना तथा अपशिष्ट पदार्थों का उत्सर्जन आदि क्रियाएं इसके उदाहरण हैं। शरीर में **उपापचय** (metabolism) हर समय होता रहता है। प्राणियों के जीवन हेतु यह क्रिया बहुत ही आवश्यक है। यदि उपापचय क्रिया अकस्मात् रुक जाए तो सभी शारीरिक क्रियाएं बंद हो जाएगी और जीव मर जाएंगे।

---

20 मानस, उत्तरकाण्ड, 79 (2)

कोशिका-विभाजन

आप जानते हैं कि पचा हुआ तथा अवशोषित भोजन हमारे शरीर के विभिन्न ऊतको में चला जाता है, और ऊतकों की कोशिकाएं पचे हुए खाद्य पदार्थों को अवशोषित कर लेती हैं। ये खाद्य पदार्थ इन कोशिकाओं में केवल एकत्र ही नहीं होते अपितु कुछ रासायनिक परिवर्तनों के फलस्वरूप कोशिकाओं के ही प्रमुख पदार्थ बन जाते हैं। खाद्य पदार्थों में रासायनिक परिवर्तन करने तथा उन्हें अपने उपयोग में लाने की क्षमता को उपचय (एनाबोलिज़्म) कहते हैं। उपचय क्रिया से कोशिकाओं को नए पदार्थ तथा ऊर्जा उपलब्ध होते हैं। चूंकि प्रत्येक प्राणी विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों का उपयोग करता है अतः यह स्वाभाविक है कि उन प्राणियों में भिन्न-भिन्न नए पदार्थ एवं ऊर्जा की उत्पत्ति होगी और इसके फलस्वरूप प्राणियों के शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक गुणों तथा विकास मे विभिन्नता आएगी। महाकवि तुलसीदास जी भी 'मानस' में वर्णित प्रसंग इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

एक पिता के बिपुल कुमारा।
होहिं पृथक गुन सील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता।
कोउ धनवंत सूर कोउ दाता॥
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई।
सब पर पितहि प्रीति सम होई॥[21]

जीवों के शरीर में उपचय (anabolism) क्रिया के साथ-साथ विघटन क्रिया भी चलती रहती है। सजीव कोशिकाओं के अन्दर टूटने-फूटने की क्रिया को अपचय (केटाबोलिज़्म) कहते हैं। इस क्रिया के समय ऊर्जा निकलती है। एक प्रकार की ऊर्जा दूसरे प्रकार की ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। भार उठाने के लिए जब पेशी सिकुड़ती है तब उसमें एकत्र ऊर्जा **यांत्रिक ऊर्जा** (mechanical energy) मे और यांत्रिक ऊर्जा **ऊष्मा ऊर्जा** (heat energy) में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार **उपापचय** (metabolism) क्रिया **में उपचय** (anabolism) तथा अपचय (catabolism) दोनो क्रियाएं एक-दूसरे के बाद होती रहती हैं। बाल्यावस्था मे प्रमुखतः उपचय क्रिया, प्रौढ़ावस्था में उपचय तथा अपचय दोनों ही क्रियाएं तथा वृद्धावस्था में केवल अपचय क्रिया ही मुख्य रूप से सक्रिय होती है। इसी सिद्धात

---

21 मानस, उत्तरकाण्ड, 86 (1-2)

भी ध्यान में रखते हुए मनकवि तुलसीदास जी ने ऋक्षराज जाम्बवान के मुख से कहलाया

> जरठ भयउ अब कहइ रिछेसा
> नहि तन रहा प्रथम बल लेसा ।।
> जबहिं त्रिविक्रम भए खरारी ।
> तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी ।।[22]

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि प्रोटीन्स का निर्माण बीस एमिनो एसिड द्वारा होता है तथा प्रोटीन्स के अणुओं में एमिनो एसिड का व्यवस्थित क्रम DNA (Deoxyribose Nucleic Acid) के पाँच मूलभूत तत्वों—**ऐडीनीन, ग्वानीन, साइटोसीन, थाइमीन** तथा **यूरेसिल** के क्रम पर निर्भर करता है। इसी प्रक्रिया को वैज्ञानिक भाषा में जीव की उत्पत्ति का रहस्य अथवा **गुप्तज्ञान** (genetic code) कहते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि बीस एमिनो एसिड ही सभी प्रकार के जीवन का वाहक (चित्र 4.1) होते हैं और प्रोटीन्स के अणुओं में उनका संयोजन ही जीवन का रहस्य है। महाकवि तुलसीदास जी कहते हैं कि इस रहस्य को सरलता से कोई भी नहीं जान सकता, किन्तु जो इसे समझते हैं वे अपने शरीर का (मोह न कर) सदुपयोग ही करते हैं—

> यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।
> जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ।।[23]

जिस प्रकार प्रोटीन्स के अणु 'एमिनो अम्ल' द्वारा निर्मित होते हैं, उसी प्रकार 'न्यूक्लिक अम्ल' की मूलभूत इकाइयों को 'न्यूक्लियोटाइड्स' (nucleotides) कहते हैं। शरीर में 'न्यूक्लिक अम्ल' द्वारा ही जटिल आनुवंशिकी प्रक्रियाओं (hereditary processes) का निर्धारण होता है। न्यूक्लिक एसिड के दो भाग होते हैं—1. RNA (Ribose Nucleic Acid) तथा 2. DNA (Deoxyribose Nucleic Acid)। कोशिकाओं में प्रोटीन्स के संश्लेषण (synthesis) के लिए RNA और DNA दोनो ही तत्व आवश्यक होते हैं। RNA में न्यूक्लियोटाइड्स नामक कड़ियों की शृंखला होती है, जबकि DNA में कुण्डलीनुमा (helical) दो कड़ियों की शृंखला होती है। विज्ञान के अनुसार DNA एक ऐसा ज्ञानकोष है जिसमें जीव-रहस्य के सभी सूत्र क्रमबद्ध रूप से लिखित हैं और उन्हीं सूत्रो के अनुसार जीव के शरीर का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त उस ज्ञानकोष में सभी **आनुवंशिकी** (hereditary) **नियम**

---

22 मानस, किष्किंधाकाण्ड, 28 (4)

23 मानस, उत्तरकाण्ड, 116-क (दोहा)
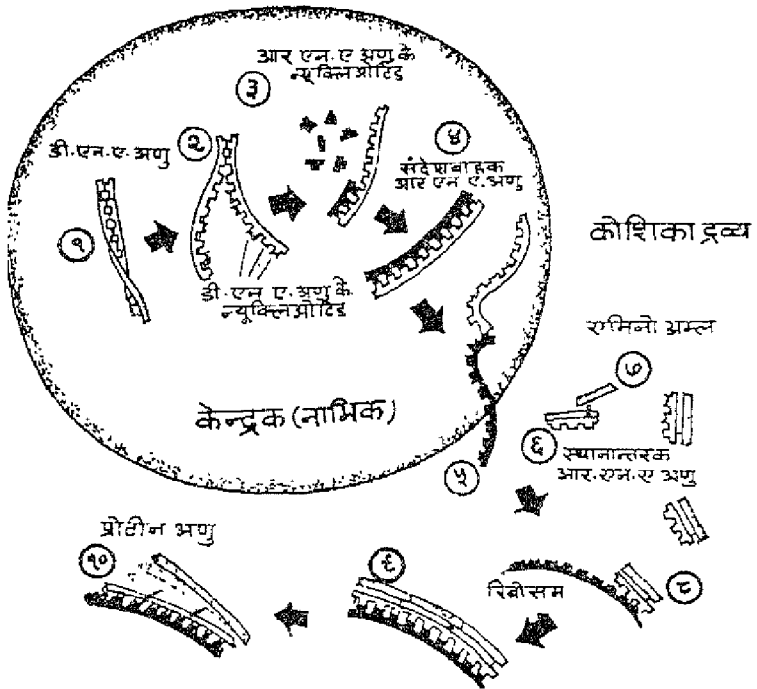
चित्र का विवरण

(1) डी.एन.ए. अणु की उभय कुंडलिनी। न्यूक्लिओटिड एक विशिष्ट क्रम में जुड़े हुए है, (2) अणु दो लड़ियों में विभक्त हो जाता है, (3) आर.एन.ए. के न्यूक्लिओटि एक विशिष्ट क्रम में डी.एन.ए. लड़ी के साथ जुड़ जाते हैं, (4) संदेशवाहक आर एन.ए. अणु का निर्माण, (5) संदेशवाहक आर.एन.ए. की लड़ी डी.एन.ए. की लड़ी से पृथक होकर रिबोसम से जुड़ जाती है, (6) व (7) स्थानांतरक आर.एन.ए. अणु विशिष्ट एमिनो अम्ल से संयुक्त होता है, (8) स्थानांतरक आर.एन.ए. और एमिनो अम्ल संदेशवाहक आर.एन.ए. से संयुक्त हो जाते हैं, (9) एमिनो अम्ल जुड़ कर प्रोटीन का अणु तैयार करते हैं। प्रोटीन अणु संदेशवाहक स्थानांतरक आर.एन.ए. योजन से पृथक हो जाता है।

(चित्र–4.1)

तथा कारक [illegible] में लिपिबद्ध [illegible] और उसी के अनुकूल क्रमविकास होता है [illegible] व्याख्य है

ज[illegible]कास प्रति प्रति निज रूपा
दखेउ जिनस अनक अनूपा ॥[24]

DNA एक ऐसा गुप्त रहस्य है जिसमें सभी जीव-जन्तुओं के क्रमविकास का सम्पूर्ण भावी इतिहास एवं योजना अंकित है तथा इसी योजना पर मनुष्य का कर्म-व्यापार भी निर्भर है। इस प्रकार इन कोशिकाओं में शरीर के विकास की सम्पूर्ण योजना, उसका मानचित्र, आकार-प्रकार एवं रंग-रूप आदि गुणात्मक तत्व पूर्व निश्चित होते हैं। दृष्टव्य है—

अंसन्ह सहित देह धरि ताता।
करिहउँ चरितभगत सुखदाता ॥

x x x

पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना।
अंतरधाम भए भगवाना ॥[25]

यद्यपि कोशिकाओं का कर्म-व्यापार पूर्व-निश्चित होता है—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥[26]

किन्तु वह पूर्व निश्चयवाद कारणस्वरूप सूक्ष्मजगत से आता है और वेदान्त में इसी को कर्मविधान कहते हैं। प्रस्तुत है संतकवि तुलसीदास जी के इस सम्बंध में विचार—

सिय रघुबीर की कानन जोगू।
करम प्रधान सत्य कह लोगू ॥[27]

और—

करइ जो करम पाव फल सोई।
निगम नीति असि कह सबु कोई ॥[28]

वैज्ञानिकों का कहना है कि कोशिका विभाजन की तीन विधियां—**असूत्री** (amitotic), **समसूत्री** (mitotic) तथा **अर्धसूत्री** (meiotic) होती हैं। शरीर के

---

24. मानस, उत्तरकाण्ड, 80 (3)
25 मानस, बालकाण्ड, 151 (1-3)
26. मानस, अयोध्याकाण्ड, 91 (2)
27. मानस, अयोध्याकाण्ड, 90 (4)
28. मानस, अयोध्याकाण्ड, 76 (4)

कोष-विभाजन की प्रक्रिया में समान रूप से निर्मित, संगठित तथा कार्यरत कोशिकाओं के समूह द्वारा विभिन्न ऊतकों (tissues) का निर्माण होता है और इसी प्रक्रिया में आगे चलकर ऊतकों के समूह द्वारा जीव का शरीर बनता है। इसी प्रक्रिया में 'तंत्रिका तन्त्र' (nervous system) का विकास होता है जिससे जीव को संवेदनात्मक अनुभूति प्राप्त होती है। नर और मादा कोशिकाओं के संयोग से जो नई कोशिकाएं बनती हैं उन्हें विज्ञान में 'जाइगोट' (Zygote) कहते हैं।

इससे पूर्व वर्णन किया जा चुका है कि हमारा शरीर पाँच महाभूतों (पृथ्वी जल, तेज, वायु और आकाश) का बना है। आधुनिक विज्ञान के परीक्षणों द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि आकाश (ईथर) सर्वत्र व्यापक तत्व है। आकाश अनन्त और सीमाहीन है। इस तत्व की मान्यता के लिए वैज्ञानिकों की ओर से उपेक्षा के कारणों के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। संभव है, रसायन शास्त्र की सीमा में इसका समावेश न हो सकना ही उपेक्षा का कारण रहा हो। किसी भी वस्तु तत्व की मान्यता के लिए ऐसा होना आवश्यक है। इसीलिए भारतीय दर्शन (वैशेषिक, बौद्ध आदि) में चार विधाओं को माना है--पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि) और वायु।

परमाणु

पदार्थ हमें छोटी-बड़ी वस्तुओं के रूप में दिखलाई देता है। परन्तु वास्तव में यह अति सूक्ष्म कणों का बना होता है। यह कण दो प्रकार के होते हैं--अणु (molecule) और परमाणु (atom)। अणु किसी भी प्रकार के पदार्थ, तत्व अथवा यौगिक, का सूक्ष्मतर कण है जो स्वतंत्र अवस्था में रह सकता है। तत्व का सबसे सूक्ष्म कण परमाणु होता है। एक पदार्थ के सभी अणु व परमाणु आकार एवं गुणों में समान होते हैं। अणु एक या विभिन्न प्रकार के दो या दो से अधिक परमाणुओं के संयोग से बनता है। एक परमाणु का व्यास 18^{-8} सें.मी. की कोटि का होता है। किन्तु यह ध्यातव्य है कि परमाणु ही पदार्थ का सूक्ष्मतर कण नहीं है क्योंकि इसे भी विखण्डित किया जा सकता है और प्रत्येक परमाणु तीन प्रकार के कणों (न्यूट्रॉन, प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन) का बना है। परमाणु की संरचना (चित्र 4.2) में दिखाया गया है, न्यूट्रॉन व प्रोटॉन परमाणु की नाभिक (nucleus) में स्थिर रहते हैं और इलैक्ट्रॉन नाभिक के चारों ओर विभिन्न कक्षाओं (orbits) में अति तीव्र गति से चक्कर लगाते रहते हैं। इलैक्ट्रॉन सबसे हल्के और ऋण आवेशी (negatively charged) होते हैं; जबकि प्रोटॉन पर धनावेश और न्यूट्रॉन पर कोई आवेश नहीं होता। एक

प्रकार के परमाणुओ के नाभिक म न्यूट्रान व प्राटान आर कक्षाओ मे इलेक्ट्रान का विन्यास एक सा नाना ह परन्तु भिन्न परमाणुओ मे भिन्न होता है
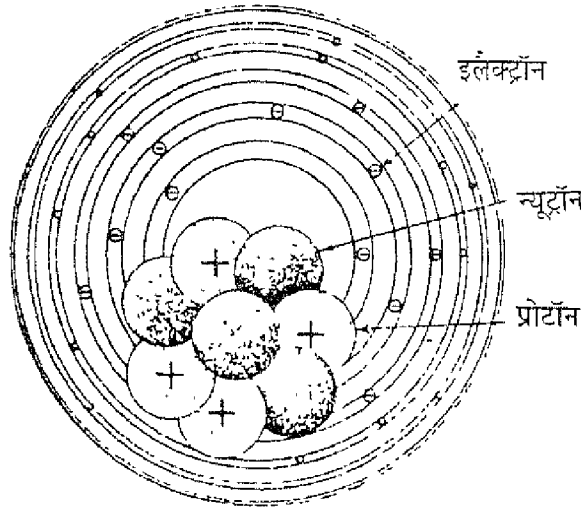
परमाणु की संरचना
चित्र 4.2

आधुनिक विज्ञान समस्त विश्व का उपादान कारण प्रोटॉन, इलैक्ट्रॉन तथा न्यूट्रॉन नामक तीन प्रकार के तत्वो को मानता है। इनकी परिभाषा बताता है कि प्रोटॉन तत्व आकर्षण शक्ति का पुंज है जबकि इसके विपरीत इलैक्ट्रॉन अपकर्षण-स्वरूप है। पहला अपनी ओर दूसरे को आकृष्ट करता है किन्तु दूसरा अपने को अपकर्षण (repulsion) में प्रवृत रखता है, इनको इसीलिए यथाक्रम धनावेशित और ऋणावेशित कहा जाता है। तीसरे तत्व न्यूट्रॉन में ये दोनों लक्षण नहीं होते। समस्त विश्व के मूल में ये ही पदार्थ हैं, इन्हीं से सब जगत् बना है।

भारतीय दर्शन में मूलतत्व सत्व, रजस्, तमस् माने हैं। समस्त जड़ जगत इन्हीं तत्वों से परिणत होकर बना है। परिब्राजक कपिल ने इनका स्वरूप इस

प्रकार बताया है कि सत्व प्रीतिरूप है; प्रीति का अर्थ है दूसरे को अपनी ओर आकृष्ट करना। इसके विपरीत रजस् अप्रीतिरूप है, दूर हटने की प्रवृत्ति रखता है। तीसरा तमस् विपादरूप है, अर्थात् न प्रीतिरूप और न अप्रीतिरूप। मूलतत्व के विषय में ये दोनों (आधुनिक विज्ञान और भारतीय दर्शन) कितनी अधिक समान परिभाषा को प्रस्तुत करते हैं, यह ध्यान देने योग्य है। यह स्थिति मूलतत्व-विषयक जानकारी की सचाई को प्रकट करती है!

जिस प्रकार तीनों तत्वों (प्रोटॉन, इलैक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन अथवा सत्व, रजस्, तमस्) में उपस्थित विभिन्न संख्या अथवा मात्रा में मिश्रण से पदार्थ बनता है उसी प्रकार इनके न्यूनाधिक गुणों के संमिश्रण से युग का निर्माण होता है। महाकवि तुलसीदास जी ने सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग आदि चार युग तीन तत्वों (सत्व, रजस्, तमस्) के न्यूनाधिक मिश्रण से निर्माण होना स्वीकारा है। प्रस्तुत है 'रामचरितमानस' में संतकवि द्वारा वर्णित विचार :

सुद्ध सत्व समता बिग्याना।
कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥
X X X
तामस बहुत रजोगुन थोरा।
कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥[29]

'अणु' की व्याख्या आदि काल में भारतीय प्रसिद्ध वैज्ञानिक ऋषि कणाद ने की थी। ईसा से पूर्व छटी शताब्दी में इस भारतीय आचार्य ने यह कल्पना की थी कि पदार्थ सूक्ष्म कणों से बने हैं जो और अधिक विभाजित नहीं हो सकते और उन्हें 'परमाणु' अर्थात सूक्ष्म-अणु कहा गया। अतः किसी पदार्थ के सूक्ष्मतम ओर रासायनिक रूप में अविभाज्य कण, जिनसे अणु बनते हैं, परमाणु कहलाते है। कणाद ऋषि ने द्वयणकों (di-atomic) तथा त्रयणकों (tri-atomic) की भी कल्पना की थी जो दो या तीन परमाणुओं के मिलने से बनते हैं। ईसा से पूर्व पाचवीं तथा चौथी शताब्दी में यूनान के आचार्यों एवं उन्नीसीं शताब्दी के प्रारम्भ मे ब्रिटिश वैज्ञानिक सर डाल्टन ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किए थे। कणाद ऋषि का विचार था कि परमाणु अविनाशी है और इसका विखण्डन नहीं हो सकता। किन्तु आज कण अर्थात अणु को भी कई परमाणुओ में विभाजित किया जा सकता है जिसका सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग लव (particle) कहलाता है। महाकवि तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में लव एवं परमाणु का प्रसंग इस प्रकार वर्णन किया है—

---

29 मानस, उत्तरकाण्ड, 103 (1-3)

लव निमष परमानु जुग बरष कलप सर चंड
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु को दंड [30]

इस प्रकार महाकवि ने श्रीराम को परमाणु-वैज्ञानिक के रूप में समझा है, स्वीकारा है तथा स्थापित किया है। जिस प्रकार परमाणु विकाररहित, अजन्मा व्यापक, अजेय, अनादि, अद्वितीय, अखण्ड, अनंत, स्वतत्र तथा अनगिनत हैं उसी प्रकार श्रीराम के भी भौतिक गुण हैं। दृष्टव्य है–

ब्रह्म अनामय अज भगवंता।
व्यापक अजित अनादि अनंता ॥[31]
उमा एक अखंड रघुराई।
नर गति भगत कृपाल देखाई ॥[32]
सोइ सच्चिदानंद घनरामा।
अज बिग्यान रूप बलधामा ॥
× × ×
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी।
ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥[33]

बीसवीं शताब्दी के प्रथम भाग में पदार्थों की संरचना के सम्बंध में अनेक नए आंकड़े प्राप्त किए गए। इनसे यह ज्ञात होता है कि रासायनिक क्रियाओं में परमाणु विभक्त तो नहीं होते परन्तु परमाणु अपनी रचना एवं संघटन में जटिल अवश्य हैं। अब वैज्ञानिकों ने कुछ विशेष यंत्रों की सहायता से एक प्रकार के परमाणुओं से दूसरे प्रकार के परमाणु बना लिए हैं। इस प्रकार के परिवर्तन की क्रिया में अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा निकलती है जिसे आणविक ऊर्जा कहते हैं। जैसा कि आप जानते हैं कि परमाणु के केन्द्र में न्यूट्रॉन एवं प्रोटॉन का समूह होता है जिसको नाभिक या केन्द्रक (न्यूक्लियस) कहते हैं। एक स्थिर (stable) अणु मे प्रोटॉन की संख्या इलैक्ट्रॉन के समान प्रायी जाती है। इस केन्द्रक के चारों ओर दीर्घवृत परिपथ (ellyptical orbit) में इलैक्ट्रान घूमते रहते हैं। इस प्रकार इन तीनों कणों के योग से परमाणु बनता है। आज वैज्ञानिक युग में, जिधर दृष्टि डाले और जिस ओर भी चिन्तन करें, परमाणु का ही बोलबाला है। महाकवि तुलसीदास जी ने भी उसी अविनाशी तथा सर्वव्यापक शक्ति का जय जयकार किया है–

---

30 मानस, लंकाकाण्ड, 3 (दोहा)
31 मानस, सुन्दरकाण्ड, 38 (1)
32 मानस, लंकाकाण्ड, 60 (9)
33 मानस, उत्तरकाण्ड, 71 (2-4)

जय जय अविनासी सब घट बासी व्यापक परमानंदा।
अविगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा ॥[34]

पदार्थ में विद्यमान दो कणों के मध्य काफी खाली स्थान होता है जिसको अन्तरावकाशी कहते हैं। संतकवि तुलसीदास जी ने भी इस तथ्य को स्वीकारा है—

सक्र कोटि सत सरिस विलासा।
नभ सत कोटि अमित अवकासा ॥[35]

इन खाली स्थानों की दूरी घट-बढ़ सकती है। सामान्यतया गर्मी पाकर दूरी बढ सकती है जबकि पदार्थ के परमाणुओं को ठंडा करने पर खाली स्थानो की दूरी कम हो जाती है। इलैक्ट्रॉन और केन्द्रक के बीच जो खाली स्थान होता है यदि उसकी तुलना सौर-मंडल से करें तथा केन्द्र में सूर्य को प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों का समूह अर्थात न्यूक्लियस माना जाए तो पृथ्वी, मंगल, शुक्र, चन्द्रमा आदि ग्रहों को विभिन्न परिपथ में घूमते हुए इलैक्ट्रॉन समझे जा सकते हैं। जिस प्रकार सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी आदि का भार नगण्य है उसी प्रकार इलैक्ट्रॉन का भार (परिशिष्ट देखे) भी प्रोटॉन एवं न्यूट्रॉन के समक्ष नगण्य है। यदि सौर-मण्डल को वर्तमान अवस्था में तोला जाए तथा पृथ्वी आदि ग्रहो को हटाकर समस्त रिक्त स्थान को तोला जाए तो सौर-मण्डल का भार कई सहस्र करोड़ गुनित (multiple) अधिक हो जावेगा। संसार की रिक्तता के विषय में 'मानस' में दृष्टांत है—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥[36]

इससे पूर्व अध्याय में बतलाया जा चुका है कि परमाणु के प्रत्येक कण मे ईश्वर है और ईश्वर ही कण है, अणु है एवं परमाणु है। महाकवि तुलसीदास जी ने परमाणु की जो परिभाषा दी वह इस प्रकार है—

ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी।
मोहि परम अधिकारी जानी ॥
सो तैं तोहि तोहि नहिं भेदा।
बारि बीचि इव गावहिं बेदा ॥[37]

---

34 मानस, बालकाण्ड, 185-2 (छंद)
35 मानस, उत्तरकाण्ड, 90 (4)
36 मानस, अरण्यकाण्ड, 38 (3)
37 मानस, उत्तरकाण्ड, 110 (1-3)

यों [illegible] प्रोटान या न्यूट्रान के एक अणु (molecule) जिसका आयतन एक घन [illegible] तो उसका भार एक लाख टन होगा। इस तथ्य को प्रत्येक भौतिक शास्त्र की पुस्तक प्रमाणित करती है तथा यह सर्वविदित तथ्य भी है कि प्रोटॉन या न्यूट्रॉन का घनत्व लगभग 10^{17} किलोग्राम प्रति घनमीटर है। अतः, यदि प्रोटॉन अथवा न्यूट्रॉन की धनुषाकार कोई वस्तु बनाई जाए तो आप सोच सकते हैं कि वह कितनी भारी एवं कठोर होगी। ध्यातव्य है 'मानस' का यह प्रसंग—

भूप सहस दस एकहि बारा।
लगे उठावन टरइ न टारा॥[38]

फलस्वरूप—

रहउ चढ़ाउब तोरब भाई।
तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥[39]

और कठोरता के लिए—

कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा।
कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥[40]

नाभिकीय विखण्डन (nuclear fission) की स्थिति को महाकवि तुलसीदास जी ने 'मानस' में इस प्रकार अंगीकार किया है—

तेहि छन राम मध्य धनु तोरा।
भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥[41]

भरे भुवन घोर कठोर रव तजि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥[42]

नाभिकीय विखण्डन के पश्चात जो भयावह परिणाम सम्मुख आते हैं उनका 'मानस' में प्रसंग इस प्रकार है—

असुभ होन लागे तब नाना।
रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना॥

---

38. मानस, बालकाण्ड, 250 (1)
39. मानस, बालकाण्ड, 251 (1)
40. मानस, बालकाण्ड, 257 (2)
41. मानस, बालकाण्ड, 260 (4)
42. मानस, बालकाण्ड, 260 (छंद)

बोलहिं खग जग आरति हेतु।
प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतु॥
दस दिसि दाह होन अति लागा।
भयउ परब बिनु रबि उपरागा॥[43]

इसके अतिरिक्त—

प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ अति बात बह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रूधिर कच रज असुभ अति सक को कही॥
उत्पात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए॥[44]

फ्रांस के भौतिक शास्त्री हेनरी बैक्वीरल (1852-1908) ने ज्ञात किया कि यूरेनियम के खनिज पदार्थों में से कुछ बेधक किरणें (penetrating rays) निकलती ह। ये किरणें एक्स-किरणों जैसी ही होती हैं। यूरेनियम जैसे पदार्थ, जिनमें से ऐसी वेधी किरणें निकलती हैं। **रेडियोधर्मी** (radioactive) कहलाते हैं। पदार्थ के इस गुण को **रेडियोधर्मिता** (radioactivity) कहते है। अल्फा (α) और बीटा (β) अतिसूक्ष्म परमाणु-कण हैं तथा गामा (γ) सूक्ष्म तरंगों वाली किरणें हैं। अल्फा विकिरण में दो प्रोटॉन और दो न्यूट्रॉन कण होते हैं, अर्थात् यह हीलियम के परमाणु का नाभिक होता है। बीटा कण वस्तुतः तीव्र वेग वाले इलैक्ट्रॉन होते हे। नाभिक के प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन जब एक-दूसरे में बदलते हैं, तब इन विशिष्ट इलैक्ट्रानों का जन्म होता है। परमाणु का नाभिक जब अधिक उत्तेजित हो जाता है, तब वह गामा किरणों का उत्सर्जन करता है। अल्फा तथा बीटा कणों की धाराओं और गामा किरणों को ही **'परमाणु-विकिरण'** कहते हैं। रेडियोधर्मी तत्वों के नाभिक स्वयं ही अपघटित होकर α (अल्फा) एवं β (बीटा) कण निकालते रहते हैं। तत्वों का अपघटन कृत्रिम रूप से भी किया जा सकता है। यह अपघटन तीव्रगामी α कणों या तीव्रगामी प्रोटॉनों से करते हैं। इनके स्थान पर मंदगति न्यूट्रॉन अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। न्यूट्रॉन नाभिक में समा जाता हे और उसे अस्थिर कर देता है। इस अस्थिर नाभिक के टूटने से दो लगभग बराबर भार वाले नए नाभिक बन जाते हैं। नाभिक के टूटने की क्रिया को **नाभिकीय विखण्डन** कहते हैं। उदाहरणार्थ U^{235} का नाभिकीय विखण्डन निम्न प्रकार होता है—

---

43 मानस, लंकाकाण्ड, 101(4-5)

44 मानस, लंकाकाण्ड, 101 (छंद)

I N Ba K N ऊना

न बग्यम क्रिपटॉन न्यूट्रान

अस्थायी समस्थानिक

अभिक्रिया फलों का भार 236 से थोड़ा कम है जबकि अभिकारकों का भार 236 से तनिक अधिक। दोनों भारों का अन्तर यूरेनियम के उस द्रव्यमान (mass=m) का सूचक है जो नाभिकीय विखण्डन के समय निम्नलिखित आइंस्टीन-समीकरण के अनुसार ऊर्जा में बदल गया है—

$$E = m \times c^2$$

ऊर्जा = द्रव्यमान x प्रकाश की गति

U^{235} के नाभिकीय विखण्डन से तीव्र गति वाले न्यूट्रॉन प्राप्त होते हैं। इनकी गति को यदि ग्रेफाइट छड (graphite moderator) की सहायता से मंद कर दिया जाए तो यह दूसरे नाभिकों का विखण्डन कर सकते हैं। इस प्रकार एक त्वरक शृंखलित अभिक्रिया आरम्भ हो जाती है। इसके फलस्वरूप लगभग सारे परमाणुओं का विखण्डन तुरंत ही हो जाता है और अपरिमित ऊर्जा निकलती है जो विध्वंस और विनाश का कारण बनती है। यह परमाणु-बम का मूल सिद्धांत है। मानव संहार के लिए इसका प्रयोग सबसे पहले जापान में हिरोशिमा (6.8.1945) और नागासाकी (9.8.1945) पर किया गया। परमाणु बम में U^{235} के स्थान पर प्लुटोनियम का भी प्रयोग किया जा सकता है।

सारणी
वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित तत्व

आणविक संख्या	तत्व का नाम	रासायनिक संकेत
92	यूरेनियम	U
93	नैपच्यूनियम	Np
94	प्लुटोनियम	Pu
95	अमेरिकियम	Am
96	क्यूरियम	Cm

नोट—अंग्रेजी अक्षरों में ऊपर लिखे अंक परमाणु-भार हैं, जबकि अधोस्थिति में अंकित आणविक संख्या। यथा $_{92}U^{235}$ में 235 परमाणु-भार तथा 92 आणविक-संख्या है।

97	बरकैलियम	Bk
98	कैलिफोर्नियम	Cf
99	आइन्स्टीनियम	En
100	फरमियम	Fm
101	मैण्डैलिवियम	Mv
102	नोवैलियम	No
103	लॉरेन्शियम	Lw
104	खुश्चेतोवियम	Unq
105	दोहरियम	Unp

ब्राउन का नियम

आधुनिक विज्ञान परमाणु-विखण्डन में तो सफल हो गया है किन्तु प्रोटॉन एव न्यूट्रॉन को स्वतंत्र रूप में पृथक रखने में सफल नहीं हो सका है। भूतकाल में हम परमाणु को अविभाज्य समझते थे किन्तु आज उसको तोड़ चुके हैं और सम्भव है कि कल भविष्य में हम प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन को स्वतंत्र रूप में रख सकें। विज्ञान के लिए कोई कार्य अथवा वस्तु असाध्य नहीं है किन्तु कठिन अवश्य हो सकती है।

यदि जल से भरे गिलास को इलैक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखा जाए तो जल मे पृथक-पृथक कणों की संरचना दिखाई देगी। यद्यपि बाहर से जल की अवस्था शात एवं स्थिर है किन्तु इसकी संरचना में असंख्य अणु परस्पर एक दूसरे से उसी प्रकार धक्का-मुक्की कर रहे हैं जिस प्रकार अचानक आग लगने पर भीड़ भरे सभागार में लोग धक्का-मुक्की करते हैं। सुप्रसिद्ध अमेरिकी भौतिक शास्त्री जार्ज गेमोव के अनुसार अणुओं की इस अनिश्चित उछल-कूद से ही इन्द्रियों द्वारा शरीर में जो उत्तेजनाएं अथवा संवेदनाएं (sensations) उठती हैं उसी को शरीर का तापमान कहते हैं। इस प्रक्रिया में **जीवाणु** (bacteria) तथा **विषाणु** (viruses) जैसे अत्यंत छोटे-छोटे जीव इधर-उधर धक्का-मुक्की (चित्र 4.3) खाते रहते हैं। सूक्ष्म जगत के इस रोचक कर्म-व्यापार को विज्ञान में 'ब्राउन का नियम' (Brownion Motion) कहते हैं। जार्ज गेमोव का कहना है कि तापमान जब अत्यधिक हो जाता है तो परमाणुओं का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और पदार्थ के सभी इलैक्ट्रानिक आवरण छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। परमाणुओं के इस विखण्डन के बाद
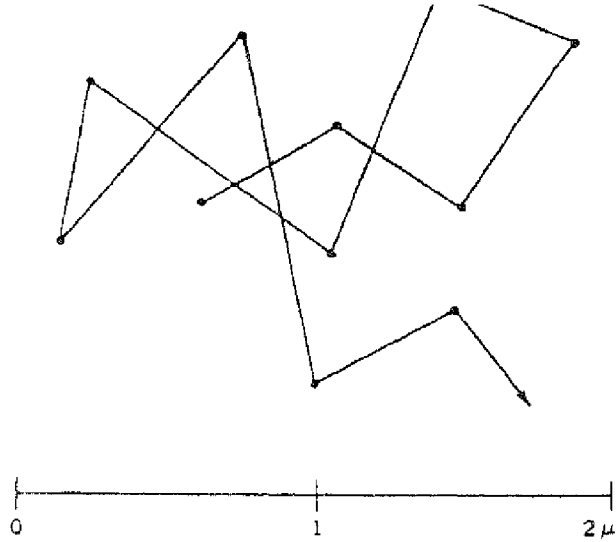
ब्राउन का नियम

[0.1 माइक्रोन (μ) प्रति सेकंड की गति से भटकता हुआ कण]

चित्र 4.3

भी पदार्थ का मूलभूत रासायनिक अस्तित्व विद्यमान होता है, क्योंकि परमाणुओं की नाभिक उसी प्रकार बनी रहती है। जब तापमान गिर जाता है तो नाभिक स्वतंत्र इलैक्ट्रॉन कणों को फिर अपनी ओर खींच लेती है और इस प्रकार परमाणुओं की स्थिति पूर्ववत हो जाती है क्योंकि सम्पूर्ण प्रक्रिया का सम्बंध त्रिविध गुणात्मक तरंगों से है जो परस्पर कारण और कार्य की शृंखला से जुड़ी हुई है। और यही कारण है कि सभी जीवों के चेतन-स्तर तथा उनके गुण-विकार भिन्न-भिन्न हो जाते हैं, क्योंकि उनमें गुणात्मक परमाणुओं का संयोजन भिन्न-भिन्न रूप में होता है। इसीलिए संत कवि तुलसीदास जी ने कहा था—

एक पिता के विपुल कुमारा।
होहिं पृथक गुन सील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता।
कोउ धनवंत सूर कोउ दाता॥
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई।
सब पर पितहि प्रीति सम होई॥[45]

इस प्रकार अणुओं की यह हलचल अथवा धक्का-मुक्की अनिश्चित नहीं होती बल्कि पूर्णतया 'सार्वभौमिक मन' (universal mind) द्वारा नियोजित एवं नियंत्रित होती है क्योंकि तभी कारण और कार्य की शृंखला जुड़ सकती है। अत ताप का उत्कर्ष ही विषमता है, हलचल है, जीवन और स्पंदन है तथा ताप का लोप ही समता अथवा व्यवस्था है। प्रकृति की यह विषमता अथवा हलचल तब तक चलती रहेगी, जगत में यह नाम-रूप परिवर्तन तब तक होते रहेंगे, जीवन और मृत्यु का यह खेल तब तक घटित होता रहेगा जब तक प्रकृति की इस प्रक्रिया को उलट नहीं दिया जाता अथवा कालचक्र को रोक नहीं दिया जाता। महाकवि तुलसीदास जी ने लक्ष्मण के क्रोध को विषमता एवं हलचल का रूप दिया है जबकि श्रीराम के वचनों को शांत करने वाला जल—

लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुल भानु॥[46]

हनुमान जी बुद्धि में निपुण तथा बल में अत्यंत शक्तिशाली थे और इसी कारण जानकी जी को विश्वास हो गया कि अशोक वाटिका में बड़े भारी योद्धा होते हुए भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ा जा सकता। फलस्वरूप हनुमान जी को वन में फल खाने की सीता जी ने आज्ञा प्रदान कर दी—

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयं धरि तात मधुर फल खाहु॥[47]

किन्तु इस अपराध के लिए रावण ने हनुमान जी के बल का गलत अनुमान लगाकर अंग भंग की आज्ञा दे दी। हनुमान जी को नगर में घुमाकर फिर उनकी पूछ में आग लगा दी गई। इस प्रकार हनुमान जी अवसर मिलते ही रावण की अनुसंधानशाला में पहुंचने में सफल हो गए—

---

45 मानस, उत्तरकाण्ड, 86 (1-2)
46 मानस, बालकाण्ड, 276 (दोहा)
47 मानस, सुन्दरकाण्ड, 17 (दोहा)

रसमुम्ब सभा दीख कापि जा"
कहि न जाय कछु अति प्रभुताई

हनुमत्संधानशाला में हनुमान जी ने अणु को विघटन करने वाला यन्त्र उठा लिया। चूंकि उस समय लंका सोने की थी जिसमें इलेक्ट्रॉन की संख्या 79 तथा परमाणु वजन 19.32 होता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यदि इन 79 इलेक्ट्रानों में से 53 इलेक्ट्रोन कम कर दिए जाएं तथा लोहे के बराबर प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन कर दिए जाएं तो सोना लोहे में परिणत हो जाएगा। पवनसुत हनुमान ने उस यंत्र द्वारा परमाणु विघटन की क्रिया प्रारंभ कर दी। परमाणु विघटन से अधिक मात्रा में ताप की उत्पत्ति होती है। शनै-शनै रावण के स्वर्ण महल का तापक्रम सोने के गलनांक (melting point) से ऊपर पहुंचने लगा—

जरइ नगर भा लोग बिहाला।
झपट लपट बहु कोटि कराला॥[49]

अब रावण के सामने अति कठिन समस्या थी कि वह लंका को कैसे बचाए। एक समस्या तो आग बुझाने की थी और दूसरी परमाणु क्रिया को रोकने की थी। क्योंकि अग्नि से धातु को पिघलने से रोकने के लिए तत्व का गलनांक अधिक होना आवश्यक था, अतः रावण ने इस परमाणु क्रिया को लोहे पर रोकने का निश्चय किया क्योंकि लोहे का गलनांक (1537°से.) स्वर्ण के गलनांक (1063°से.) से काफी अधिक होता है। अतः लोहे पर आकर क्रिया को रोक दिया गया। किन्तु इस क्रिया से इतनी अधिक ताप की उत्पत्ति हुई की स्वर्ण-लंका के आस-पास का जो शीतल वायुमण्डल था वह गर्म लहरों से आहत होने लगा। स्मरण रहे कि आज विज्ञान केवल कुछ अस्थिर तत्वों का ही विघटन कर पाता है जिनको रेडियोएक्टिव पदार्थ कहते हैं, जैसे रेडियम, थोरियम, प्लुटोनियम, यूरेनियम आदि। किन्तु यह सम्भव है कि भविष्य में वैज्ञानिक स्थिर तत्वो का भी रेडियोएक्टिव तत्वों की भांति विघटन कर सकेंगे।

पोलैंड की भौतिकशास्त्री एवं रसायनज्ञ मैडम मेरी क्यूरी (1867-1934) ने अपने पति की सहायता से यूरेनियम की एक खनिज पिच ब्लेंडी में से एक नए तत्व की खोज की। यह रेडियम के नाम से प्रसिद्ध है और यूरेनियम की अपेक्षा कई गुना अधिक रेडियोएक्टिव है। अंग्रेज रसायनज्ञ लार्ड रदरफोर्ड (1871-1937) तथा सर फ्रेड्रिक सॉडी (1877-1956) ने यह मालूम किया कि यूरेनियम

48 मानस, सुन्दरकाण्ड, 19 (3)
49 मानस, सुन्दरकाण्ड, 25 (1)

ओर रेडियम स्थायी तत्व नहीं हैं। ये अपघटित होते रहते हैं। अपघटन की इस क्रिया में नवीन रेडियोएक्टिव तत्व उत्पन्न होते रहते हैं जो आगे फिर अपघटित होकर एक शृंखला-प्रतिक्रिया (परिशिष्ट-३) करते हैं।

जैव ऊर्जा आभामण्डल

जैसा कि इस अध्याय में पहले ही बतलाया जा चुका है कि प्रत्येक प्राणी विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों का उपयोग करता है, अतः यह स्वाभाविक है कि उन प्राणियों में विभिन्न नए पदार्थों एवं ऊर्जा की उत्पत्ति होगी और उपापचय प्रक्रिया के कारणवश शरीर में रासायनिक परिवर्तन होंगे। इस रासायनिक ऊर्जा से ही यान्त्रिक ऊर्जा उत्पन्न होगी। यांत्रिक ऊर्जा का रूपान्तरण ऊष्मा ऊर्जा में होगा और अन्ततोगत्वा शारीरिक शक्ति **जैव-ऊर्जा** (bio-energy) में आभासित होगी। यह जैव-ऊर्जा मानव शरीर के चारों ओर वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से **आभामण्डल** (aura) रूप में देखी जा सकती है। देवी-देवताओं के चित्रों में उनके शरीर के विशेषकर, सिर के चारों ओर चित्रित किया गया प्रकाश ही आभामण्डल या 'औरा' है। शरीर के चारों ओर यह आभामण्डल केवल दिव्य पुरुषों के शरीर के चारों ओर ही नहीं, साधारण व्यक्तियों के शरीर के आस-पास भी रहता है। महाकवि तुलसीदास जी ने इस आभामण्डल को तेज-पुंज की संज्ञा दी है–

तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा।
हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा॥[50]

यह बात वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार कर ली है और उन्होंने इस आभा-मण्डल को 'औरा' नाम दिया है। पश्चिमी देशों में आभा-मण्डल अथवा 'औरा' को लेकर काफी शोध कार्य हुआ है, यद्यपि यह भारत में हमारे महर्षियों ने पहले ही ज्ञात कर लिया था। 'औरा' पर शोध-कार्य करने वाले एक विशेषज्ञ हार्वर्ड एडलमेन के अनुसार 'औरा' को एक सूक्ष्म अथवा आध्यात्मिक शरीर कहा जा सकता है। 'औरा' व्यक्ति के पूर्व जन्मों में ही नहीं, वरन् आगे होने वाले जन्मों में भी बराबर मौजूद रहता है। मानव शरीर के चारों ओर व्याप्त आभा-मण्डल की कल्पना शताब्दियों पुरानी है। लेकिन यह कल्पना, कल्पना न होकर वास्तविकता है। यूनान, रोम, मिस्र तथा भारत में बने प्राचीन चित्रों से लेकर आधुनिक चित्रों तक देवी, देवताओं, महापुरुषों इत्यादि के चित्रों में आज भी इंगित इस आभा-मण्डल की

---

50 मानस, लंकाकाण्ड, ४४ (२)

साकार कल्पना का के चारों ओर ज्योतिर्मय आभा-मण्डल के रूप में रखा जा सकता है। यह मात्र चित्रकार की कल्पना नहीं है बल्कि अदृष्य सत्य का साक्ष्य है। इस प्रकार का आभा-मण्डल सभी व्यक्तियों के चारों ओर व्याप्त रहता है।

आभा-मण्डल आत्मा का प्रकाश है जो भौतिक शरीर को अपने में अविरत किए रहता है। हमारी विकासगति को निरंतर गतिशील बनाए रखने में आत्मा ही एकमात्र शक्ति और स्रोत है। शरीर तो साधनमात्र है। आत्मा की अमरता के परिणामस्वरूप ही मनुष्य जन्म-जन्मान्तर तक अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सतत् रूप से प्रयत्नशील रहता है तथा निरंतर अनुसंधान करते हुए रहस्योद्घाटन करता हुआ उपलब्धियां समेटता चला जा रहा है। मनुष्य अपनी बुद्धि का विकास करते हुए अब इस बौद्धिक स्तर को प्राप्त कर चुका है कि वह विज्ञान के सहयोग से यह भेद उजागर कर दे कि मनुष्य के एक नहीं दो शरीर हैं। इस स्पष्ट भौतिक शरीर के अतिरिक्त मनुष्य का एक और अदृष्य सूक्ष्म शरीर है जो मृत्यु-समय परमात्मा में लीन हो जाता है—

तासु तेज समान प्रभु आनन।
हरषे देखि संभु चतुरानन॥[51]

वैज्ञानिकों ने भी इस आभा-मण्डल को मान्यता देते हुए कहा है कि यह आभा-मण्डल केवल जीवित व्यक्तियों के साथ ही देखा जा सकता है और जीवितावस्था मे यह शरीर के साथ गुंथा रहता है। मृत्यु के पश्चात आत्मा के शरीर छोड़ने पर यह आत्मा के साथ ही पृथक हो जाता है। सूक्ष्म शरीर का प्रकाश हमारे स्थूल शरीर को आवेष्ठित किए रहता है—

मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा।
कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा॥[52]

वैज्ञानिकों ने परीक्षणों द्वारा वैज्ञानिक यन्त्रों की सहायता से देखा है कि मनुष्य की मृत्यु होते समय मनुष्य के भौतिक शरीर से लपटें और चिंगारियां निकलकर अन्तरिक्ष में विलीन होती देखी गई हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि सूक्ष्म शरीर की संरचना किसी ऐसे पदार्थ की है जिसके इलैक्ट्रॉन स्थूल शरीर के इलैक्ट्रॉनों की अपेक्षा तीव्रगामी और गतिशील है। इनकी मान्यता है सूक्ष्म शरीर अपनी इच्छानुसार स्थूल शरीर से निकलकर अन्यत्र स्वैच्छिक विचरण कर फिर से लौट

---

51 मानस, लंकाकाण्ड, 102 (5)

52 मानस, सुन्दरकाण्ड, 27 (2)

सकता है। यही कारण है कि बहुत से प्राणी मृतासन्न अवस्था प्राप्त कर पुन जीवित हो जाते हैं। अतः आभा-मण्डल सूक्ष्म से निकलने वाला अदृश्य प्रकाश ह ओर यह शरीर के ऊतकों में रासायनिक प्रक्रिया द्वारा होने वालो दूसरी प्रतिक्रिया है। यह तथ्य रूसी वैज्ञानिक कीर्लियन के प्रयोगों द्वारा भी प्रमाणित हो चुका हे जो विज्ञान में 'कीर्लियन फोटोग्राफी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रणाली की महत्वपूर्ण बात यह है कि 'उच्च्य आवृत्ति विद्युतीय क्षेत्र' (High Frequency Electric Field) म जब निर्जीव तथा सजीव वस्तुएं आती हैं तो उनमें नाना प्रकार की बहुरगी प्रकाश किरणें फूट पड़ती हैं और उन प्रकाश-तरंगों का गुणात्मक स्वरूप भिन्न-भिन्न वस्तुओं में भिन्न-भिन्न रूप से प्रकट होता है। अनेक प्रकार की वस्तुओं में विद्युत रूप से प्रकट होता है। अनेक प्रकार की वस्तुओं में विद्युत-तरंगों का वह चित्रमय प्रवाह नीला, पीला, हरा, बैंगनी, लाल, नारंगी, सुनहला आदि विभिन्न रंगों में मिश्रित नाना प्रकार के छायाचित्रों में प्रदर्शित होता है—

सोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा।
नील पीत जलजाभ सरीरा॥[53]

वैज्ञानिकों का कहना है कि कीर्लियन फोटोग्राफी द्वारा उन घटनाचित्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे अद्भुत लोक में पहुंच गए हों जिसे शब्दो मे व्यक्त करना सम्भव नहीं है। इन्हीं घटनाचित्रों को वैज्ञानिक 'शीतल आलोक' (cold luminescence) अथवा आभा-मण्डल (human aura) कहते हैं। इन आलोक किरणों, तेजपुंजों अथवा आभा-मण्डलों का सम्बंध प्रत्यक्षरूपेण मनुष्य के भावात्मक विचारों, संवेगों तथा अनेक प्रकार की मानसिक अवस्थाओं से है। तपस्या की स्थिति में शरीर का तेज कम हो जाता है किन्तु मुख के आभा-मण्डल में कोई परिवर्तन नहीं होता—

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई।
घटई तेजु बलु मुखछबि सोई॥[54]

जब भावनाओं अथवा विचारों में परिवर्तन होता है तो कीर्लियन फोटोग्राफी के उन तरंगों में भी परिवर्तन हो जाता है। अर्थात विचार तरंग एवं पदार्थ-तरगो मे अभिन्न सम्बंध है। इससे सांख्यदर्शन का यह सिद्धांत प्रमाणित होता है कि कारणस्वरूप सूक्ष्म जगत (Astral world) की गुणात्मक तरंगें ही कार्यस्वरूप भौतिक पदार्थ की तरंगों में प्रदर्शित होती है और यह क्रिया वृत्तात्मक रेखागणित के अनुसार

---

53 मानस, बालकाण्ड, 232 (1)

54 मानस, अयोध्याकाण्ड, 324 (1)
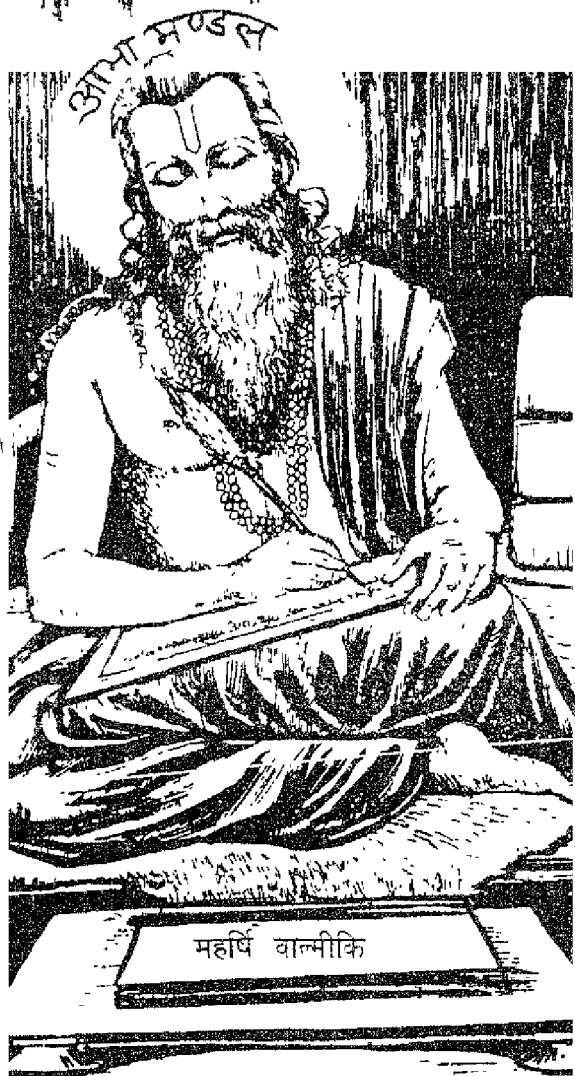
आभामण्डल

चित्र 44

होती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि कोई वस्तु अथवा प्राकृतिक शक्ति (प्रकाश, चुम्बकत्व, नक्षत्र-पिण्डादि) जिस केन्द्र विन्दु से चलेगी उसे अन्त में घूमकर उसी केन्द्र बिन्दु पर ही वापस आना पड़ेगा। इस वैज्ञानिक नियम का दार्शनिक दृष्टिकोण यह है कि यदि मनुष्य तथा जीव जन्तुओं की उत्पत्ति परमात्मा द्वारा हुई है तो उसका अन्त भी उसी परमशक्ति में होगा। इस प्रकार इस वृत्तात्मक प्रक्रिया में त्रिविध गुण-विकार (सत्व, रज, तम) ही पदार्थ बन जाता है और पदार्थ ही त्रिविध गुण-विकार। दूसरे शब्दों में कारण जगत ही कार्यजगत बन जाता है और कार्य जगत ही कारण जगत क्योंकि सापेक्षवाद में 'कारण और कार्य' अभिन्न है, एक को दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। अतः इस नियम के अनुसार यदि विनाश हो रहा है तो कहीं निर्माण भी अवश्य होना चाहिए, क्योंकि सापेक्षवाद मे एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है। मनुष्य का पांच तत्वों के द्वारा बना शरीर विनाश (मृत्यु) के पश्चात उन्हीं पांच तत्वों में मिल जाता है अर्थात जल का जल में, वायु का वायु में, अग्नि का अग्नि में तथा अन्त में पृथ्वी मृदा मे विलीन हो जाती है। विलीनता के पश्चात ये तत्व सजीव से निर्जीव में परिवर्तित हो जाते हैं क्योंकि ये ही इनका गुणधर्म है—

गगन समीर अनल जल धरनी।
इन्ह कई नाथ सहज जड़ करनी ॥[55]

इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक रासायनिक चक्र चलता रहता है। सजीव से निर्जीव तथा निर्जीव से सजीव की उत्पत्ति होती रहती है और यही संसार का कर्म-व्यापार है।

---

55 मानस, सुन्दरकाण्ड, 59 (1)

5
आयुर्विज्ञान

मानसिक स्वास्थ्य हमारे शारीरिक स्वास्थ्य की आधारशिला है। स्वस्थ आहार-विहार ही स्वस्थ आचार-विचार का निर्माण करता है। हमारे चारों ओर व्याप्त वातावरण ही प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अन्ततोगत्वा प्राणी-मात्र पर प्रभाव डालता है और सामयिक व्याधियों के लिए उत्तरदायी है। प्राचीन काल में रचित आयुर्वेद वह ज्ञान है जो इन सामयिक बीमारियों के विषय में हमारा मार्गदर्शन करता है। वास्तव में आयुर्वेद अथर्ववेद का ही उपवेद है। आजकल नाना प्रकार की बीमारियों के विषय में जानकारी आयुर्विज्ञान (आयुः+विज्ञान) देना है जिसका शाब्दिक अर्थ है-- Science of life. अतः आयुर्वेद तथा आयुर्विज्ञान एक प्रकार से एक दूसरे के पर्याय हैं।

शरीर-संरचना

संसार के सृजक ब्रह्मा ने दक्ष प्रजापति को आयुर्वेद का ज्ञान दिया। दक्ष प्रजापति ने दो अश्वनी कुमारों और तदुपरांत इन्द्र को इसका ज्ञान दिया। राजा इन्द्र ने धनवंतरि को पृथ्वी पर आयुर्वेद का प्रचार और प्रसार के लिए भेजा। धनवंतरि का शिष्य सुश्रुत था जिसने सुश्रुत-संहिता की रचना की। सुश्रुत के समकालीन चरक थे जिन्होंने औषधियों पर चरक-संहिता की रचना की। आयुर्वेद की आठ शाखाएं हैं—

1. कायचिकित्सा (General medicine)
2. शल्य चिकित्सा (Surgery)
3. शलाक्य (E.N.T.)

4. गृह चिकित्सा (Psychotherapy)
5. दमस्त्र (Toxicology)
6. बाल रोग (Paediatrics)
7. जराचिकित्सा (Rejuvenation)
8. वृष्यचिकित्सा (Aphrodisiacs)

सम्पूर्ण ब्रह्मांड पांच महाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) से मिल कर बना है। इसी प्रकार हमारा शरीर भी इन्हीं पांच तत्वों से रचित है–

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा॥[1]

अतः भारतीय दर्शन और आयुर्वेद के अनुसार ब्रह्मांड और मनुष्य में एक समानता है–

उदर माझ सुनु अंडज राया।
देखेउं बहु ब्रह्मांड निकाया॥[2]

आयुर्वेद का मुख्य सिद्धांत (वात्, पित्त, कफ) पर आधारित है। शरीर में वात् ही सर्वाधिक शक्तिशाली तत्व है और इसकी रचना ब्रह्माण्ड के दो तत्वों, वायु एवं आकाश से मिलकर हुई है। कफ् (expectoration) की उत्पत्ति पृथ्वी तथा जल से और पित्त (bile) की उत्पत्ति तेज (अग्नि) की अधिकता के कारणवश है। आयुर्वेद के सिद्धांतानुसार सात प्रकार की धातुएं (tissues) भी हैं। शरीर की रचना चूंकि त्रिदोष पर निर्भर है अतः व्यक्ति विशेष की संरचना किसी एक दोष पर अवश्य ही आश्रित है। उदाहरणार्थ यदि शरीर में वात् की अधिकता है तो शरीर वातिक होगा और इसी प्रकार पित्त एवं कफ् के कारणवश शरीर में गुण ओर दोष पाए जाते हैं। इस तरह पृथक-पृथक शरीर को अलग-अलग भोजन चाहिए और यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है।

कहावत है कि 'जैसा खाया अन्न वैसा पाया मन'। अर्थात् मनुष्य का स्वभाव उसके खाए हुए भोजन पर निर्भर करता है। यदि भोजन सात्विक है तो स्वभाव सरल होगा–

सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि पाय पलोटत भाइ॥[3]

---

1 मानस, किष्किंधाकांड, 10 (2)

2 मानस, उत्तरकांड, 79 (2)

3 मानस, अयोध्याकाण्ड, 89 (दोहा)

कन्द मूल फल सुरस अति दिए राम कहु आनि
प्रेम सहित प्रभु खाए बारबार बखानि[4]

अन्यथा तामसिक भोजन करने पर प्रवृत्ति तामसिक होगी—

महिष खाइ करि मदिरा पाना।
गर्जा बज्राघात समाना॥
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा।
चला दुर्ग तजि सेन न संगा॥[5]

क्योंकि भोजन करने से शरीर में धातु उत्पन्न होती है। शरीर में विद्यमान त्रिदोषों के असंतुलन होने पर वह व्याधिग्रस्त हो जाता है। इस प्रसंग में मुझे एक कहानी याद आ गई—एक समय एक न्यायप्रिय राजा ने एक ईमानदार, परिश्रमी और सदाचारी महात्मा अपने दरबार में परामर्श के लिए रखा। महात्मा केवल चावल ही खाता था। अनेक वर्षो तक राजकाज में बीत गए कि अचानक रानी का मूल्यवान हार चोरी हो गया। महात्मा पर कोई शक नहीं था और न ही उसने भेद खोला। कुछ दिन पश्चात् अकस्मात् महात्मा **अतिसार** (diarrhoea) रोग से बीमार हो गए। उपचार होने के पश्चात् महात्मा ने राजा से क्षमा मांगी और कहा कि मैं चोर हू क्योंकि हार की चोरी मैंने की है। किन्तु किसी को भी इस बात पर विश्वास नही हुआ तो महात्मा ने हार लाकर राजा को लौटा दिया। महात्मा ने कहा कि जब मैं कंद-मूल-फल खाया करता था तो सदाचारी और ईमानदार था, किन्तु आपका भोजन खाने के कारण ही मुझमें यह दोष पैदा हुआ है। राजा ने जब इन तथ्यो की पूछताछ की तो पता चला कि चावल किसी चोर के घर से छापा मारकर राज-भंडार में लिया गया है तो वह संतुष्ट हुआ किन्तु महात्मा राज दरबार छोड़कर बन को प्रस्थान कर चुका था।

शरीर के अन्दर अन्य दोषों की अपेक्षा **वात्** (Pneumothorax) दोष की मुख्य भूमिका है। यह शरीर एवं मस्तिष्क के कार्यों को नियंत्रित करती है। सामान्यतया वात् पांच प्रकार की होती हैं—1. प्राण, 2 उदान्, 3. व्यान्, 4 शमन और 5. अपान्।

प्राण वायु जीवन का मुख्य स्रोत है जिसके बिना हमारा जीवित रहना सम्भव नहीं है। यह श्वास लेने, भोजन निगलने (gulp), थूकने, छींकने, डकारें (belching)

4 मानस, अरण्यकाण्ड, 34 (दोहा)

5 मानस, लंकाकाण्ड, 63 (1)

लन आदि म मुख्य भूमिका निभाती हैं। यह न केवल हृदय स्पदन एव अन्य प्रमुख अगो को कार्यशील करती है बल्कि आजीवन उन्हें चालू रखती है। शरीर ओर मस्तिष्क की शक्ति बनाए रखने में उदान् वायु का काम है। यह मुख्यतया नाक द्वारा आवागमन करती है और विभिन्न ध्वनियों के प्रति उत्तरदायी है। मस्तिष्क की स्मरणशक्ति, वाक् शक्ति तथा साहस आदि इसी वायु द्वारा नियंत्रित है। व्यान् वायु हृदय में उपस्थित है तथा सम्पूर्ण शरीर में संचरण करती है। यह वायु शरीर मे रक्त और भोजन-रस परिपूर्ण करती है। यह न केवल पलकों को झपकती ह बल्कि सम्पूर्ण शरीर को गतिशील रखती तथा पसीने को भी बाहर निकालने मे सहायता करती है। समन् वायु जटराग्नि के निकट है तथा सम्पूर्ण भोजन-नली मे घूमती रहती है। इसका नियंत्रण पाचन-संस्थान (digestive system) पर हे। अपान् वायु भोजन नली के निम्न भाग में स्थित है तथा विष्ठा (faeces), मूत्र (urine), रज् (menses), शुक्राणु (semen), अफारा (flatus), पूर्णकाय भ्रूण (foetus) आदि के निकासी में सहायता करती है। अतः मनुष्य के शरीर, मन-मस्तिष्क स्वस्थ तभी होंगे यदि उसमें त्रिदोष (वात्, पित्त, कफ्), धातु एव अग्नि संतुलन में हैं—

समदोषाः समग्निश्च समधातु मलः क्रियाः।
प्रसन्नतमेन्द्रिया मनः स्वस्थः इत्याभिदियतेः॥[6]

शरीर में विद्यमान पित्त पांच प्रकार के होते हैं—

1. पाचक, 2. रंजक, 3. साधक, 4. भ्राजक और 5. अलोचक।

आमाश्य (abdomen) एवं आंतों (intestines) के मध्य पाचक-पित्त की उपस्थिति है और इसका मुख्य कार्य भोजन को पचाना है। आमाश्य से यकृत (lever) की ओर जाने से पूर्व रंजक-पित्त भोजन को रंग प्रदान करता है। साधक-पित्त हृदय में विद्यमान होता है तथा मस्तिष्क के कार्य एवं उससे संबंधित कार्यो मे सहायता करता है। यह ज्ञान तथा स्मरणशक्ति को बनाए रखने में सहायक होता हे। भ्राजक-पित्त त्वचा में विद्यमान है तथा उसकी आभा (tint) बनाए रखने मे सहायक है। अलोचक-पित्त नेत्रों में विद्यमान है और सामान्य दृष्टि एवं प्रत्यक्ष वस्तु का आकार, वर्ण बनाए रखने में सहायता करता है।

वात् एवं पित्त के समान शरीर में कफ् भी पांच प्रकार का है—1. क्लेदक्, 2 अवलम्बक्, 3. भोदक्, 4. तर्पक, तथा 5. स्लेहक।

क्लेदक्-कफ् आमाश्य में भोजन को गीला करने में उपयोगी है। अवलम्बक्-

---

6 सुश्रुत संहिता, 15/41

कफ [illegible] में [illegible] होता है तथा [illegible] का अपने [illegible] गुण से [illegible] ज्ञान से [illegible]। भादक-कफ जिह्वा में [illegible] भोज्य पदार्थ के स्वाद का ज्ञान कराता है। इस प्रकार इसका स्थान नाभि मूल से गले तक है और भूख बढ़ाने में सहायक है। तर्पक-कफ सिर में है तथा नाक और नेत्रों को ठंडा रखता है। स्लेहक-कफ शरीर के जोड़ों में पाया जाता है जो इन अंगों की गतिशीलता में सहायक है।

उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त शरीर में अग्नि का भी प्रमुख स्थान है जो शमन-वायु तथा क्लेदक-कफ की सहायता से भोजन को पचाने में सहायता करती है। शरीर में तेरह प्रकार की अग्नि हैं जिनमें सात धात्वाग्नि (tissue enzymes), पांच भूत अग्नि तथा एक जठराग्नि। दूसरे शब्दों में अग्नि को पित्त (पाचक पित्त) भी कहते हैं। किसी भी व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए इसका होना अनिवार्य है।

इस प्रकार हमने देखा कि जो भी भोजन हमने खाया वह उपर्युक्त तत्वों के साथ सम्पर्क में आकर क्रिया करता है तथा फलस्वरूप छः प्रकार (मीठा, खट्टा, नमकीन, तीक्ष्ण, कड़वा और कषाय) के रस उत्पन्न होते हैं। अन्ततोगत्वा पचे हुए भोजन से मधुर विपाक और तत्पश्चात पित्त (bile) द्वारा वह क्रिया करता है। इस प्रकार जठराग्नि द्वारा पानी सोख लिया जाता है और मलद्वार (rectum) से बाहर निकाल दिया जाता है। रस अन्न (creals), फल एवं मांस द्वारा भी तैयार होता है।

शरीर की संरचना में सात धातुओं की भी मुख्य भूमिका है। ये धातु इस प्रकार हैं—

1. रस (chyle)
2. रक्त (blood)
3. मांस (flash)
4. मेदा (fat)
5. अस्थि (bones)
6. मज्जा (marrow)
7. शुक्राणु (semen)

उपर्युक्त वर्णित दोषों एवं धातुओं के अतिरिक्त अन्य प्रमुख कारक मल भी है। इनमें विष्ठा, मूत्र तथा पसीना मुख्य हैं। इन सभी की उत्पत्ति पाचन एवं मलोत्सर्जन (excretion) के परिणामस्वरूप होती है। उदाहरणार्थ—कफ रसों का उप-उत्पादन है और इसी प्रकार अन्य मल हैं—पित्त, मूत्र, पुरीष, प्रजनन मल, स्वेद (sweat) आदि। कान, नाक और मुख द्वारा निकलने वाला मलगम है। आयुर्वेद के उपचार का मुख्य उद्देश्य मूल स्थान से सभी दोषों को पूर्णतया समाप्त करना है। किन्तु उपचार भी तभी सफल है यदि भगवत्कृपा भी साथ है।

भावरोग

वैदिक युग में ऋषियों की भूमि भारत प्रदूषण से अप्रभावित थी क्योंकि सम्पूर्ण समाज एवं वातावरण यज्ञ तथा हवन के धुएं से सुगन्धित था। उस समय प्रदूषण कुछ सीमित क्षेत्र तथा आक्रामक शत्रु आदि के द्वारा ही उत्पन्न किया जाता था। इसीलिए इसके निवारण की समस्या बहुत कठिन नहीं थी। अपनी सुख-समृद्धि के लिए मानव प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता गया और इसके फलस्वरूप प्रकृति का संतुलन बिगड़ता रहा है। आज का पाश्चात्य समाज भी, जो औद्योगिकरण एवं विकास की दौड़ में सबसे आगे है, इस समस्या के विकराल रूप को देखकर चकरा गया है। 'रामचरितमानस' में संत तुलसीदास जी ने भी प्रकृति के इस प्रकार असतुलन होने के कारण प्राणी में विविध प्रकार की व्याधियों की ओर इंगित किया है। इसी असंतुलन के फलस्वरूप आहार संदूषित हो जाता है। आहार-संदूषण तथा इसके द्वारा उत्पन्न रोगों के विषय में आप आगामी अध्याय में पढ़ सकेंगे। इसके अतिरिक्त वायु, जल एवं थल प्रभावित होकर प्रदूषण द्वारा नाना पीड़ाओं से प्राणी को कष्ट होता है और अनेक रोगों से युक्त मनुष्य का जीवन नीरस हो जाता है।

यद्यपि आज बढ़ते हुए प्रदूषण के परिणाम-स्वरूप अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोग प्रकाश में आए है जिनका निदान किया जा रहा है अथवा इनके उपचार पर अनुसंधान किया जा रहा है, किन्तु प्राचीन काल में आयुर्विज्ञान के विषय में भी कम शोध-कार्य नहीं हुआ है। भारत में अनेक ऐसे मनीषियों, विद्वानो एवं चिकित्सकों ने जन्म लिया जो अपनी-अपनी विद्या में पारंगत थे जैसे चरक, सुश्रुत, वाग्भट, उल्हण, चक्रपाणिदत्त, शार्ङ्गधर इत्यादि। आयुर्वेदीय चिकित्सकों एवं ग्रन्थकारों ने शारीरिक रोगों के अतिरिक्त मानसिक रोगों का भी विस्तृत वर्णन किया है, जिसके अन्तर्गत मानसिक भावों का वर्णन रोग, रोगोत्पादक भाव तथा रोग-लक्षण के रूप मे किया है। इनमें से नौ—काम, क्रोध, भय, शोक, लोभ, मोह, अहकार, इच्छा तथा मद महाकवि तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में भी वर्णित है। आयुर्वेद का यह भी कथन है कि ये भाव सभी मनुष्यों में जन्मजात होते है किन्तु इनके कारण रोग तभी उत्पन्न होते हैं जब ये भाव निरंतर दीर्घ समय तक शरीर के अन्दर उग्र रूप में बने रहें। जहां इन भावों को रोग रूप में वर्णित किया गया है वहां इनके कारणों के साथ चिकित्सा भी बतलाई गई है। इस तरह सर्व-मनुष्य-व्यापि मानसिक भावों को आयुर्वेद में रोग-रूप में वर्णित किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा इनका मानसिक-रोग रूप में वर्णन करना

मनास्नानिक रोग्य स मगानपूण ग मानवि तुलसीदास जा न भी कछ रोगों को जन्मजात कहा ७

हरष विषाद ग्यान अग्याना

जीव धम अहमिति अभिमाना ॥[7]

एक अमरीकन ने लिखा है कि यदि भावरोग समूल नष्ट न हो सका तो उत्तम स्वास्थ्य की क्या उपयोगिता है ? यह रोग जन्म और मृत्यु का रोग है तथा समस्त बीमारियों की जड़ है।

भव—(ईश या शक्तिमान) के भाव को 'भाव' कहते हैं और उसके पर्यायवाची शब्द ये हैं—सत्ता, स्वभाव, अभिप्राय, चेष्टा, आत्मा, जन्म, क्रिया, लीला, पदार्थ, बुध, जन्तु और विभूति एवं रति आदि।

उपर्युक्त सभी शब्दों के पृथक-पृथक अर्थ हैं। मूल भाव शब्द विद्वान या ज्ञानवान् के अर्थ में प्रयुक्त है। तात्पर्य है कि शक्ति, सत्ता, विभूति और ज्ञान (भाव) के रोग को 'भावरोग' कहते हैं। भावरोग के मुख्य कारण हैं—**अहंकार, नास्तिक्य तथा प्रज्ञापराध।**

किसी भी परिस्थिति पर विचार न करना, सभी कामों का कर्त्ता अपने को समझना, अधिकार जमाना, कठोर एव क्रोधयुक्त वचन बोलना आदि कार्य अहंकार के कारण पुरुष करता है। संत तुलसीदास जी के शब्दों में रावण ने अंगद को संबोधित किया—

मम भुज सागर बल जल पूरा।

जहं बूड़े बहु सुर नर सूरा॥

बीस पयोधि अगाध अपारा।

को अस बीर जो पाइहि पारा॥[8]

सर्वशक्तिमान ईश्वर को न मानना ही 'नास्तिक्य' गुण है। 'परलोक है', ईश्वर एवं गुरुजन श्रेष्ठ है ऐसा न समझने से समर्पण-बुद्धि समाप्त हो जाती है। परिणामतः उच्छृंखलता आ जाती है, जो सभी पातकों की मूल है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'मानस' में वर्णन किया है कि—

तासु भजनु कीजिअ तहं भर्ता।

जो कर्ता पालक संहर्ता॥[9]

---

7. मानस, बालकाण्ड, 115 (4)

8. मानस, लंकाकाण्ड, 27 (2)

9. मानस, लंकाकाण्ड, 6 (2)

मुनिवर जतनु करहिं जेहि लागी।
भूप राजु तजि होहिं बिरागी॥[10]
तव रावन मयसुता उठाई।
कहे लाग खल निज प्रभुताई॥
सुनु तैं प्रिय वृथा भय माना।
जग जोधा को मोहि समाना॥
बरुन कुबेर पावन जय काला।
भुज बल जितेउ सकल दिगपाला॥
देव दनुज नर सब बस मोरें।
कवन हेतु उपजा भय तोरें॥[11]

अंहकारी मात्र अपने को ही श्रेय देने लगता है। असफलता का दोष दूसरों पर मढ़ता है। तब उसका अहंकार भी बढ़ने लगता है। दूसरी ओर कटुता भी वढती है। तथाकथित कर्त्ता की बुद्धि मारी जाती है। बुद्धि का अपराध (प्रज्ञापराध) इसी को कहा गया है। इसके तीन भेद हैं—**धी-विभ्रंश** (बुद्धिनाश), **धृति-विभ्रंश** (धैर्यनाश) और **स्मृति-भ्रंश**। संत तुलसीदास जी ने 'रामचरित्मानस' में इस प्रकार वर्णन किया है—

काल दंड गहि काहु न मारा।
हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥
निकट काल जेहि आवत साईं।
तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं॥[12]

ध्यान रहे कि अंहकार, नास्तिक्य एवं प्रज्ञापराध का परस्पर अविच्छन्न संबंध है। ये परस्पर जनक और पूरक हैं। प्रज्ञापराध के तीनों भेदों की भी यही स्थिति हे। प्रज्ञापराधी अपने को सर्वथा सर्वश्रेष्ठ समझता है। वह बड़ा दुराग्रही भी होता हे।

आयुर्वेद के मतानुसार मानसिक रोगों की उत्पत्ति के प्रधान कारण रज और तम दोष हैं। इनसे उत्पन्न काम-क्रोध-लोभ-मोह-ईर्ष्या-भय-अति चिन्ता और मस्तिष्क की कमजोरी है। इन विकारों का जनक मुख्यतः मनुष्यों का प्रज्ञापराध हे। महर्षि चरक ने सत्य ही कहा है कि—

---

10 मानस, लंकाकाण्ड, 6 (3)

11 मानस, लंकाकाण्ड, 7 (1-2)

12 मानस, लंकाकाण्ड, 36 (4)

मूल रोगाणाम

[illegible] मान [illegible] [illegible] में होने वाला भूल ही रोगों का मूल कारण [illegible] मानसिक रोगों का हेतु तो निश्चित रूप से प्रज्ञापराध ही है

> ईर्ष्या शोक भय क्रोध मानद्वेषादयश्च ये।
> मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः॥

अर्थात्--जो भी मन के विकार हैं वे सबके सब प्रज्ञापराध से ही उत्पन्न होते हैं। अतः मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्रज्ञापराधों से बचना पहला कर्त्तव्य है।

मानसिक निरोगता की प्राप्ति का सर्वोपरि उपाय यही है कि इच्छाओं में अधिक आसक्ति न रखकर जीवन की आवश्यकताओं को सीमित करें और साधन-बहुलता एवं अतिसंग्रह की प्रवृत्ति से दूर रहें। निश्चय ही सन्तोष और संयम मानसिक प्रसन्नता के आवश्यक अंग हैं। कहा भी है--

> स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।
> मनसि च सन्तुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥

मन के संतोष से करोड़पति और दरिद्र का भेद नहीं रहता। तृष्णायुक्त धनवान दरिद्र से बुरा और तृष्णाविरत निर्धन, धनवान से अधिक सुखी तथा स्वस्थ रहता है। संतोष का सम्बल बहुत बड़ी शक्ति है। मन सन्तोषी होगा तो उसमें विकार उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

> ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
> संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
> क्रोधाद भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृति विभ्रमः।
> स्मृति भ्रंशाद बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

विषयों पर ही निरंतर ध्यान जमा रहने से वही मन में रमकर रह जाते है। मन और विषयों के इस संग-संयोग से कामना, काम-उपभोग की लालसा उत्पन्न होती है; और उसमें किंचित् भी व्यवधान पड़ा कि क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से सम्मोह अर्थात् कर्तव्याकर्तव्य की अज्ञानता उत्पन्न होती है, उससे स्मृति का नाश हो जाता है। फिर यह ज्ञान नहीं रहता कि अमुक अहित आचरण से अमुक हानि हुई थी अथवा अमुक वस्तु खाने से अमुक दुःख हुआ था। इस प्रकार का ज्ञान न रहने से मनुष्य बार-बार भूलें करता है, उसे ही स्मृतिनाश कहते हैं। स्मृतिनाश से बुद्धिनाश हो जाता है और फिर सर्वनाश निश्चित है।

> रागद्वेषविमुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
> आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

मनुष्य की बुद्धि राग-द्वेष से विमुक्त होकर विषयों का सेवन करे तो

अन्तरात्मा में सन्तोष होता है, मनुष्य को स्वाभाविक शान्ति सुलभ रहती है। मनःशान्ति और बुद्धि-नियमन आहार-विहार में नियमित होने से प्राप्त होते हैं।

प्रज्ञापराध के कारणों के निम्नलिखित कारण भी आते हैं–

1. ठीक समय को खो देना : जो मनुष्य समयोचित कार्य नहीं करता और समय निकलने पश्चाताप करता है, वह प्रज्ञापराध के कारणवश मूर्ख है। कहावत है कि "अब पछताए क्या होत है जब चिड़िया चुग गई खेत", अतः उपयुक्त समय को खो देना ही मूर्खता है। इस प्रकार व्यंग्यात्मक रूप (शब्दों) में मंदोदरी अपने पति 'रावण' को समझाने का प्रयास करती है। और उलाहना देती है कि धनुष भंग, सीता स्वंबर तथा सूर्पणखा के अनादर आदि अवसरों पर क्या तुम सो रहे थे ? उन अवसरों पर समयानुकूल कार्य क्यों नहीं किए ?

जनक सभां अगनित भूपाला।
रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला॥
भंजि धनुष जानकी बिआही।
जब संग्राम जितेहु किन ताही॥
सूपनखा के गति तुम्ह देखी।
तदपि हृदयं नहिं लाज बिसेषी॥[13]

2. सदाचार का लोप : पचवटी मे राजकुमारों (राम-लक्ष्मण) को देखकर रावण की बहिन शूर्पणखा काम से पीड़ित हो गयी जैसे धर्मज्ञान-शून्य कामान्ध स्त्री मनोहर पुरुष को देखकर चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही हो, विकल हो जाती है और मन को नहीं रोक सकती।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी।
पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल सव मनहि न रोकी।
जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी॥[14]

शूर्पणखा सुन्दर रूप धरकर राजकुमारों के पास जाकर और बहुत मुसकुराकर बचन बोली–

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी।
यह संजोग बिधि रचा बिचारी॥

× × ×

13. मानस, लंकाकाण्ड, 35 (5-7)

14. मानस, अरण्यकाण्ड, 16 (3)

तात अब लगि रहिउ कुमारी
मनु माना कछु तुम्हहि निहारी

3. **जान-बूझकर अहितकर कार्य करना** : बिना नाक-कान के बहिन शूर्पणखा को देखकर उत्तेजित हो खर-दूषण ने कहा—

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा।
बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
देहु तुरत निज नारि दुराई।
जीअत भवन जाहु दौ भाई॥[16]

4. **कर्मों का मिथ्यारम्भ** : दस सिर वाला रावण कुत्ते की तरह इधर-उधर ताकता हुआ भड़िहाई (चोरी) के लिए चला। सूना मौका देखकर वह यति (सन्यासी) के वेश में श्री सीताजी के समीप आया। इस प्रकार कुमार्ग पर पैर रखते ही शरीर में तेज तथा बुद्धि एवं बल का लेश भी नहीं रह जाता। ऐसा प्रसंग 'मानस' में दृष्टव्य है—

सो दससीस स्वान की नाईं।
इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा।
रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥[17]

5. **दुस्साहस एवं नारियों का अतिसेवन** : सुग्रीव ने श्रीराम से मित्रता होने के उपरांत जब अपनी व्यथा सुनाई तो बालि को स्त्रीहरण के दुस्साहस एवं नारियों का अतिभोग के फलस्वरूप प्रज्ञापराध के कारण जो परिणाम हुआ वह सर्वविदित है। फल का कारण श्रीराम ने बतलाया कि—

अनुज बधू भगिनी सुत नारी।
सुनु सठ कन्या सम ए चारी।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई॥
ताहि बधें कछु पाप न होई॥[18]

इसी प्रकार नारियों के अतिभोग पर भ्रष्ट-बुद्धि होने के कारण रावण को अंगद से फटकार सुननी पड़ी—

---

15. मानस, अरण्यकाण्ड, 16 (4-5)
16. मानस, अरण्यकाण्ड, 18 (3)
17. मानस, अरण्यकाण्ड, 27 (5)
18. मानस, किष्किंधाकाण्ड, 8 (4)

रे त्रिय चोर कुमारग गामी।
खल मल रासि मंदमति कामी ॥
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा।
भएसि कालबस खल मनुजादा ॥[19]

6. पतितों से मित्रता : प्रज्ञापराध के कारण पतितों से मित्रता भी विनाश का कारण हो जाती है। पतित अपने स्वार्थ के लिए किसी से भी मित्रता कर लेते हैं और तदुपरांत उसे विनाश के गर्त में डाल देते हैं। नीच प्रवृत्ति वाले सदव झुककर मार करते हैं जैसे सर्प, अंकुश एवं धनुष। रावण ने भी मारीच के पास जाकर अपनी योजना कही कि—

होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी।
जेहि बिधि हरि आनौं नृप नारी ॥[20]

7. सद्वृत्त का पालन न करना एवं दूसरों को मना करना : लंकाधिपति रावण की आज्ञानुसार—

द्विजभोजन मख होम सराधा।
सब के जाइ करहु तुम्ह बाधा ॥[21]

और इसके परिणामस्वरूप—

अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं करना।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना ॥[22]

ईर्ष्या-मान-भय-क्रोध-लोभ-मोह-मद-भ्रम और इनसे उत्पन्न मानसिक-शारीरिक कठिन कर्म करना भी प्रज्ञापराध अर्थात् बुद्धि-विभ्रंश के कारण ही होता है—

तब लगि हृदयं बसत खल नाना।
लोभ मोह मच्छर मद माना ॥[23]

उपर्युक्त कारणों एवं विषयों का ज्ञानेन्द्रियों और मन से स्पर्श होता है। ये स्पर्श सभी दुःखों के प्रवर्तक होते हैं। सुख-दुःख से इच्छा-द्वेषात्मिका तृष्णा उत्पन्न होती है जो सुखों और दुःखों का कारण भी कही गयी है। वास्तव में तृष्णा (craze) ही सभी दुःखों की मूल है। गीता में प्रसंग है—

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संङ्गात संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥

19 मानस, लंकाकाण्ड, 32 (3)
20 मानस, अरण्यकाण्ड, 24 (1)
21 मानस, बालकाण्ड, 180 (4)
22 मानस, बालकाण्ड, 183 (छंद)
23 मानस, सुन्दरकाण्ड, 46 (1)

क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति

अर्थात मनुष्य [illegible] विषयों की ओर बराबर ध्यान रहने से उनमें संग या लगाव उत्पन्न होता है संग से कामना या तृष्णा होती है। कामना की पूर्ति न होने पर क्रोध होता है। क्रोध से रक्त गर्म होता है जो मस्तिष्क में उष्णता उत्पन्न कर सम्मोह करता है। सम्मोह से स्मृतिविभ्रम हो जाता है। परिणामतः वह अपने को, अपने कुल, जाति, समाज, देश और मान-मर्यादा आदि को भूल जाता है तथा तत्त्वज्ञान की याद समाप्त हो जाती है। स्मृतिभ्रंश से बुद्धि का नाश हो जाता है और अन्ततः प्रणाश अच्छी तरह नाशकारी भावरोग हो जाता है।

कहते हैं कि स्वस्थ तन में स्वस्थ मन निवास करता है। स्वस्थ तन तभी होगा जबकि वायुमण्डल दूषित न हो और परिणामस्वरूप स्वच्छ एवं स्वास्थ्यवर्धक आहार खाने को मिले। इसीलिए कहा गया है कि "जैसा अन्न वैसा मन।" अतः प्रदूषित वायुमंडल के कारण मन दूषित होगा जिस कारण दूषित मन में अत्यधिक भावरोग उत्पन्न होंगे और अन्ततोगत्वा मानसिक रोगों से पीड़ित होकर प्राणी का अंत हो जाता है।

भावरोगी अपने को बड़ा शक्तिशाली मानता है। भावरोगी की एक विशेषता यह है कि वह देखने में स्वस्थ विदित होगा, परन्तु स्वयं बेचैन रहेगा और समाज को भी बेचैन किए रहेगा। दुराग्रही और दृढ़निश्चयी होता है—

कहां कोसलाधीस द्वौ भ्राता।
धन्वी सकल लोक बिख्याता॥
कहां नल नील द्विविद सुग्रीवा।
अंगद हनुमंत बल सींवा॥
कहां विभीषनु भ्राताद्रोही।
आजु सबहि हटि मारउं ओही॥
अस कहि कठिन बान संधाने।
अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने॥[25]

---

24. श्रीमद्भागवत् गीता, अध्याय 2, श्लोक 62-63

25 मानस, लंकाकाण्ड, 49 (1-2)

निदान और उपचार

भावरोगी अल्पश्रम मे फल भरपूर चाहता है। अंततः लक्ष्यसिद्धि या प्रतिकार के लिए अवांछित कर्म करता है। कर्म का विपाक होने या अतिशय होने पर फस जाता है, तव प्रणाश को प्राप्त होता है। भावरोगी समझता है कि दूसरे न कुछ जानते हैं और न कुछ कर सकते हैं।

भावरोग के चिकित्सक की प्रज्ञा (वुद्धि) का प्रतिष्ठित होना आवश्यक है। सच्चे अर्थों में संन्यासी भावरोग की उत्तम चिकित्सा कर सकते हैं; किंतु उनका मिलना कठिन है। जहा तक सम्भव हो आप्त-शिष्ट चिकित्सकों को भावरोग की चिकित्सा में लगना चाहिए। आप्त रजोगुण एवं तमोगुण से रहित होता है, सच्चा सत्य और संदेहरहित वाक्य वोलता है। भावरोग की चिकित्सा सत्ववजय (मन पर विजय) प्रधान होती है। सरल चिकित्सा सूत्र और साधन ये हैं--

1. निदान-परिवर्जन, 2. विचार-परिवर्जन,
3. विचार-विरेचन, 4. समर्पण,
5. परिणामज्ञापन, और6. युक्त्याश्रयण

याद रखें, कोई भी चिकित्सा (दण्ड-व्यवस्था के अतिरिक्त) होने पर भावरोगी को यह अनुभव न हो कि उसके भावरोग की चिकित्सा हो रही है। यह कार्य वडे कौशल से होना चाहिए।

1. निदान-परिवर्जन : भावरोग की सूक्ष्मता को जानकर मनोवैज्ञानिक ढग से उसे कारणों से विरल करना चाहिए। स्थान-परिवर्तन अच्छा काम करता है। रोगी का अनादर, अवहेलना और अति आदर नहीं होना चाहिए। रोगी के संरक्षक का अकस्मात् अपंग या मानसरोगी हो जाना अथवा मर जाना स्वतः निदान-परिवर्जन कर देता है। महाकवि तुलसीदास जी ने सुग्रीव जैसे भावरोगी की कौशलकुमार श्रीराम द्वारा वालि-वध कराके ही उसकी चिकित्सा कराई है। मनोवैज्ञानिक ढग से सुग्रीव का मनोबल ऊंचा रखने के लिए ही श्रीराम ने प्रतिज्ञा की कि आपके रोग का निदान ही यह है--

> **सुनु सुग्रीव मारिहउं बालिहि एकहिं बान।**
> **ब्रह्म रुद्र सरनागत गएं न उबरिहिं प्रान ॥**[26]

परनारी-सेवन की भावना, अपनी वहु-वेटी से हुई तथाकथित व्याभिचार के समाचार से नष्ट हो जाती है।

---

26 मानस, किष्किंधाकाण्ड, 6 (दोहा)

2. विचार-परिवर्जन : तमोगुण को रजोगुण, रजोगुण को सत्वगुण एवं तमोगुण तथा रजोगुण दोनों को सत्वगुण से जीतना चाहिए। यहां गुण से तात्पर्य गुणोत्पन्न विचार से है। तमोगुण के अंधकार से रजोगुण के आने पर रोगी को मानसिक झटका लगता है कि मैं क्या हूँ ? तब सत्वगुणात्मक विचार-विमर्श होता है। विचार-परिवर्जन के दृष्टांत 'मानस' में वर्णित राम-परशुराम संवाद तथा बालि-वध के अन्तिम समय कहे गए शब्दों में देखे जा सकते हैं—

अब नाथ करि करूना बिलोकहु देहु जो बर मांगऊं।
जेहिं जोनि जन्मों कर्म बस तहं राम पद अनुरागऊं॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बांह सुर नर नाह आपन दास अंग कीजिए॥[27]

3. **विचार-विरेचन :** परिवर्तित विचार पुनः उमड़कर भावरोग उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए उनका विरेचन प्रायश्चित, दण्ड और विशेष सत्वगुण के उद्रेक से करना चाहिए। अहितकर या भावरोगोत्पादक विचारों के स्थान पर संन्यास और स्वास्थ्यकर विचार काम करने लगते हैं। प्रायश्चित में पछतावा एवं धार्मिक अनुष्ठान, दण्ड में शासकीय, सामाजिक, आर्थिक दण्ड आदि परिगणित होते हैं। किस प्रकार से विचार-विरेचन होगा—यह परिस्थितियों पर निर्भर है। 'रामचरितमानस' में प्रसंग आया कि जब पुरातन पर नवीनता की, प्रौढता पर यौवनता की विजय होती देखी तो परशुराम जी श्रीराम से क्षमा माँगते हुए वन को प्रस्थान कर गए। यह सब कुछ विचारों के द्वारा ही संभव हो सका—

अनुचित बहुत कहेउं अग्याता।
छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥
कहि जय जय जय रघुकुल केतु।
भृगुपति गए बनहि तप हेतु॥[28]

4. **समर्पण :** विवेकपूर्वक किसी देव, व्यक्ति, समष्टि और उद्देश्य (संकल्प) के प्रति समर्पित भावना तथा उसका चिन्तन भावरोग को नष्ट करता है। दृष्टव्य है—

---

27 मानस, किष्किधाकाण्ड, 9 (2—दोहा)

28 मानस, बालकाण्ड, 284 (3-4)

रामु सत्यसकल्प प्रभु सभा कालवस तोरि।
मैं रघुवीर सरन अव जाउं देहु जानि खोरि ॥[29]

याद रखें, समर्पण का परिणाम भावरोग-नाश तो है ही पर इससे आत्मोदय ओर आत्मनाश दोनों हो सकता है। सब कुछ समर्पण के क्रम, प्रकार और परिस्थिति पर निर्भर है। समर्पण में आस्तिकता या जी-हुजूरी होती है। यही कारण है कि भारतवर्ष ने वहुत सोच-समझकर आस्तिकता को पुण्य और नास्तिकता को पातक माना है।

5. परिणाम ज्ञापन : संत तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में वर्णन किया है कि—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निजकृत करम भाग सबु भ्राता॥[30]

अर्थात् कोई किसी को सुख-दुख देने वाला नहीं है अपितु सब अपने ही किए हुए कर्मों का फल भोगते हैं।

और भी—

जनम मरन सब दुख सुख भोगा।
हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा॥
काल करम बस होहिं गोसाईं।
बरबस राति दिवस की नाईं॥[31]

'मानस' में वर्णित उपर्युक्त प्रसंगों के आधार पर कहा जा सकता है कि मनुष्य को कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। यदि यह भावना रोगी के हृदय में घर कर जाए तो भावरोग दूर हो जाता है। परिणाम-ज्ञापन का प्रभाव उसके क्रम, प्रकार तथा काल पर निर्भर करता है। दृष्टव्य है, मंदोदरी का रावण को समझाने का प्रसंग—

काल दंड गहि काहु न मारा।
हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥
निकट काल जेहि आवत साईं।
तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं॥[32]

---

29 मानस सुन्दरकाण्ड, 41 (दोहा)

30 मानस, अयोध्याकाण्ड, 91 (2)

31 मानस, अयोध्याकाण्ड, 149 (3)

32 मानस, लंकाकाण्ड, 36 (4)

[illegible] चिकित्सा और चिकित्सक के प्रति उपेक्षा [illegible] जैसे मन्दोदरी के समझाने पर रावण का मदोद्रेक [illegible] गया था

नारि बचन सुनि बिसिख समाना।
सभां गयउ उठि होत बिहाना॥
बैठ जाइ सिंघासन फूली।
अति अभिमान त्रास सब भूली॥[33]

इसलिए, परिणामज्ञापन में शीघ्रता नहीं होनी चाहिए। रोगी के पुत्र या पत्नी आदि पर घटित अप्रिय घटनाओं का कारण उसके कर्मों पर नम्रतापूर्वक थोपने से लाभ होता है। भारतवर्ष में रावण और दुर्योधन तथा विदेशों में हिटलर, मुसोलिनी, नेपोलियन आदि प्रसिद्ध उदाहरण रखने योग्य हैं। बड़े से बड़े कुख्यात डाकू का अन्त दुःखद होता है। भावरोगी के कर्मों का परिणाम उसे और उसके प्रिय परिवार को अवश्य भुगतना पड़ेगा—यह विवेकपूर्णक ज्ञापित कर देना चाहिए। इसीलिए अहंकार का परिणाम सर्वविदित है—

इक लख पूत सवा लख नाती।
तेहि रावण घर दिया न बाती॥
(गुरुवाणी)

और भी—

संसृत मूल सूलप्रद नाना।
सकल सोक दायकअभिमाना॥[34]

6. युक्त्याश्रयण : भावरोग मूलतः मानस-व्याधि है। उसमें ज्ञान-विज्ञान-धैर्य-स्मृति-समाधि से सत्वविजय-चिकित्सा प्रभावकारी होगी। यह भी ध्यातव्य है कि काम से वायु कुपित होती है, कफ से लोभ होता है तथा कामोद्वेग (मैथुनेच्छा) से रस दूषित होता है और उसके अंतर्गत प्रभा या कान्ति दूपित होती है एवं क्रोध से पित्त कुपित होना है जिसके परिणाम-स्वरूप रक्त खौलने लगता है तथा मस्तिष्क गरम हो जाता है। आँखें लाल हो जाती हैं। काम और भय में मांसपेशियों के संकोच से रोमांच होता है। कुल मिलाकर मानस-दोप के शारीरिक-दोप एवं दुष्य प्रभावित होते हैं। ऐसी ही स्थिति रावण की हो गई जब श्री सीता जी ने रावण के कथन—

---

33. मानस, लंकाकाण्ड, 37 (1)

34 मानस, उत्तरकाण्ड, 73 (2)

तव अनुचरी करउं पन मोरा।
एक बार विलोकु मम ओरा ॥[35]

का प्रत्युत्तर दिया तो रावण ने क्रोधातुर होकर कहा—

सीता तैं मम कृत अपमाना।
कटिहाउं तव सिर कठिन कृपाना ॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी।
सुमुखि होति न त जीवन हानी ॥[36]
मास दिवस महुं कहा न माना।
तौ मैं मारवि काढ़ि कृपाना ॥[37]

वस्तुतः देखा जाए तो आजकल संसार में अधिकांश जनता प्रज्ञापराध से अधिक रोगग्रस्त हो रही है। पहले तो जन सामान्य को स्वास्थ्य-विषयक ज्ञान ही कम है, फिर ज्ञान होने पर भी तदनुकूल आचरण न करने की प्रवृत्ति स्वभाव में बसती जा रही है। बहु-जनोपयोगी नदी-कुआं, तालाबों को गंदा करना, सार्वजनिक स्थानों पर चाहे जहां थूकना या मूल-मूत्र त्यागना, घर-गली-मुहल्लों को गंदा रखना—ये सब एक प्रकार से प्रज्ञापराध ही हैं, जिनके परिणाम-स्वरूप संक्रामक रोग फैलते हैं। प्रज्ञापराध केवल व्यक्तिगत आरोग्य का नाशक नहीं, प्रत्युत वह सार्वजनिक आरोग्य को भी नष्ट कर जनपदोध्वंसक रोगों का कारण भी बनता है।

मनोविकृति उपचार

अति प्राचीनकाल में ऋषि जीवन बिताने वाले भारतीय, यायावर स्थिति में रहा करते थे, अर्थात् किसी एक स्थान पर स्थिर न होकर पर्यटक की भांति यत्र-तत्र प्रवास करते थे। उनकी आवश्यकताएं सीमित थीं। अधिक सामग्री-संग्रह करने की न अपेक्षा थी और न ही सुविधा। इस प्रकार वे संतुष्ट और शान्त मन रहा करते थे। कालान्तर में यायावर स्थिति को त्यागकर वे समूह बनाकर एक स्थान पर रहने लगे। धीरे-धीरे उनमें शालीनतापूर्वक रहने की इच्छाएं जागृत हुईं, इसीलिए उन्होंने ग्राम और नगर बसाए। परिणामतः उनमें ग्राम्यदोष उत्पन्न हो गए। परिश्रम त्यागकर आलसी हो गए और संग्रहवृत्ति से उनमें मानसिक दोष उत्पन्न होने लगे।

---

35 मानस, सुन्दरकाण्ड, 8 (3)
36 मानस, सुन्दरकाण्ड, 9 (1)
37 मानस, सुन्दरकाण्ड, 9 (5)

[illegible] मारे नागरिक जीवन यूरोप की भाँति भौतिकता प्रधान होता रहा
[illegible] हमारे यहाँ मानसिक [illegible] बढ़ रहा है। निश्चय ही भौतिक
[illegible] की एकदम उपेक्षा नहीं की जा सकती। संसार की प्रगति से अपने को
[illegible] ही अलग बनाकर तो हम रह नहीं सकते। तथापि हमें अन्धानुकरण से
[illegible] चाहिए और पाश्चात्य सभ्यता की केवल उन्हीं बातों को ग्रहण करना चाहिए
जो भारत देश की स्थिति, जलवायु एवं परंपरा तथा सामाजिक जीवन से मेल खाती
[illegible] जिससे कि हम मानसिक व्याधियों से बच सकें। मानसिक अस्वास्थ्य का मूल
कारण है मनुष्य वासनावश अन्तरात्मा के विरुद्ध आचरण करना। मन, वचन और
कर्म में भिन्नता एवं विपरीतता होती है, तब मनुष्य भीतर से अशान्त और दुःखी
रहने लगता है। अन्तरात्मा की इच्छा के प्रतिकूल, बाह्य परिस्थितिवश मनुष्य सोचता
कुछ और है, कहता कुछ और है, और करता कुछ और है। अन्तरात्मा प्रबल
आत्म-सम्पन्न है। उसके सशक्त प्रतिशोध के कारण मनुष्य के भीतर अन्तर्द्वन्द्व
चलता है, उन सभी अनैतिक कार्यों के लिए दु:खी रहना पड़ता है, जिन्हें वह आत्मा
की सदिच्छाओं के प्रतिकूल करता है। वह आन्तरिक दुःख, अशान्ति और असंतोष
ही मानसिक अस्वास्थ्य का मूल कारण है। अत्यधिक आधिभौतिकवादी और तृष्णालु
व्यक्तियों को सदा अन्तरात्मा के विपरीत कार्य करना पड़ता है, इसलिए वे भीतर
से अहर्निश दुःखी रहते हैं। उनकी आत्मिक प्रसन्नता लोप हो जाती है, जिससे
उनमें स्फूर्ति नहीं रहती और वे थकित, म्लान, अशान्त और पराजित-से रहते है।

मेरा यह व्यक्तिगत अनुभव है कि संदूषित आहार तथा प्रदूषित वातावरण
के कारण मनुष्य पहले भावरोग, तत्पश्चात मनोरोग, तदुपरांत शारीरिक रोग और
अन्ततोगत्वा मृत्यु का ग्रास बन जाता है। प्रदूषित वातावरण पारिवारिक, सामाजिक,
प्राकृतिक एवं व्यक्तिक कैसा भी क्यों न हो। अतः यह स्पष्ट है कि सभी रोगो
की जड़ मनुष्य का अपना आहार-विहार ही है। इसीलिए कहा हैं कि स्वस्थ तन
में स्वस्थ मन का और यह तभी संभव है यदि आहार-विहार स्वच्छ हो।

मन एक है। न्यायसूत्र के अनुसार अपनी एकात्मकता के कारण ही वह
एक समय में एक ही ज्ञान ग्रहण कर पाता है। आयुर्वेद के आचार्य चरक और
सुश्रुत हृदय को चेतना का स्थान कहकर उसी को मन का स्थान मानते हैं। यथा—

हृदयं चेतना स्थान मुक्तं सुश्रुत देहिनाम्।
तमोऽभिभूतेतस्मिंस्तु निद्रा विशति देहिनाम् ॥[38]

भेल-संहिता मे मन का स्थान मस्तिष्क तथा चित्त का स्थान हृदय बताया

38 सुश्रुत संहिता 1.4

गया है। आयुर्वेद साहित्य में छाती के भीतर स्थित हृदय को ही आत्मा-मानस तत्वों का स्थान माना है। अथवा प्रत्यक्ष प्रमाण से हृदय पर आघात लगने पर होने वाले परिणामों से सिद्ध किया है कि मन का स्थान हृदय है। ग्रीक तत्वेत्ता अरस्तु (Aristotle) ने आत्मा का स्थान हृदय में माना था। इसी प्रकार ग्रीक चिकित्सक गेलन (Galen) ने मस्तिष्क में मन का निवास बताया है। एक अन्य तत्ववेत्ता डेस्कार्ट्स (Descartes) तृतीय हक्-कटिका (Pineal gland) को आत्मा का स्थान मानता था। मन की स्थिति के सम्बंध में यद्यपि सभी विद्वान एकमत नही हैं परन्तु अधिकांश का मत यह है कि मन का निवास हृदय में है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी आयुर्विज्ञानियों की तरह मन को ही मानसिक रोगों का हेतु कहा है। स्वस्थ, सबल एवं निर्मल मन वाला व्यक्ति आधि-व्याधियों से सर्वथा मुक्त रहता है। भगवान भी ऐसे मन वाले व्यक्ति को पसंद करते हैं—

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ॥[39]

गोस्वामी जी का स्पष्ट मत है कि मानसिक रोगों से सभी ग्रस्त हैं। मनोरोग के दो कारण हैं—वंश परम्परा एवं स्वयं द्वारा की गई त्रुटियां। पिता का कोई रोग प्रायः पुत्र को होते देखा गया है। स्वयं की गई त्रुटियां भी मानस रोगों का कारण बनती हैं। पारिवारिक अशांति के कारण भी लोग प्रायः मानस रोगो से ग्रसित हो जाते हैं। अतः महाकवि ने मस्तिष्क के उन प्रकृतिजन्य भावों को मानसिक रोगों के रूप में वर्णित किया है जो मात्रा में अधिक हो जाने पर उग्र रोगों की परिधि में पहुंच जाते हैं। यह सिद्धांत पाश्चात्य मनश्चिकित्सा विज्ञान एवं आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र दोनों के दृष्टिकोणों से उचित है। महाकवि तुलसीदास जी ने इन मानसिक रोगों को सभी मनुष्यों में होने वाला कहा है—

सुनहु तात अब मानस रोगा।
जेहिं ते दुख पावहिं सब लोगा ॥[40]

सामान्य मनुष्यों में ही नहीं अपितु आदर्श चरित्र के सन्त और मुनियों में भी इन रोगों का होना बताया गया है किन्तु उन्हें बिरले ही पहचान पाते हैं—

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी।
सोक हरष भय प्रीति बियोगी ॥

× × ×

---

39 मानस, उत्तरकाण्ड, 87 (क)

40 मानस, उत्तरकाण्ड, 120 (14)

विषय कुपथ्य पाइ अकुरे

मुनिहु हृदय का नर बापुरे

इस प्रकार जब सभी मनुष्यों में ये रोग-दोष होते हैं तो एक प्रकार से प्रकृतिदत्त हुए। आयुर्वेद के विद्वान भी इसी कारणवश इन मानसिक दोष के भावों को सभी मनुष्यों में जन्म से ही प्राप्त होने वाला मानते हैं। अतः ये रोग प्रकृतिदत्त और जन्मजात हैं। आयुर्विज्ञान के संबंध में गोस्वामी तुलसीदास जी का अलग से कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। यह अवश्य है कि उत्तरकाण्ड में पक्षिराज गरूड़ के पूछने पर कागभुसुंडि द्वारा कुछ मानस रोगों की चर्चा की गई है। गरूड़ जी के विविध प्रश्नों में से एक प्रश्न यह भी था—

मानस रोग कहहु समुझाई।

तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥[42]

ऐसा प्रश्न करते समय गरूड़ जी ने कागभुसुंडि जी के साथ 'सर्वज्ञ' एवं 'कृपा अधिकाई' विशेषण भी लगा दिए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानस रोगों के सम्बंध में गरूड़ जी गम्भीर विवेचन सुनने के अभिलाषी थे। हो सकता है कि वे स्वयं को भी किसी मानस रोग से ग्रसित अनुभव कर रहे हों जिसके कारण 'कायिक' नहीं मानसिक रोगों की जानकारी प्राप्त करना चाहते हों। निदान (diagnosis) के पश्चात ही तो सम्यक् चिकित्सा सम्भव होती है। वैद्य न होने के कारण इस प्रश्न को कागभुसुंडि जी टाल भी सकते थे परन्तु भगवान् शंकर ने गरूड़ जी को ऐसा संकेत दे दिया था जिससे कागभुसुंडि जी की सर्वज्ञता सिद्ध होती थी। देवाधिदेव महादेव के शब्द थे

उत्तर दिसि सुन्दर गिरि नीला।

तहं रह कागभुसुंडि सुसीला॥

× × ×

जाइ सुनहु तहं हरि गुन भूरी।

होइहि मोह जनित दुख दूरी॥[43]

भगवान शिव की दृष्टि में गरूड़ जी मोहजनित व्याधि से ग्रस्त थे अतएव इस व्याधि से छुटकारा दिलाने के लिए उनको कागभुसुंडि जी के पास भेजा गया।

41. मानस, उत्तरकाण्ड, 121 (1-2)

42. मानस, उत्तरकाण्ड, 120 (4)

43. मानस, उत्तरकाण्ड, 61 (1-3)

वहा जाकर गरूड़ जी ने अत्यंत प्रेम से रामकथा सुनी। उन्हें विश्वास हो गया कि कागभुसुंडि जी अनंत ज्ञान के भंडार तथा भक्ताग्रणी हैं अतएव क्यों न इनसे मानसरोगों की भी जानकारी तथा निरोग होने के उपाय भी पूछ लिए जावें। यही कारण था कि कागभुसुंडि जी से उन्होंने उपर्युक्त प्रश्न पूछा था। काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार में से मोह समस्त व्याधियों की जड़ है। मोह के अन्तर्गत अधिक खाने का मोह, अधिक विषयभोग का मोह, अधिक सञ्चय अथवा उपार्जन का मोह आदि सम्मिलित हैं। इसके कारण ही उदर विकार, शारीरिक दुर्बलता आदि रोग उत्पन्न होते हैं। मानसिक रोगों के सम्बंध में भी मोह ही मूल कारण है किसी पदार्थ में अत्यधिक आकर्षण, उसकी अप्राप्ति में क्षोभ स्नायुविक तनाव उत्पन्न करते हैं। अभावजनित चिन्तन मानसिक रोगों का उत्पादक है।

गोस्वामी तुलसीदास जी 'मानस' में कुछ मानसिक रोगों के लक्षण, कारण तथा चिकित्साक्रम से विधिवत् वर्णन करते हैं कि सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान है। इसी मोह के संदर्भ में महाकवि ने लिखा है कि इससे विविध प्रकार के शूल (त्रिविध शूल) उत्पन्न होते हैं इन अपराधों से इतने मानसिक विकार उत्पन्न होते है जिनकी गणना नहीं की जा सकती—

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥[44]

गोस्वामी जी आयुर्वेद शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने त्रिदोष तत्व को दृष्टिगत रखकर ही मानस रोगों का विवेचन किया है। मानव शरीर के मूलाधार वात, पित्त, कफ हैं। इनकी जब तक साम्यावस्था रहती है यह शरीर स्वस्थ रहता है, विषमता होने पर शरीर रोगाक्रांत हो जाता है। हमारा मन भी काम, क्रोध, लोभ, मोह एव अहंकार से संयुक्त है। यह अपने सम्यक् बर्ताव को छोड़कर जब अनियंत्रित हो जाते हैं तो मानस रोग को जन्म देते हैं—

काम वात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा॥[45]

महाकवि ने 'काम' को वायु (वात) कहा है शेष पित्त एवं कफ दोनों गतिहीन है। 'काम' की वायु से ही उक्त दोनों गतिमान होते हैं। मानसिक शरीर में काम क्रोध एवं लोभ का प्रेरक है। काम की आपूर्ति क्रोध का कारण बनती है तथा लोभ कामोद्दीप्त करता है। क्रोध को गोस्वामी जी ने पित्त कहा है। पित्त की

---

44 मानस, उत्तरकाण्ड, 120 (15)

45 मानस, उत्तरकाण्ड, 120 (15)

प्रभीत [illegible] काय में मनुष्य का रोग्य कर देता है कफ का अपार लाभ करता [illegible] धातु व्याप्त का आकाश रूपी शोभित नहीं होती है इसी प्रकार से कफ का शमन भी कठिन है। मृत्यु आदि के समय कफ का ही प्राचुर्य हो जाता है जिसके कारण मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। मानसिक शरीर को लोभी रूपी कफ रोग करके उसे क्षरण कर देता है।

वात, पित्त एवं कफ यह तीनों अलग-अलग भी रोग उत्पन्न करने में सक्षम हैं परन्तु ये तीनों मिलकर यदि शरीर में आधिक्य को प्राप्त हों तो उससे दुःखद सन्निपात की उत्पत्ति होती है—

> प्रीति करहिं जौं तिनिउ भाई।
> उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥[46]

किसी व्यक्ति मे काम की प्रधानता होती है, किसी में लोभ एवं किसी में क्रोध का आधिक्य होता है। इन तीनों की ही किसी व्यक्ति में प्रचुरता हो तो मानसिक शरीर का पतन निश्चित है। सन्निपात विविध प्रकार के होते हैं ऐसा 'माधव निदान' में वर्णित है। उपर्युक्त तीनों धातुओं के मेल से जिस सन्निपात की सृष्टि होती है उसे 'अभिन्यास सन्निपात' कहते हैं। यह प्राणघाती होता है। सान्निपातिक अवस्था में रोगी का मानसिक सन्तुलन बिगड़ने से वह बड़बड़ाने लगता है--

> सन्यपात जल्पसि दुर्बादा।
> भएसि कालबस खल मनुजादा ॥[47]

महाकवि तुलसीदास जी ने आगे अन्य रोगों का वर्णन करते हुए 'ममता' को दाद (दद्रु) रोग बताया है। यह रोग भीगे वस्त्र पहनने से होता देखा गया है। शरीर में गोलाकार लाल रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं जिनको खुजलाने मे शान्ति मिलती है। खुजलाना बन्द करते ही जलन होने लगती है। 'ममता' का इस रोग से साम्य युक्ति-युक्त है। ममता मन का ही विकार है। परिवार-जनों अथवा बन्धु-बान्धवों के ममत्व में आवद्ध जीव उनमें अत्यंत आह्लाद का अनुभव करता है। उनका क्षणिक वियोग उसे कष्टकर भासित होता है। उसे यह अनुभव नहीं होता कि आज उसे जो लोग अत्यंत आनन्ददायी प्रतीत हो रहे हैं अन्ततः वे उसका परित्याग कर देंगे।

इसी प्रकार अन्य चर्मरोग 'कुंडु' जिसे पामा या खुजली भी कहते हैं, का

---

46. मानस, उत्तरकाण्ड, 120 (16)

47. मानस, लंकाकाण्ड, 32 (3)

साम्य ईर्ष्या से देखा गया है। खुजली में नन्हीं-नन्हीं फुन्सियां शरीर में उभर कर जलन और खाज उत्पन्न करती है। ईर्ष्या में भी व्यक्ति दूसरे की उन्नति देखकर जलता है तथा अशान्त रहता है। आगे हर्ष एवं विषाद को गहरा गले का रोग (गलगण्ड, कण्ठमाला अथवा घेघा आदि) बताकर गोस्वामी जी ने स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार अभीष्ट की प्राप्ति अथवा आशा में हर्ष एवं अभीष्ट की अप्राप्ति से निराशाजनित विषाद होता है उसी प्रकार शुभ ग्रहों के आधिक्य में मनुष्य विविध चेष्टाएं करता है। अशुभ ग्रहों के प्रभाव से दुःखी होकर वह खिन्न रहता है। इसीलिए हर्षविषाद को ग्रहों की बहुतायत कहा गया है। इच्छाओं की पूर्ति से हर्ष होना तथा अनापूर्ति से विषाद। दृष्टव्य है उदाहरण—

ममता दादु कण्डु हरषाई।
हरष बिषाद गरह बहुताई ॥[48]

दुष्टता और मन की कुटिलता ही कुष्ठ रोग (leprosy) है। पराए सुख को देखकर जो जलन होती है वह क्षय (टी.बी.) है। क्षय एक प्रसिद्ध राजरोग है। इसमें रोगी के फेफड़े खराब हो जाते हैं। धीमा ज्वर रहता है, खांसी के साथ बदबूदार कफ आता है। रोग की उग्रता में रक्त भी आता है। प्राणी इस रोग के कारण सूखकर कांटा हो जाता है और अन्त में मर जाता है।

दूसरे के सुख को देखकर मनुष्य में जो दाह (डाह) उत्पन्न होता है उसे महाकवि ने क्षय की भांति माना है। पराए व्यक्ति की श्री-समृद्धि को देखकर मनुष्य भीतर ही भीतर घुलता रहता है। यह घुलनशीलता उसे सद्गुणों से वंचित कर देती है और उसका मानसिक पतन हो जाता है। क्षय रोग के भी यही लक्षण ऊपर लिखे जा चुके हैं। दूसरे के धन-वैभव को देखकर दुष्ट लोग सदा तापित होते हैं—

खलन्ह हृदयं अति ताप बिसेषी।
जरहिं सदा पर संपत्ति देखी ॥[49]

और इसी प्रकार—

पर सुख देखि जरनि सोई छई।
कुष्ट दुष्टता मन कुटिलाई ॥[50]

कुष्ठ भयावह रोग है। आयुर्वेद में इस रोग के कारण पूर्वजन्म के महान्

---

48. मानस, उत्तरकाण्ड, 120 (17)
49. मानस, उत्तरकाण्ड, 38 (2)
50. मानस, उत्तरकाण्ड, 120 (17)

पानिक तथा विपरीत आहार विहार बनाए गए हैं अतः भोजन में ठंड और गर्म तासीर के पदार्थों का एक साथ प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि यह विपरीत-आहार कहलाता है। कुष्ठ रोग से मनुष्य कान्तिहीन हो जाता है। उसे समीप बैठाना भी अच्छा नहीं समझा जाता, दुष्ट तथा कुटिल हृदय वाले लोगों की इस रोग से समता दिखाना उचित ही है। जब भद्र जन यह जान लेते हैं कि अमुक व्यक्ति कलुषित तथा ऊपर से कुछ और हृदय से कुछ है तो वे उस व्यक्ति को पास बैठाना तो दूर उसकी परछाईं से भी घृणा करने लगते हैं। दुष्ट व्यक्ति सर्वत्र निरादर के ही पात्र समझे जाते हैं और उनका वैसा ही तिरस्कार किया जाता है जैसा कुष्ठ रोगी का होता है।

अहंकार अत्यंत दुःख देने वाले डमरू (गठिया) रोग है। 'डमरूआ' बृहत् हिन्दी कोश में 'डवरूआ' अथवा 'डंवरूआ' भी लिखा गया है। यह वात् व्याधि है जिसके कारण शरीर की गांठों में दर्द होता है। इसे गठिया रोग भी कहते हैं। गठिया रोग में मनुष्य चलने-फिरने से लाचार हो जाता है। वह न तो भली प्रकार खड़ा हो सकता है और न ही बोल सकता है। बिल्कुल अशक्त होकर पड़ जाता है या पड़ा रहता है। अहंकारी व्यक्ति का स्वभाव भी गठिया रोग से पीड़ित व्यक्ति जैसा ही होता है। वह दर्द के कारण न तो कहीं आना-जाना पसन्द करता है और न बोलना तथा बातचीत करना। अभिमान में डूबा वह निरंतर अपने निवास में ही पड़ा रहता है। प्रस्तुत है 'मानस' का यह प्रसंग—

अहंकार अति दुखद डमरूआ।
दंभ कपट मद मान नेहरूआ ।।[51]

इसी प्रकार दम्भ, कपट, मद और मान नसों का रोग 'नेहरूआ' है। 'नेहरूआ' गरम देश के लोगों को होने वाला एक रोग है। इसे 'नारू' अथवा 'नहरूया' भी कहा जाता है। कण्ठ के नीचे के भाग मे फुंसियां हो जाती हैं और उनसे डोरे की भांति की सफेद पतली चीज़ निकलती रहती है। दूषित जल के सेवन से भी इस रोग की उत्पत्ति होती है। दम्भ, कपट, मन, मान आदि मन के विकारों की इस रोग से तुलना की गई है।

महाकवि तुलसीदास जी ने प्रदूषण से उत्पन्न एक अन्य रोग का भी वर्णन किया है। दृष्टव्य है—

तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी।
त्रिबिधि ईषना तरून तिजारी ।।[52]

---

51 मानस, उत्तरकाण्ड, 120 (18)

52 मानस, उत्तरकाण्ड, 120 (18)

तृष्णा बड़ा भारी पेट के फूलने (उदरवृद्धि) वाला रोग है। इसको आयुर्वेद मे जलोदर रोग भी कहते हैं। इस रोग में पेट में पानी भर जाता है। धीरे-धीरे समस्त शरीर मे इसका प्रकोप बढ़ता है। दुर्बलता के आधिक्य से उठने-बैठने की शक्ति भी चली जाती है। तृष्णा से इस रोग का मेल ठीक उतरता है। विषय प्राप्ति की प्यास निरंतर उसी प्रकार बढ़ती रहती है जिस प्रकार जलोदर रोग से पेट बढ़ता है। तीन प्रकार की इच्छाएं (पुत्र, धन, मान) प्रबल तिजारी है। अर्थात पुत्रेषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा ये तीनों नवीन तिजारी रोग के समान हैं। तिजारी रोग में ठंड लगकर तेज ज्वर चढ़ता है। स्त्री, पुत्र एव धन की नित नई चाह का वेग भी इसी रोग की तरह है। तिजारी का रोग जल्दी शान्त नहीं होता। हर तीसर दिन इसका ज्वर नवीन वेग से चढ़ कर रोगी को दुःखी करता रहता है। इसको ग्रामीण भाषा में लोग 'तेइया' बुखार भी कहते हैं। उपर्युक्त तीनों इच्छाओं के कारण मनुष्य को कभी शान्ति नहीं मिलती। दिन-प्रतिदिन उसकी इच्छाएं बढ़ती ही जाती है।

जुग विधि ज्वर मत्सर अबिबेका।
कहं लगि कहौं कुरोग अनेका ॥[53]

तिजारी ज्वर के अतिरिक्त दो अन्य प्रकार के ज्वर भी हैं। संत तुलसीदास जी स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मत्सर और अविवेक दो प्रकार के भी ज्वर हैं। ज्वर शरीर में अधिक ताप उत्पन्न करते हैं जिसके कारण रोगी बेसुध हो जाता है। मुख का स्वाद बिगड़ जाने से उसे भोजन से अरुचि हो जाती है। मत्सर और अविवेक मानसिक ज्वर के समान हैं जिनके कारण मनुष्य अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। कहां तक कहा जाए न जाने कितने प्रकार के दुष्ट रोग हैं जिनके कारण प्राणी कष्ट भोगता रहता है।

आयुर्वेद के अनुसार जल, तेज और वायु जैसे जगत् को धारण करते हैं, उसी प्रकार वात् (वायु), पित्त (तेज) तथा कफ् (जल-तत्त्व) प्राणी की देह को धारण करते हैं—

विसर्गादानविक्षेपैः सोम सूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद देहे कफ पित्तानिलास्तथा ॥[54]

---

53 मानस, उत्तरकाण्ड, 120 (19)

54 सुश्रुत संहिता, 21/8

[illegible] के सम्बन्ध में [illegible] का वर्णन किया गया [illegible] शब्द आकाश-महाभूत गुण है। आकाश अतिसूक्ष्म तत्व है और वायु की अपेक्षा अति दिव्यगुण सम्पन्न है। नाम-संकीर्तन से जो ध्वनि-तरंगें (Sound waves) उत्पन्न होती हैं, उनसे आकाश-महाभूत पर दिव्य प्रभाव पड़ता है। आकाश के अति सामिप्य होने से वायु तत्व तरंग भगवन्नाम संकीर्तन से प्रभावित होता है। भगवन्नाम संकीर्तन की दिव्य ध्वनि के प्रभाव से आकाश और वायु महाभूतों में ही नहीं अपितु समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त तमोगुण और रजोगुण स्वतः ही शांत होने लगते हैं तथा सत्वगुण का अचिन्त्य प्रभाव व्याप्त हो जाता है जैसे सूर्य के प्रकाश से स्वतः ही अन्धकार विलुप्त हो जाता है। इस प्रकार भगवन्नाम-संकीर्तन से जनपदोद्ध्वंस (महामारी) के हेतु वायु, जल, देश और काल की शुद्धि होती है। परिणाम-स्वरूप पर्यावरण की शुद्धि होती है। भगवन्नाम-संकीर्तन से महामारी के मूल कारण अधर्म का भी नाश हो जाता है। कविकुल चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास जी ने संकीर्तन को कलियुग में कल्याण का एकमात्र उपाय बतलाया है—

कलिजुग केवल हरिगुन गाहा।
गावत नर पावहि भव थाहा॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना।
एक आधार राम गुन गाना॥[55]
चहुं जुग चहुं श्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥[56]

दास-भक्ति के आचार्य श्री हनुमान जी रोग और उसकी औषध के सम्बंध में अपने स्वामी श्रीराम से स्पष्ट कहते हैं—

कह हनुमंत बिपत्ति प्रभु सोई।
जब तब सुमिरन भजन न होई॥[57]

श्री हनुमान जी के मतानुसार श्रीराम का सुमिरन भजन न होना ही रोग है। आयुर्वेद के आचार्य विजयरक्षित ने टीका करते हुए रोग की संक्षिप्त चिकित्सा का सूत्र बतलाया है—"संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम्" अर्थात् रोगोत्पादक कारण का त्यागना ही संक्षिप्त चिकित्सा है। विपत्ति को दूर करने की एक मात्र

55. मानस, उत्तरकाण्ड, 102 (2-3)

56. मानस, बालकाण्ड, 21 (4)

57. मानस, सुन्दरकाण्ड, 32 (2)

आपध सुमिरन भजन (सकीर्तन) करना ही है—

'रा' अक्षर के कहत ही निकसत पाप पहार।
पुनि भीतर आवत नहिं देत 'म' कार किंवार॥

अत: न केवल शब्द 'राम' के कहने से, प्राणायाम की स्थिति पैदा होती है बल्कि 'ओउम्', 'शिव', 'खुदा', 'यीशू', 'GOD', 'वाहे गुरु' विभिन्न धर्मों के ईश्वर नामों में भी इसी तरह वैज्ञानिकता है। उपर्युक्त सभी शब्दों के उच्चारण में श्वास के द्वारा कार्बनडाई ऑक्साइड रूप में पाप बाहर निकल जाता है और फिर शरीर में श्वास के द्वारा कार्बनडाई ऑक्साइड गैस न आकर शुद्ध वायु (Oxygen) ही प्रवेश करती है। यही कारण है कि धर्मों के उच्च स्वर हैं—'हर हर महादेव', 'बोले सो निहाल', 'अल्लाह बिस्मिल्लाह' आदि। उच्च स्वर में संकीर्तन करने से समस्त पाप निकल कर नष्ट हो जाते हैं तथा प्राणायाम सहज रूप से हो जाता है और शुद्ध प्राणवायु तन को शुद्ध कर देता है। ताल-स्वर की एकता होने पर संकीर्तन से दिव्य-चमत्कार अश्रु, पुलक आदि होकर प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। जिससे न केवल मानस रोग अपितु समस्त प्रकार के रोगों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार संकीर्तन की तन्मयता, एकाग्रता, नियमितता, श्रद्धा निष्ठा एवं दृढ़ विश्वास मनुष्य की काया में रहने वाले पशु एवं पिशाच की तथाकथित प्रगतिशीलता की आवाज में छिपी बर्बरता को अनावृत कर दुर्व्यसन, छल, दुष्टता तथा धृष्टता से मुक्ति पाने के लिए विवश कर देता है।

आयुर्वेदीय साहित्य में रोगों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया गया है—दृष्टापचारज एवं अदृष्टापचारज। इस जन्म में किए गए कर्मो से उत्पन्न रोग दृष्टापचारज तथा पूर्वजन्मकृत कर्मों के कारण उत्पन्न रोग अदृष्टापचारज कहलाते है। इस प्रकार सभी सांसारिक सुख शुभकर्मो के कारण तथा दुःख अशुभ-कर्मो के कारण प्राप्त होते हैं। इसीलिए संत तुलसीदास जी के कर्मों के अनुसार ही फल प्राप्ति की बात कही है—

सुभ और असुभ करम अनुहारी।
ईसु देइ फलु हृदयं बिचारी॥
करइ जो करम पाव फल सोई।
निगम नीति असि कह सबु कोई॥[58]

शरीर भी दो प्रकार के होते हैं—स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर। प्रस्तुत है महाकवि के विचार—

---

58 मानस, अयोध्याकाण्ड, 76 (4)

छिति जल पावक गगन समीरा

पंच रचित अति अधम सरीरा

प्रगट सो तनु तव आगे सोवा

जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा ॥

उपजा ग्यान चरन तब लागी।

लीन्हेसि परम भगति बर मागी ॥[59]

सूक्ष्म शरीर पूर्वजन्मकृत शुभाशुभ कर्मों को पुनर्जन्म होने पर स्थूल शरीर में ला देते हैं तथा शुभाशुभ फलों को भोगते हैं। पूर्वजन्मकृत कर्मों को दैव या प्रारब्ध तथा इस जन्म के कर्मों को पुरुषार्थ या प्रयत्न कहा जाता है। आयुर्वेदानुसार जन्मान्तर में किए हुए पाप जीवों को रोग के रूप में पीड़ित करते हैं, उनका शमन औषध, दान, जप, देवार्चन (संकीर्तन) एवं हवन से होता है। इस चिकित्सा में दैव की शान्ति एवं निराकरण-हेतु मणि, मंत्र, जप, कीर्तन, हवन, मंगलकर्म तथा यम-नियमों का प्रयोग किया जाता है। संकीर्तन शब्द देवोपासना से संबंधित विभिन्न क्रियाओं को निरूपित करता है। इसमें स्तुति, नामोच्चारण, गुणगान, जप, भजन, अर्चन, कथा, सूक्तपाठ, स्वस्तिवाचनादि का समावेश है। उपर्युक्त माध्यम से किसी भी साधन से किया गया ईश्वराराधन संकीर्तन कहलाता है। संकीर्तन से स्वास्थ्य का उन्नयन तथा रोग का भी निराकरण होता है।

आयुर्वेद-वाङमय में पद-पद पर देवोपासना द्वारा रोग-मुक्ति प्रतिपादित की गई है। चरकसंहिता की टीका में आचार्य चक्रपाणिदत्त ने अधिकारपूर्वक उद्घोषित किया है कि अच्युत, अनन्त और गोविन्द-नाम का उच्चारण सर्वरोगों का विनाश करता है—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।

नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

इसके अतिरिक्त चरकसंहिता में ज्वर-चिकित्सा के प्रसंग में विष्णु सहस्रनाम पाठ को सर्वज्वरहर निरूपित किया गया है—

स्तुवन् नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति।

यजुर्वेद में सूक्तपाठ और ईश्वरोपासना से मनोरोगों के कारण भूत रज् एव तम् दोष का निवारण उल्लिखित है। विषमज्वर (मलेरिया) दूर करने के लिए शिव-पार्वती की पूजा को औषध रूप निगदित किया है। महर्षि सुश्रुत ने ग्रहबाधा में नाम-जप तथा अपस्मार (epilepsy) में शिवपूजन को रोगापहर्ता सिद्ध किया

---

59 मानस, किष्किंधाकाण्ड, 10 (2-3)

है। काश्यपसंहिता में शिशुओं को भूतावेश से बचाने-हेतु विभिन्न जप करने का आदेश दिया है। आचार्य बाग्भट ने अपने ग्रन्थ 'अष्टांग हृदय' में स्पष्ट किया है कि भगवान शिव और गणेश की आराधना से कुष्ठ रोग दूर होते हैं।

महर्षि आत्रेय के मतानुसार स्वस्तिवाचन और मन्त्रजप से उन्माद तथा अपस्मार रोग की निवृत्ति होती है। कुछ रोग जनपदोद्ध्वंस (महामारी) के रूप मे फैलते हैं। फलतः असंख्य प्राणी काल के गाल में समाहित हो जाते हैं। महर्षि आत्रेय ने उसका कारण वायु, जल, देश और काल की विकृति बतलाया है। इन चारों की विकृति को दूर करने के लिए महर्षि ने सत्कथा, देवार्चन तथा जपादिक सुकृत्यों को प्रशस्त कहा है। आयुर्वेदतर सभी धार्मिक ग्रन्थों में भी संकीर्तन से सर्वरोगों का विनष्ट होना प्रतिपादित किया गया है। राधासहस्रनाम का पठन हिचकी, वमन, मूत्ररोग, ज्वर, अतिसार और शूल का शमन करता है—

हिक्कारोगं तथा छर्दिं मूत्रकृच्छ्रं तथा ज्वरम्।
अतिसारं तथा शूलं शमयेत् पठनादपि॥

(रूद्रयामल)

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित गोपीगीत का पाठ हृदय सम्बन्धी रोगों को दूर करता है—'हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः'। गरूड़ध्वज के नाम का कीर्तन तथा श्रवण सर्पदंश, वृश्चिकदंश, ज्वर और शिरोरोग का शमन करता है। विषविकार दूर करने में विभिन्न मन्त्रों का चामत्कारिक प्रभाव लोकसिद्ध है।

रोगों के निदान एवं उपचार के विषय में महाकवि तुलसीदास जी का विचार है कि एक ही रोग के कारण जब प्राणी मर जाते हैं फिर ये तो बहुत से असाध्य रोग हैं जो जीव को निरंतर कष्ट देते रहते हैं अतएव ऐसी दशा में शरीर को शान्ति किस प्रकार मिल सकती है। इन असाध्य रोगों को दूर करने के कितने ही उपाय हैं जो 'मानस' में वर्णित हैं—

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥[60]

किन्तु महाकवि का विचार है कि इन उपचारों में भी मानसिक रोगों से छुटकारा पूर्णतया नहीं मिल पाता। अतः सर्वोत्तम उपाय एवं परिणाम श्रीराम की भक्ति एवं आस्था ही है। इन रोगों से छुटकारा तभी मिल सकता है यदि चिकित्सक के वचनों में विश्वास रखकर संयम (पथ्य) किया जाए और श्रद्धा से अनुपान किया जाए—

---

60 मानस, उत्तरकाण्ड, 121 (ख)

सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा।
संजम यह न विषय के आसा॥
एहि विधि भलेहिं सो रोग नसाहीं।
नाहिं तो जतन कोटि नहिं जाहीं॥[61]

वर्तमान भौतिक जीवन के ऊहापोह में संकीर्तन का प्रयोग मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का काम करता है। पाश्चात्य वैज्ञानिक निश्चित शब्दों की बार-बार कर्णेन्द्रिय में प्रविष्ट करके कुछ रोगों का शमन करने में सक्षम सिद्ध हुए हैं। भगवन्नाम संकीर्तन समग्र शब्दों का सतत उच्चारण विषाणुग्रस्त रक्त के निर्विषीकरण में सहायक पाया गया है। निरंतर अखण्ड कीर्तन देहधारी के रोम-रोम, अणु परमाणु में नवीन ओजस्, वर्चस का संचार कर समस्त कोशिकाओं को बदल देता है। यही कारण है कि संसार के अनेक धर्मों और राष्ट्रों में संकीर्तन का प्रचलन है।

अक्षर अनन्त है। स्वर शिव है। शब्द ब्रह्म है। बार-बार उसी शब्द की पुनरावृत्ति वायुमंडल की ध्वनितरंगों में विद्युतीय कम्पन पैदा कर विविध प्रकाशपूर्ण रंगों की सृष्टि करती है। मुख से निकली कोई भी ध्वनि, शब्द या विचार कभी नष्ट नहीं होता। इसीलिए कहा गया है—

शब्द सम्हारे बोलिए शब्द के हाथ न पांव।
एक शब्द करे औषधी एक शब्द करे घाव॥

मानव धर्म-शास्त्र का निर्देश है—

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्॥"

कीर्तन में गाए जाने वाले शब्द और विचार अनन्तकाल से अनेक आत्माओं को प्रेरणा एवं प्रकाश देकर जीवन्मुक्ति की ओर बढ़ाते हैं। शब्द और विचारों को सूक्ष्म से स्थूल करना तथा जीवन में आवश्यक परिवर्तन कर सकना असम्भव नहीं है; क्योंकि बीज-मन्त्र के रूप में ये शब्द साक्षात् परमात्मा का साक्षात्कार कर लघु से विराट और जीव से ब्रह्म बनने की शक्ति प्रदान करते हैं।

उलटा नाम जपत जगु जाना।
बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥[62]

संकीर्तन के अलौकिक प्रभाव से दैहिक, दैविक और भौतिक संताप नष्ट होकर सुख, शान्ति तथा समृद्धि की अभिवृद्धि होती है। यह वैज्ञानिक सत्य है।

---

61. मानस, उत्तरकाण्ड, 121 (3-4)

62. मानस, अयोध्याकाण्ड, 193 (4)

इसीलिए ऐसे स्वच्छ वातावरणमय राज्य को राम-राज्य की संज्ञा दी गई है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि व्यापा॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा।
सब सुन्दर सब बिरूज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं काउ अबुध न लच्छनहीना॥[63]

अतः यह स्वाभाविक है कि जिस देश का आहार-विहार अहितकर अस्वास्थ्यकर, रोगजनित एवं हानिकर होगा वहां का वायुमंडल (जल, थल, वायु) अवश्य ही प्रदूषित होगा। यद्यपि इस प्रदूषणता के अनेक कारण तथा कारक हो सकते हैं—यथा रसायन, धूलि, शोर, रेडियोधर्मिता, सघन आबादी, मशीनीकृत उद्योग आदि किन्तु अन्ततोगत्वा इन सभी का प्रभाव पड़ता है प्राणी और उसकी भावी पीढी के स्वास्थ्य पर। जिसके फलस्वरूप मन और तन पीड़ा पाता है। इसीलिए उत्तम राज्य की परिभाषा संत तुलसीदास जी ने दी है—

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥[64]

और भ्रष्ट राज्य की भर्त्सना की है—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥[65]

अतः शासक का यह धर्म, कर्म एवं कर्त्तव्य है कि वह संतुलित पर्यावरण बनाए रखने के लिए परिस्थिति विज्ञान (ecology) के अनुसार पूर्णतया कार्यान्वित करे और अपनी जनता को इसके प्रति प्रोत्साहित करे।

रामचरितमानस में प्रसंग आया है कि प्राणी के शरीर की रचना में मुख्य तत्व पांच हैं अर्थात् पांच तत्वों से मिलकर हमारा शरीर बना है—

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा॥[66]

ये पांच तत्व हैं—जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश। इन सभी के अपने-अपने गुण होते हैं जो शरीर को नियंत्रित किए रहते हैं। पृथ्वी का लक्षण

---

63 मानस, उत्तरकाण्ड, 20 (1-3)
64 मानस, उत्तरकाण्ड, 21 (दोहा)
65 मानस, अयोध्याकाण्ड, 70 (3)
66 मानस, किष्किंधाकाण्ड, 10 (2)

धारण करना है, जल का लक्षण संग्रह करना, तेज (अग्नि) का लक्षण पाक या पाचन है, वायु का गुण व्यूह तथा आकाश का गुणधर्म अप्रतिघात है। योगी पृथ्वी आदि पंचभूतों (जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश) में से जिस किसी भूत का ही आत्मरूप में अनुसंधान करता है, उसी भूत की कर्म सिद्धि हो जाती है—

राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा।
थल बिहीन तरु कबहुं कि जामा॥[67]

यद्यपि आज का विज्ञान हृदय, गुर्दे, यकृत, मस्तिष्क तथा फेफड़ों आदि का प्रत्यारोपण करने में तो सफल है किन्तु सिर के स्थान पर दूसरा सिर बदलने में अभी सफल नहीं हो सका है। महाकवि तुलसीदास जी ने 'मानस' में शल्य चिकित्सा के विषय में वर्णन किया है कि उस समय शल्यचिकित्सा इतनी विकसित थी कि सिर कटने पर दूसरा सिर क्षण भर में लगा दिया जाता था—

काटतहीं पुनि भए नवीने।
राम बहोरि भुजा सिर छीने॥
प्रभु बहु बार बाहु सिर हए।
कटत झटिति पुनि नूतन भए॥[68]

अन्यत्र शल्यचिकित्सा का उदाहरण—

जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं।
मातु चिराव कठिन की नाईं॥[69]

यहां तक कि सम्पूर्ण शरीर के रूप-परिवर्तन में भी त्रेतायुग के वैज्ञानिक पारंगत थे—

लंकापति कपीस नल नीला।
जामवंत अंगद सुभसीला॥
हनुमदादि सब बानर बीरा।
धरे मनोहर मनुज सरीरा॥[70]

महाकवि तुलसीदास जी ने सर्पदंशन के प्रभाव का भी उत्तम ढंग से वर्णन किया है। विष चढ़ने से शरीर में लहर सी उत्पन्न होती रहती है—

संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता।
दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता॥[71]

---

67. मानस, उत्तरकाण्ड, 89 (1)
68. मानस, लंकाकाण्ड, 91 (6)
69. मानस, उत्तरकाण्ड, 73 (4)
70. मानस, उत्तरकाण्ड, 7 (1)
71. मानस, उत्तरकाण्ड, 92 (3)

विषों के प्रभाव के साथ ही गोस्वामी जी अमृत-प्रभाव से भी अनभिज्ञ नहीं थे—

पावा परम तत्व जनु जोगीं।
अमृतु लहेउ जन संतत रोगीं ॥[72]

स्वास्थ्य प्रकरण पर सम्मति देते हुए संत तुलसीदास जी कहते हैं कि रोगी पुरुष स्नान करने से डरता है और विशेषकर जब उसे ज्वर सता रहा हो अथवा कष्ट के कारण आंखों में नींद का नशा हो—

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई।
जातहि नींद जुड़ाई होई ॥
जड़ता जाड़ विषम उर लागा।
गएहुं न मज्जन पाव अभागा ॥[73]

यदि वह स्नान करने में समर्थ हो जाता है तो समझो कि उसका दुःख (ज्वर) दूर हो गया—

सोइ सादर सर मज्जनु करई।
महा घोर त्रयताप न जरई ॥[74]

जिन्हें वायु का रोग हो गया हो, जो भूत के वश हो गए हों और जो नशे में चूर हैं, ऐसे लोग विचार कर वचन नहीं बोलते। जिन्होंने महामोह रूपी मदिरा पी रखी है, उनकी बात पर ध्यान नहीं देना चाहिए—

बातुल भूत बिबस मतवारे।
ते नहिं बोलहिं बचन विचारे ॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना।
तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना ॥[75]

सम्पूर्ण भवरोगों के परिवार को नाश करने वाला अमरमूल (संजीवनी जड़ी) का सुन्दर चूर्ण होता है—

अमिय मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भव रूज परिवारू ॥[76]

रामचरितमानस में संत तुलसीदास जी ने वर्णांध का भी वर्णन किया है।

---

72. मानस, बालकाण्ड, 319 (3)
73. मानस, बालकाण्ड, 38 (1)
74. मानस, बालकाण्ड, 38 (3)
75. मानस, बालकाण्ड, 114 (4)
76. मानस, बालकाण्ड, 5 (1)

इस नेत्र दोष के अन्तर्गत प्राणी रंग को पहिचानने में कष्ट अनुभव करता है। यदि सूर्य पूर्व में उदय हो रहा है कि दृष्टिभ्रम के कारण उसकी पहचान पच्छिम में सूर्य डूबने का करेगा। ध्यातव्य है 'मानस' का एक प्रसंग—

> नयन दोष जा कहं जब होई।
> पीत बरन ससि कहुं कह सोई ॥
> जब जहि दिसि भ्रम होइ खगेसा।
> सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा ॥[77]

नेत्र दोषों को दूर करने के लिए, आंखों में नयनामृत-अंजन का प्रयोग किया जाता है—

> गुरु पद रज मृदु मंगल अंजन।
> नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन ॥[78]

वनवास को जाते समय विश्वामित्र ऋषि ने श्रीराम को ऐसी जड़ी-बूटी के विषय में जानकारी दी जिससे न भूख-प्यास लगे और शरीर में निर्बलता भी न आने पाए। वनस्पतियों का वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि चिरचिटा के बीजों की यदि खीर बना के खाई जाए तो इसके सेवन से भूख-प्यास बिल्कुल नहीं लगती—

> जाते लाग न छुधा पिपासा।
> अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ॥[79]

'मानस' में प्रसंग आया है कि पाचन-संस्थान भी आयुर्विज्ञान में सुगम एवं परम सुख देने वाली प्रणाली है जिसके द्वारा भोजन सुगमता से पच जाता है—

> भोजन करिअ तृषिति हित लागी।
> जिमि सो असन पचवै जठरागी ॥[80]

रूहानी उपचार

रूहानी चिकित्सा (Spiritual healing) पद्धति पर लोगों को सहसा विश्वास नहीं होता। लेकिन अनुभवों ने यह सिद्ध कर दिया है कि रूहानी चिकित्सा से लाभ होता है। भारत में रूहानी चिकित्सकों में बम्बई के डॉक्टर रमाकांत केनी का नाम

---

77. मानस, उत्तरकाण्ड, 72 (2)
78. मानस, बालकाण्ड, 1 (1)
79. मानस, बालकाण्ड, 208 (4)
80. मानस, उत्तरकाण्ड, 118 (5)

उल्लेखनीय है। इस पद्धति में रोगी के रोगग्रस्त भाग को चिकित्सक स्पर्श करते है और रोग उन्मूलन की ऊर्जा तरंगें प्रवाहित होने लगती हैं और इस प्रकार रोग दूर हो जाता है। किन्तु क्षणिक विचार किया जाए तो यह विज्ञान आजकल यूरोप म प्रचलित वशीकरण-तंत्र (mesmerism) का ही अग है जिसके जनक मैसमर थ। भारत के ऋषि-मुनि इस विद्या में पहले ही प्रवीण थे। दृष्टव्य है संसार की प्राचीनतम पुस्तक अथर्ववेद में आया हुआ प्रसंग–

अयं में हस्तो भगवानयं में भगवत्तरः।
अयं में विश्वाभेषजो यं शिवभिमर्श नः ॥[81]

ओर भी–

दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुंवष्मि ते।[82]

अन्यत्र स्थल पर अर्थर्ववेद में स्पर्श मात्र से रोगों को दूर करने का भी वर्णन ध्यातव्य है–

हस्ताभ्यां दशशाखम्यां जिह्वा वाचःपुरोगवी,
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वामि मृशामसि।[83]

(भाव है कि ऐ रोगी ! मेरा यह हाथ सौभाग्यदायक है और मेरा यह दूसरा हाथ उससे भी अधिक लाभकारी है। मेरा यह हाथ समस्त रोगों को शमन करने वाला है और यह दूसरा हाथ सुख-शान्ति के स्पर्श वाला है)।

हस्त स्पर्श के द्वारा शरीर की पीड़ा दूर हो जाती है और शरीर का वह अग बज्र के समान कठोर हो जाता है। महाकवि तुलसीदास जी भी इस चिकित्सा पद्धति से भिज्ञ थे–

कर परसा सुग्रीव सरीरा।
तनु भा कुलिस गई सब पीरा ॥[84]

ओर भी–

कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ।
दीनदयाल सकल दुख हरेऊ ॥[85]

साधारणतया यह देखा गया कि यदि किसी वयोवृद्ध के सम्मुख विनम्र होकर पणाम किया जाता है अथवा कहीं दूर से चलकर आते हैं तो वयोवृद्ध आशीर्वाद

---

81 अथर्ववेद, 4/13-6
82 अथर्ववेद, 4/13-5
83 अथर्ववेद, 4/13-7
84 मानस, किष्किंधाकाण्ड, 7 (3)
85 मानस, उत्तरकाण्ड, 82 (2)

रूप से सिर पर [illegible] थकान दूर होकर मानसिक शांति मिलती है

प्राकृतिक उपचार

इन असंख्य रोग और इनके उपचार तथा निदान का 'रामायण काल' में वर्णन होना स्वाभाविक है कि उस समय अश्विनी कुमार जैसे योग्य चिकित्सक का अवतीर्ण होना कोई आश्चर्य नहीं और लंका में सुषेण जैसे वैद्य द्वारा ही लक्ष्मण मूर्छा को दूर करने के लिए संजीवनी बूटी सुझायी गई थी—

> **सद्गुर ग्यान बिराग जोग के।**
> **बिबुध बैद भव भीम रोग के॥**
> **जामवंत कह बैद सुषैना।**
> **लंका रहइ को पठई लेना॥**[86]

हनुमान जी में जहां अनेक गुण थे वहां इनमें एक दोष भी था—विस्मृति दोष। ये बात को बहुत ही शीघ्र भूल जाते थे। रामायण में इनके भुलक्कडपन के कई प्रसंग हैं। वे बूटियों की पहचान ही भूल गए। अतः उन्होंने जड़-सहित अनेक चमकने वाली बूटियों को उखाड़ लिया। ये बूटियां थी—मरणासन्न व्यक्ति को जिन्दा करने वाली 'संजीवनी'; तीरों के घावों को अच्छा करने वाली 'विशल्यकरणी'; घाव भरने के उपरांत त्वचा को जोड़कर एक रूप करने वाली और हड्डी आदि को जोड़ने वाली 'संधानकरणी'। इन जड़ी-बूटियों में यह गुण है कि केवल रात्री में ही इनको मसलने से रस निकाला जा सकता है और सूर्योदय के पश्चात् ये मुरझा जाती है वानर जाति के सुषैण वैद्य ने कहा था कि इन चारो वनस्पतियों का अच्छा रस निकल सके इसके लिए आवश्यक है कि उन्हें सूर्योदय पूर्व लाना होगा। यह सर्वविदित तथ्य है कि औदम्बर (ऊपर) की टहनियों से सूर्योदय से पूर्व ही दूध निकाला जा सकता है, बाद में नहीं। हनुमान जी को द्रोणागिरि पहुचने तक सांयकाल हो गया, अब वनस्पति को ढूंढ निकालना असम्भव था, सूर्योदय तक रुकना भी सम्भव नहीं था। अतः हनुमान जी, जिधर की ओर से वनस्पति लाने को सुषैण वैद्य ने बतलाया था, वहां की बहुत सी वनस्पति उखाड कर ले आए। महाकवि तुलसीदास जी ने वर्णन किया है कि—

---

86. मानस, लकाकाण्ड, 54 (4)

देखा सैल न औषध चीन्हा।
सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ॥[87]

इस प्रसंग में मैं यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि हनुमान जी वास्तव में पर्वत को उठाकर नहीं लाए थे बल्कि उपर्युक्त औषधियों के बोझ को लेकर आए थ क्योंकि पर्वत का उखाड़ना शारीरिक शक्ति के द्वारा लाना भी असम्भव है। अत जब हनुमान जी सुषेण वैद्य द्वारा बताई औषधियो की पहचान भूल गए तब उन्होन वहा से अनेक प्रकार की बहुत सारी जड़ी-बूटियां उखाड़ ली और उन्हें ले जाए। यहा कवि ने बात को सीधे-सादे शब्दों (अभिधावृति) से न कहकर लक्षणावृति से कहा है। घर में बच्चे शोर कर रहे हों तो कहते हैं--"अरे तुम लोगों ने तो घर को ही सिर पर उठा रखा है।" वस्तुतः घर सिर पर तो नहीं होता। ऐसी ही बात यहां पर है। अतः हनुमान जी पर्वत-शिखर नहीं अपितु औषधि-समूह उठाकर लाए थे।

सामान्यतया प्रत्येक हिन्दू परिवार में तुलसी का पौधा पाया जाता है। इसका उपयोग अधिकतर सर्दी के प्रभाव को शरीर से दूर करने, ज्वर हटाने, फ्लू को दूर भगाने तथा अन्य वर्षा-ऋतु एवं शरद्-ऋतु की सामयिक बीमारियों को दूर करने में किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसकी सुगंध से न केवल मच्छर भाग जाते हैं अपितु जिस घर में तुलसी का पौधा होता है वहां पर सर्प का निवास नही होता और यही कारण है हमारे ऋषि-मुनि इस पौधे को नदी-तटों, मन्दिरो, उपवनों आदि सार्वजनिक स्थानों पर उगाते थे--

तीर तीर तुलसिका सुहाई।
बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ॥[88]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महाकवि ने जिन मानस-रोगों का वर्णन किया है वे मनुष्य की प्रकृति एवं जीवन के मूलभूत दोषपूर्ण मनोभाव है। जीवन के सुख-समृद्धि एव सब प्रकार के अभ्युदय के लिए इनका नष्ट होना आवश्यक है, अन्यथा ये रोग उग्र रूप में उमड़कर मनुष्य को सदा के लिए दुखी बना देते है। दीर्घमानस-रोग मनुष्य के सांसारिक-कर्मों से उत्पन्न होते हैं। अतः उनका उपचार भी सांसारिक एवं सरल है किन्तु जन्म-जात प्रकृति जन्य विकारों एवं दोषो को दूर करना बडा दुष्कर है। इसीलिए तुलसीदास जी ने भक्तियोग को 'मानस-रोग' का अमोघ उपचार बतलाया क्योंकि भक्तियोग का आश्रय लेने पर मनुष्य की

---

87 मानस, लंकाकाण्ड, 57 (4)

88 मानस, उत्तरकाण्ड, 28 (3)

आधारभूत प्रभाव बदल जाता है किन्तु यदि व्यक्ति किसी एकान्त और शान्त वातावरण में कुछ [illegible] ध्यान [illegible] शान्त जीवन बिताया जाए तो अत्यंत लाभकारी है। इस कार्य के लिए उपयुक्त स्थान है—भूमिगत स्थान अथवा पर्वतों की कन्दराएं। प्राचीन समय में ऐसी-ऐसी कंदराएं भी थी जहां पर सुन्दरतर वातावरण बनाए रखने के लिए तालाब और उपवन भी होते थे। प्रस्तुत है 'मानस' का प्रसंग—

चढ़ि गिरि सिखर चहुं दिसि देखा।
भूमि बिबर एक कौतुक पेखा॥
आगें कै हनुमन्तहिं लीन्हा।
पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा॥[89]
दीख जाई उपवन वर सर बिगसित बहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहं बैठि नारि तप पुंज॥[90]

प्राचीन काल में इसीलिए चिकित्सकों द्वारा अपने कुछ रोगियों को गुफा में निवास करने की सलाह दी जाती थी। भारत की इसी बात से प्रेरणा लेकर सोवियत वैज्ञानिकों ने 300 मीटर गहरी नमक की एक खान में एक अनूठे स्वास्थ्य गृह का निर्माण किया है। इसमें दमे के रोगियों को 25-30 घंटे तक सोना पड़ता है। रोगी जब बाहर आते हैं तो रोग से लगभग मुक्त होते हैं। इससे अनेक प्रकार के अन्य रोग भी ठीक हो जाते हैं। इस चिकित्सा विधि में किसी दवा की आवश्यकता नहीं पड़ती। सोवियत डॉक्टरों ने देखा कि नमक की खान में काम करने वाले कभी भी दमा (asthma) से पीड़ित नहीं होते। इस प्रकार की पुरानी खानों का तापमान, आर्द्रता और वायु उन रोगाणुओं को नष्ट कर देती हैं जो दमा उत्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त गुफा का शांतिमय वातावरण भी बहुत लाभप्रद होता है। यही कारण है कि युद्ध के समय नागरिकों को भूमिगत रहने की सलाह दी जाती है जिससे स्वास्थ्य पर रेडियोएक्टिव प्रदूषण का प्रभाव न पड़े।

89. मानस, किष्किंधाकाण्ड, 23 (3-4)
90. मानस, किष्किंधाकाण्ड, 24 (दोहा)

ग्रेगर जॉहान मेंडल चार्ल्स डार्वि

आनुवंशिकी विज्ञान के पिता

कोशिका-संरचना

इस प्रकार कोशिकाएं स्वतः पुनरुत्पादन करने वाली सबसे सरलतम कोशिका की संरचना सम्बंधी अध्ययन को **कोशिका विज्ञान** (cytolog है। आजकल कोशिका और उसके घटकों का अध्ययन विज्ञान की विधि की तकनीकों के द्वारा किया जाता है, जैसे कि **जैवरसायन** (bioche **भौतिकी** (biophysics), **शरीर-क्रिया विज्ञान** (phisiology), **आनुवंशिव** **आण्विक जीव-विज्ञान** आदि की तकनीकों से, और इसीलिए इसे के रूप में लिया जाता है। चूंकि कोशिका जीवधारियों की आकृति क्रियात्मक इकाई है अतः इसी संकल्पना या धारणा को **कोशिव** कोशिकावाद कहते हैं। कोशिका-सिद्धांत जीव-विज्ञान का बहुत आधारभूत व्यापकीकरण (व्यापक परिणाम) है और यह चार्ल्स विकास-सिद्धांत तथा आधुनिक विज्ञान के जीन-सिद्धांत की कोटि वास्तव में कोशिका एक ऐसी इकाई है जो सदैव क्रियाशील आवश्यकतानुसार अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कोशिका आश्रित और पारस्परिक घटकों का बहुत अधिक सुव्यवस्थित तंत्र के रूप और कार्य में गहरा संबंध है। कुछ कोशिकाएं जैसे कि अम श्वेत रूधिर कोशिकाएं निरंतर अपनी आकृति (चित्र 6.1) बदलती
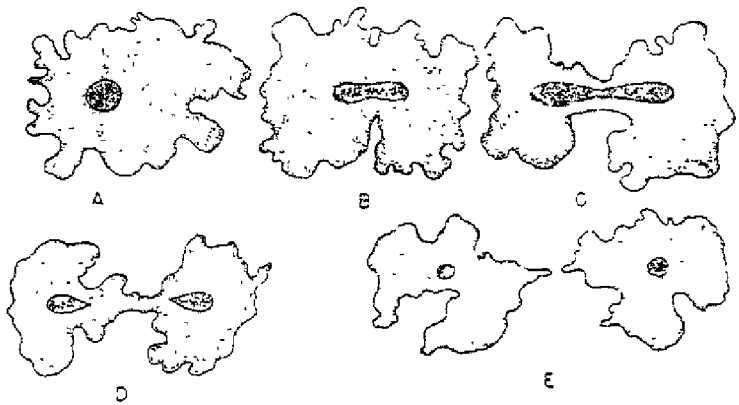
चित्र 6.1 : A से E तक–अमीबा में असूत्रीविभाजन।

शेष सभी कोशिकाएं सम्पूर्ण जीवन अपनी एक ही आकृति बनाए रखती है।

एक कोशिका (unicellular) जीव (अमीबा) एक अकेली कोशिका के बने होते हैं, किन्तु बहुकोशिक (मानव) जीव कई कोशिकाओं के बने होते हैं और ये कोशिकाएं भी कई प्रकार (चित्र 6.2) की होती हैं। मानव के मस्तिष्क में बल्कुट (cortex) में 9 अरब 20 करोड़ कोशिकाएं हो सकती हैं। मानव के रक्त में 300 हजार खरब ($30 x 10^{15}$) कोशिकाएं होती हैं और 60 किलोग्राम भार वाले मानव शरीर में $60 x 10^{15}$ कोशिकाएं हो सकती हैं। लेकिन यह अवश्य है कि सभी बहुकोशिक जीवों का प्रारम्भ एक कोशिका या युग्मज (Zygote) से ही होता है। महाकवि तुलसीदास जी ने भी शरीर धारण कर कोशिका (तनु) का माना है–

आदि सृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि ॥[2]

और बाद में जीव वृद्धि की अवधि में अनेक प्रकार के विभाजन से अन्य सब कोशिकाएं व्युत्पन्न होती हैं।

जीवों (जीवन) की प्रमुख विशेषताओं में से वृद्धि (growth) भी एक विशेषता है जिससे तीन आधारभूत प्रक्रम सम्बद्ध हैं : कोशिकाओं का विभाजन, विवर्धन

---

2 मानस, बालकाण्ड, 162 (दोहा)

[illegible] और [illegible] प्रक्रमों का नियमन जीवक (orga[illegible]) पदार्थों के समूह द्वारा किया जाता [illegible] हारमोन या वृद्धि नियामक कहते हैं। ये [illegible] निर्धारक (determinant) होते [illegible]। हारमोन शब्द एक यूनानी (ग्रीक) शब्द से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है 'उद्दीप्त करना।' हॉरमोन जैविक प्रकार के शरीर क्रियात्मक यौगिक हैं जो अन्तःस्रावी ग्रंथियों द्वारा उत्पन्न होते हैं और शरीर के दूर स्थित भागों के क्रिया-कलापों का निर्देशन करते हैं इनकी क्रियाशीलता विशिष्ट प्रकार की और सही-सही होती है। हॉरमोन तंत्र के सामान्य सन्तुलन में किसी भी प्रकार की और ज़रा-सी छेड़छाड़ होने पर कई प्रकार की गड़बड़ियां या विकार उत्पन्न हो जाते हैं। जिसके फलस्वरूप प्राणी को कष्ट उठाना पड़ता है—

> करइ जो करम पाव फल सोई।
> निगम नीति असि कह सबु कोई ॥[3]

इसी प्रकार महाकवि तुलसीदास जी ने तीन प्रकार के जीवों की ओर संकेत किया है—

> बिसई साधक सिद्ध सयाने।
> त्रिविध जीव जग वेद बखाने ॥[4]

कोशिका के अन्दर केन्द्रक भी होता है और इस केन्द्रक को सर्वप्रथम रॉबर्ट ब्राउन नामक वैज्ञानिक ने सन् 1831 ई में देखा। तब से लेकर आज तक केन्द्रक को कोशिका का अभिन्न तथा अति आवश्यक अंग माना जाता रहा है। अत केन्द्रक, परम्परा द्वारा प्राप्त सूचना का भण्डार है और साथ ही कोशिका के अन्दर होने वाली सारी उपापचयी क्रियाओं का नियंत्रण भी करता है। सामान्यतः कोशिका मे एक केन्द्रक होता है। किन्तु कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं जहां एक कोशिका मे एक से अधिक केन्द्रक होते हैं। केन्द्रक कोशिका के द्रव्य में स्थित होता है। एक नई बनी हुई कोशिका का केन्द्रक केन्द्र में होता है परन्तु जैसे-जैसे कोशिका पुरानी होती जाती है, केन्द्रक केन्द्र से हट कर एक तरफ को आता जाता है, जिसका मुख्य कारण है कोशिका के केन्द्र में एक **रिक्तिका** (चित्र 6.3) का बन जाना। साधारणतः केन्द्रक गोल या अण्डाकार होते हैं किन्तु कभी-कभी लम्बे गोल फूले हुए, शाखाओं में विभाजित या कई प्रकार के आकारों (चित्र 6.4) मे भी होते हैं।

---

3 मानस, अयोध्याकाण्ड, 76 (4)

4 मानस, अयोध्याकाण्ड, 276 (2)

नबर्गर ने सन् 1873 ई. में बतलाया कि केन्द्रक का जन्म भूतपूर्व केन्द्रक
ोता है। हर्टविग (1875) तथा वॉन बेनेडेन (1875) में स्वतंत्र रूप से
ाया कि अण्ड तथा शुक्राणु के केन्द्रक निषेचन के समय मिलकर एक हो
। बीजमैन (1833-1885) ने इस तत्व का नाम रखा **जर्मप्लाज्म**
plasm) और बताया कि यही केन्द्रक द्रव्य है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी
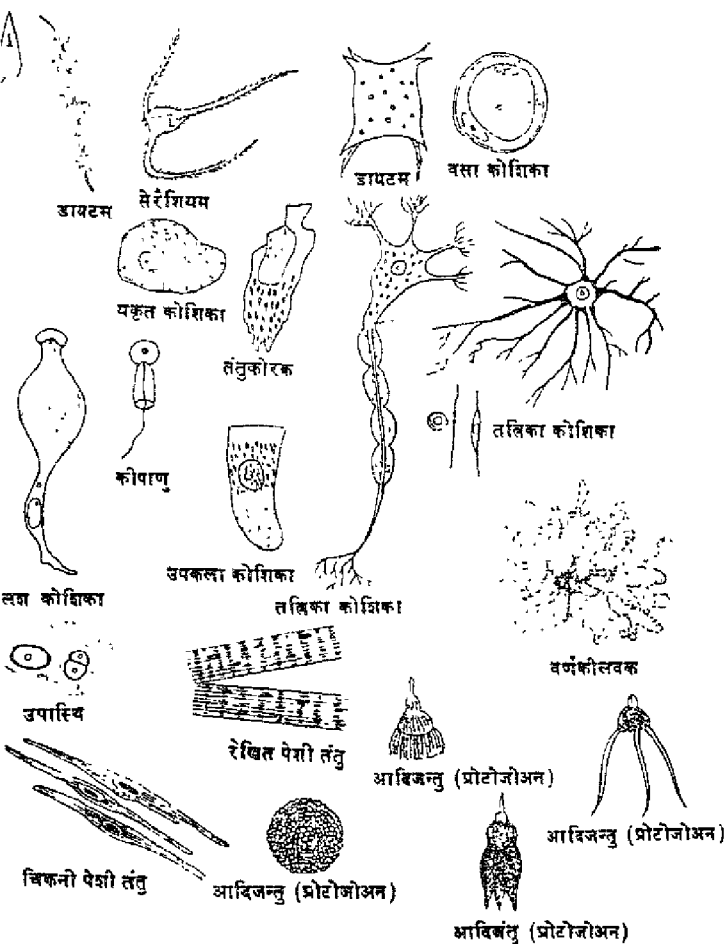
चित्र 6.2 : विभिन्न प्रकार की कोशिकाएँ
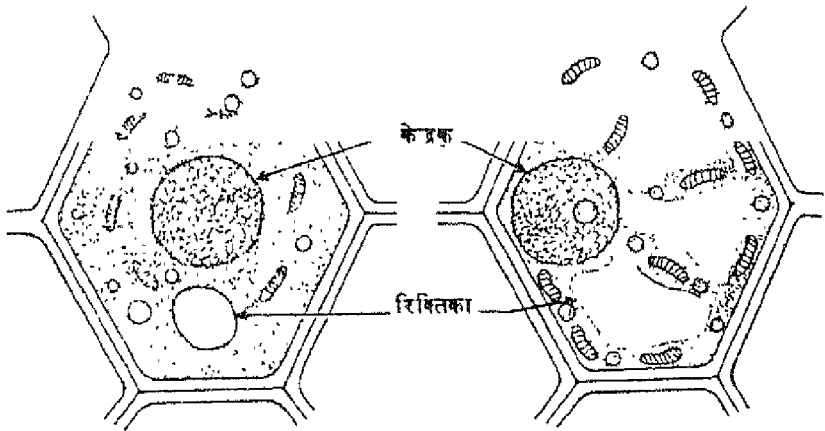
चित्र 6.3 : एक नवजात कोशिका, केन्द्र में स्थित केन्द्रक के साथ (बायें) तथा एक परिपक्व कोशिका जिसमें केन्द्रक रिक्तिता के बढ़ जाने के कारण एक तरफ को खिसक गया है (दायें)

मे जाता है। यह भी देखा गया है कि एक स्पीशीज के जीवों में अण्ड का आकार शुक्राणु के आकार से बहुत बड़ा होता है। इस अन्तर का मुख्य कारण है कि अण्ड तथा शुक्राणु में कोशिका द्रव्य की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। इनके केन्द्रको का आकार एक बराबर ही होता है। अतः इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि कोशिका द्रव्य नहीं, अपितु केन्द्रक आनुवंशिक सूचनाओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढी में पहुंचाता है। यही कारण था महाकवि तुलसीदास जी ने श्रीराम के पिता दशरथ द्वारा वंश परम्परा का वर्णन कराया था कि—

> **रघुकुल रीति सदा चलि आई।**
> **प्राण जाहुँ बरू बचनु न जाई ॥**[5]

इस कथन की पुष्टि के लिए प्रायोगिक प्रमाण सर्वप्रथम सन् 1889 ई. मे टी बॉवेरी ने समुद्री जीव (अर्चिन) पर किए। बॉवेरी ने अण्डों को हिलाकर दो-दो भागों में ऐसे तोड़ा कि एक भाग में केन्द्रक था और दूसरे भाग में नहीं था। अण्डे के उस आधे भाग को भी जो केन्द्रक रहित था, निषेचित किया गया और फिर उसमे

5 मानस, अयोध्याकाण्ड, 27 (2)
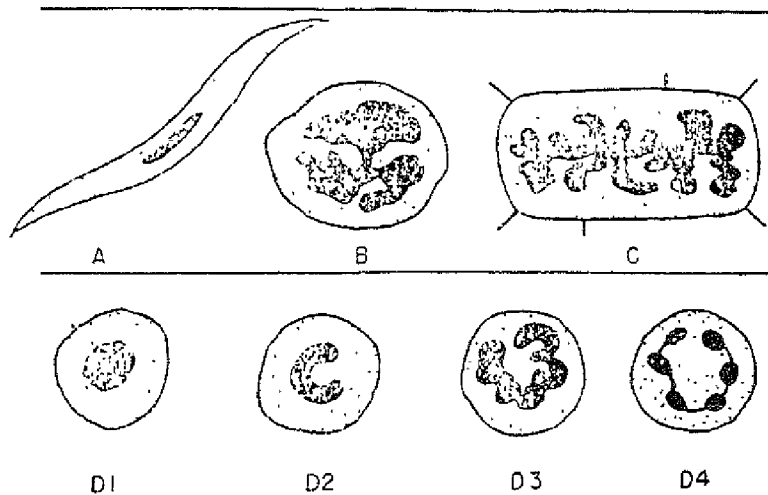
चित्र 6.4 : केन्द्रक की भिन्न-भिन्न आकृतियाँ। A-पेशी तंतु में लम्बा। B-मानव न्यूट्रोफिल कोशिका में पिंड की भांति। C-कीट लारवा की रेशम कातने वाली कोशिका में विभाजित होते हुए। D1 से D4 तक श्वेताणु में विभिन्न आकृतियों में।

वृद्धि होती देखी गई। इसका अर्थ यह हुआ कि अण्ड तथा शुक्राणु केन्द्रक का आनुवंशिक सूचनाओं से सम्बंधित सारी आनुवंशिक सूचनाएं होती हैं। समुद्री अर्चिन के उन सभी अण्डों के भागों को जिनमें केन्द्रक था तथा जो केन्द्रक रहित थे, एक ही प्रकार के शुक्राणुओं से निषेचित किया गया। इसका परिणाम बहुत ही मनोरंजक था। जो लारवे केन्द्रक रहित अण्ड से उत्पन्न हुए थे, उनमें केवल नर के गुण मौजूद थे जबकि वे लारवे जो केन्द्रक युक्त अण्ड से उत्पन्न हुए थे, उनमे नर तथा मादा दोनों ही के गुण देखने को मिले। इन दोनों लारवों के अन्तर का कारण केवल अण्डाणु में केन्द्रक की अनुपस्थिति या उपस्थिति था। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि केन्द्रक का पैतृक गुणों के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचने मे बडा योगदान है—

यह तनय मम सम बिनय बल कल्याणप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए॥[6]

कोशिका द्रव्य केन्द्रक की अनुपस्थिति में बहुत लम्बी अवधि तक जीवित नहीं रह सकता। इसी भांति एक केन्द्रक, कोशिका द्रव्य के बिना भी जीवित नहीं

6 मानस, किष्किंधाकाण्ड, 6 (छंद-2)

रह सकता जीवित कोशिकाओं में केन्द्रकीय द्रव्य एक समान होता है किन्तु जब इस कुछ रंजकों से अभिरंजित किया जाता है तो भाँति भाँति संरचना दिखाई पड़ती है इसमें सबसे अधिक स्पष्ट होता है धागे की तरह दिखने वाला क्रोमैटिन का जाल जो क्षारीय अभिरंजकों से अभिरंजित होता है। केन्द्रकीय विभाजन के दौरान क्रोमैटिन का जाल अधिक घना और घूमा हुआ हो जाता है जिसके कारण क्रोमैटिन के लम्बे-लम्बे धागे छोटे तथा मोटे दिखाई देने लगते हैं। इन अधिक अभिरंजित छड़ों के समान संरचना को डब्ल्यू.ई. वाल्डेयर ने सन् 1888 ई. में **गुणसूत्र** (चित्र 6.3) का नाम दिया और इन गुणसूत्रों को सर्वप्रथम हॉफमेस्टर (1848) ने देखा था। ये गुणसूत्र आनुवंशिकता के गुणों के वाहक हैं तथा जीव विशेष के गुणों को निर्धारित करते हैं।

केन्द्रक तथा **गुणसूत्र** दोनों ही गुणों की वंशागति से सम्बंध रखते हैं इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम उनकी रासायनिक संरचना को जानें जिससे कि आनुवंशिक गुणों का आण्विक आधार समझा जा सके। केन्द्रक का रासायनिक अध्ययन सरलता से किया जा सकता है क्योंकि केन्द्रक को सुगमता से भौतिक तथा रासायनिक तकनीकों द्वारा कोशिका के दूसरे भागों से पृथक किया जा कसता है। कुछ ऐसी अभिरंजक प्रतिक्रियाएं हैं जिनके द्वारा केन्द्रक में नाना प्रकार के रासायनिक पदार्थों की उपस्थिति तथा केन्द्रक के अन्दर के दूसरे भागों के विषय में सरलता से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। केन्द्रक के कुछ रासायनिक तत्वों का अध्ययन पराबैंगनी (ultraviolet) या प्रतिदीप्त (fluorescent) सूक्ष्मदर्शी से भी किया जा सकता है। अभी तक पिछली शताब्दी के अध्ययन के आधार पर केन्द्रक में निम्नलिखित अवयव होते हैं—

1. डीऑक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल (डी.एन.ए.)
2. राइबो न्यूक्लिक अम्ल (आर.एन.ए.)
3. लिपिड
4. क्षारीय प्रोटीन (हिस्टोन या प्रोटामिन)
5. जटिल प्रोटीन (जिनमें एनजाइम्स भी हैं)
6. फॉसफोरस युक्त कार्बनिक भाग, तथा
7. अकार्बनिक भाग, जैसे-लवण।

इन सबमें केन्द्रक का सबसे निराला अंश है—न्यूक्लिक अम्ल जो कोशिका द्रव्य में अधिक मात्रा में नहीं पाया जाता। न्यूक्लिक अम्ल का पता सर्वप्रथम फ्रेडरिक मीशर नामक वैज्ञानिक ने सन् 1869 ई. में लगाया था। न्यूक्लिक अम्ल दो प्रकार के होते हैं—डी ऑक्सीराइबोस तथा राइबोस। यह अन्तर अलग-अलग
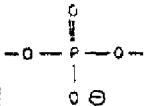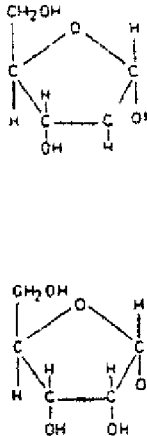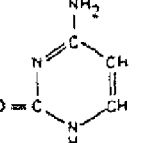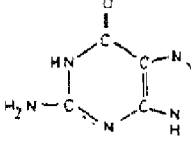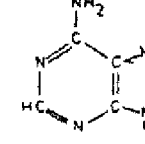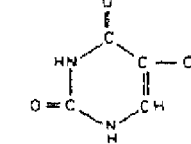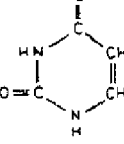
(sugar) के कारण होता है जो न्यूक्लिक अम्ल में होती हे
अम्ल बृहद अणु है तथा न्यूक्लिओटाइड का बहुलक होता है
ओटाइड में पांच कार्बन शर्करा, फॉस्फेट तथा प्यूरीन अथव
(चित्र 6.6) होता है। टयूरीन तथा पायरीमिडिन नाइट्रोजन युक्त
है। डी.एन.ए. का न्यूक्लिओटाइड निम्न भागों का बना हात
बोस शर्करा, फॉस्फेट तथा निम्नलिखित चार क्षारों में एक क्षार-
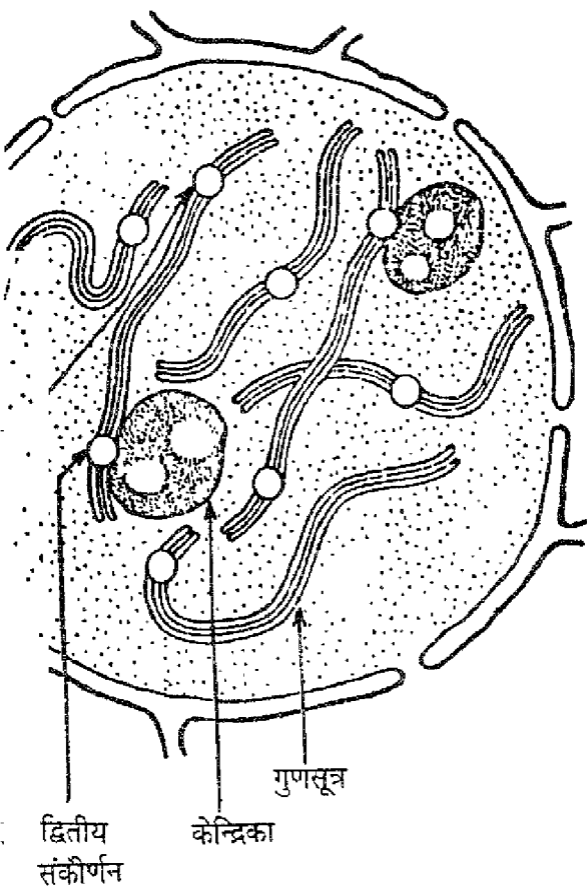
5 : एक केन्द्रक अपनी केन्द्रिका के साथ जो गुणसूत्र पर एक विशेष बिन्दु से चिपकी हुई है।

एडिनिन ग्वानिन साइटोसिन तथा थाइमीन आर एन ए का न्यूक्लिओटाइड राइबोस शकरा फास्फेट तथा निम्नलिखित चार क्षारों में से एक क्षार एडिनिन ग्वानिन, साइटोसिन तथा यूरासिल, से बना होता है। न्यूक्लिक अम्लों के पांच, क्षारों में एडिनिन तथा ग्वानिन प्यूरीन हैं और थाइमीन, साइटोसिन व यूरासिल पायरीमिडिन हैं। इस प्रकार आर.एन.ए., डी.एन.ए. से काफी भिन्न है। इन दोनों की शर्करा के प्रकार में तो भिन्नता है ही, साथ ही आर.एन.ए. में थाइमीन के स्थान पर यूरासिल होता है।

फास्फेट भाग | शर्करा | नाइट्रोजनी क्षार

साइटोसीन (C) ग्वानीन (G)

एडेनीन (A) थायमीन (T)

यूरासील (U)

चित्र 6.6 : न्यूक्लिक अम्लों को बनानेवाले बेसों, शर्कराओं तथा फास्फेटो की रासायनिक संरचना।

डी.एन.ए. का एक माडल
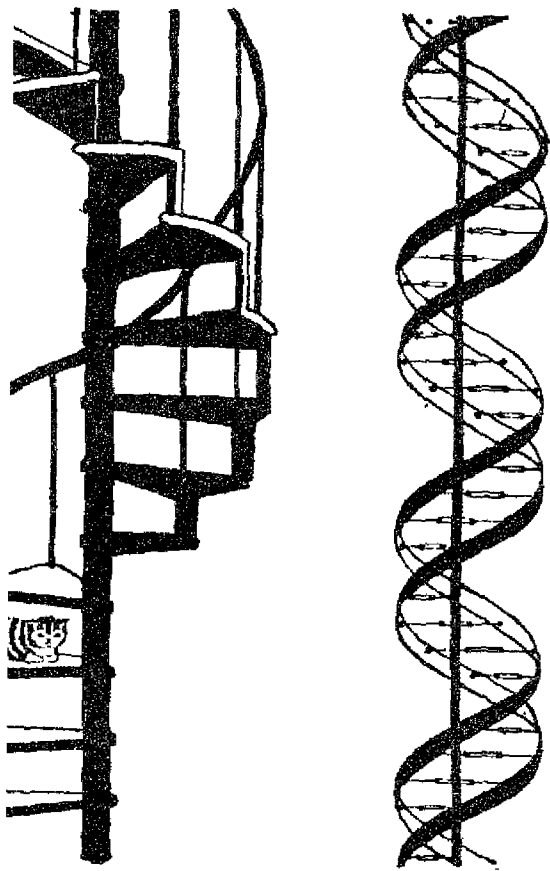
चित्र 6.7 : दो कुण्डलिनियां
नेर्मित (बाएं) दूसरी प्रकृति-निर्मित डी.एन.ए. की कुण्डलिनी
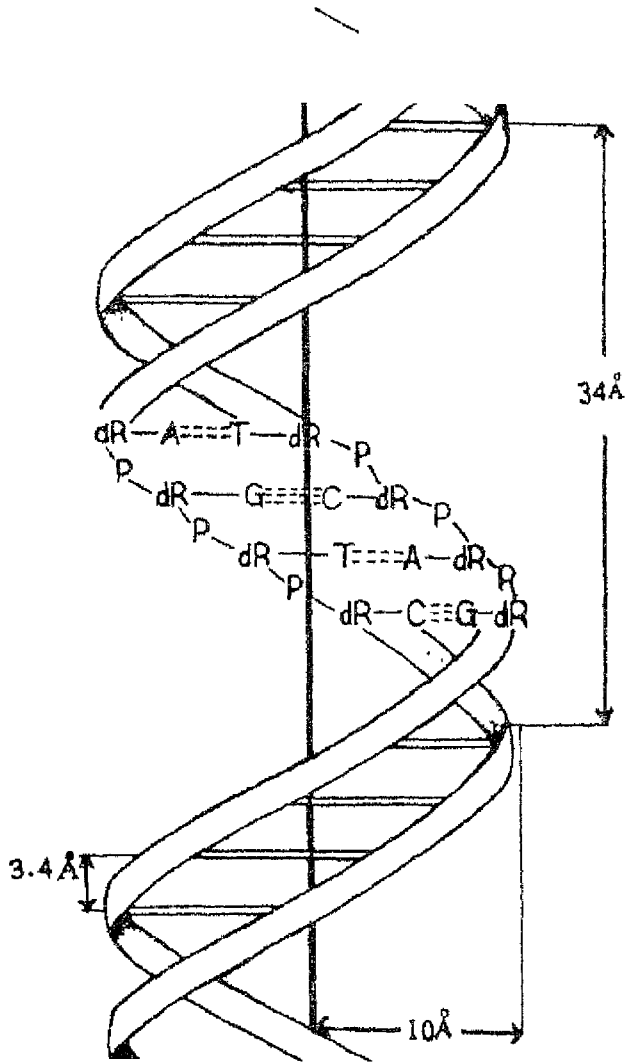
चित्र 6.8 : डी.एन.ए. अणु की संरचना। ध्यान दो कि एडीनीन थाइमीन के स
तथा गुआनीन साइटोसिन के साथ संयोग करता है।

तालिका

मानव शुक्राणु से प्राप्त डी.एन.ए. में क्षार का संयोजन (%)

प्यूरीन :

एडिनीन (A)	=	31.0
ग्वानीन (G)	=	19.1

पायरीमिडिन :

साइटोसिन (C)	=	18.4
थाइमीन (T)	=	31.5
प्रतिशत(G+C)	=	37.5
प्रतिशत (A+T)	=	62.5

डी.एन.ए. का **एक्सरे विवर्तन** (X-ray defraction) लिया गया और देखा कि डी.एन.ए. की अणु संरचना रेखाकार न होकर कुंडलित होती है। जे.डी. वाट्सन, एफ.एच.सी. फ्रिक एवं एम.एच.एफ. विल्किन्स ने सन् 1953 ई. में डी.एन ए का एक मॉडल (चित्र 6.7) बनाया जो डी.एन.ए. के रासायनिक, भौतिक तथा जैव गुणों को दर्शाता है। इन वैज्ञानिकों के विचार से डी.एन.ए. का प्रत्येक अणु दो बहुन्यूक्लिओटाइड शृंखलाओं से बना होता है जो एक कुंडली के रूप में एक अक्ष के चारों ओर कुंडलित रहता है। कुंडलिनी की चौड़ाई (व्यास) 10 A^0 है तथा कुंडलिनी का एक घेरा 34 A^0 में पूरा होता है जिसमें दस बेस युग्म होते हैं। ये दोनों शृंखलाएं अपनी स्थिति में हाइड्रोजन बंधों (bonds) के कारण रहती है जो युग्मित क्षार के बीच में होते हैं। डी.एन.ए. की संरचना (चित्र : 6 8) विधिपूर्वक बनाने के हेतु उपर्युक्त तीनों वैज्ञानिकों को सन् 1962 ई. में नोबल पुरस्कार दिया गया।

जीव जगत की विभिन्न जातियां-उपजातियों के अंगों में वर्तमान प्रत्येक कोशिका में गुणसूत्रों की एक विशिष्ट संख्या होती है और उनमें कुछ अन्तर भी पाया जाता है, किन्तु मनुष्य जाति की प्रत्येक कोशिका में गुणसूत्रों की सख्या 46 होती है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक कोशिका के अन्दर 23 गुणसूत्रों के जोड़ होते है। इसी प्रकार मधुमक्खी की कोशिका में 8 जोड़े, भेड़ की कोशिका में 27 जोड़े होते हैं। गुणसूत्रों की संख्या पर जीव की बुद्धिमत्ता निर्भर नहीं करती, क्योंकि कुछ अन्य जन्तुओ में इनकी संख्या सैंकड़ों में होती है। इससे स्पष्ट है कि जीव की मानसिक क्षमता इलैक्ट्रान या परमाणु कणों पर निर्भर नहीं है, बल्कि कारणस्वरूप

---

* A^0 (आंग्सट्राम)=10^{-8} सें.मी.

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
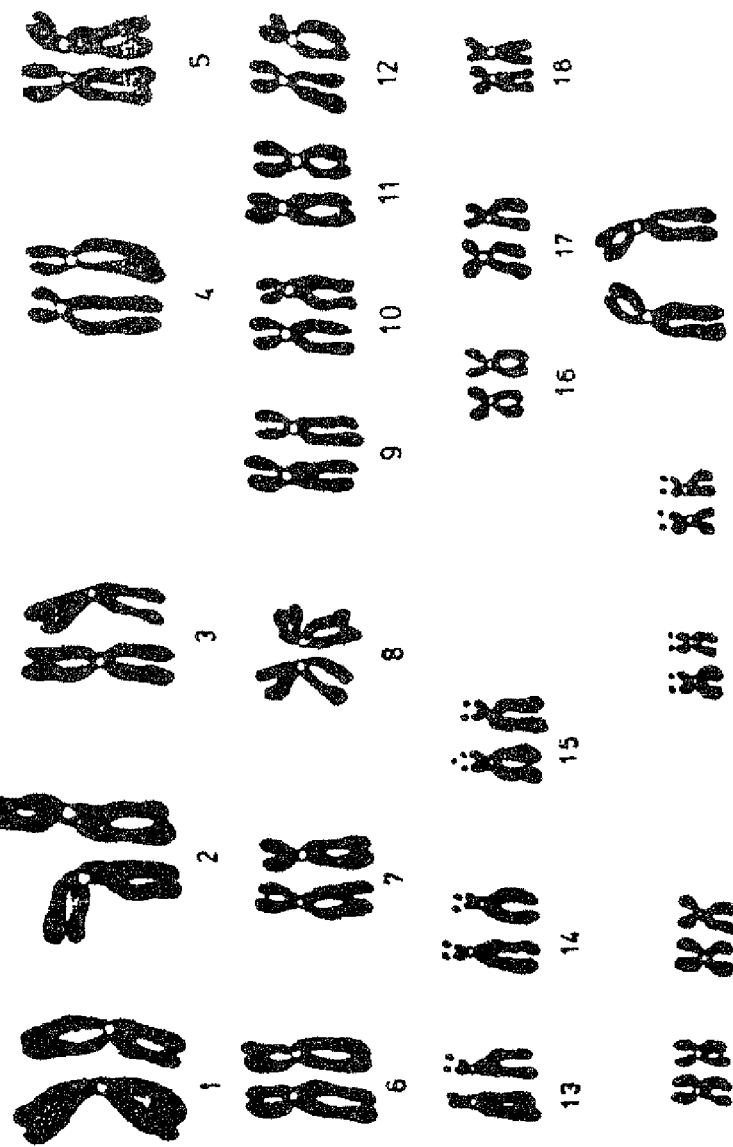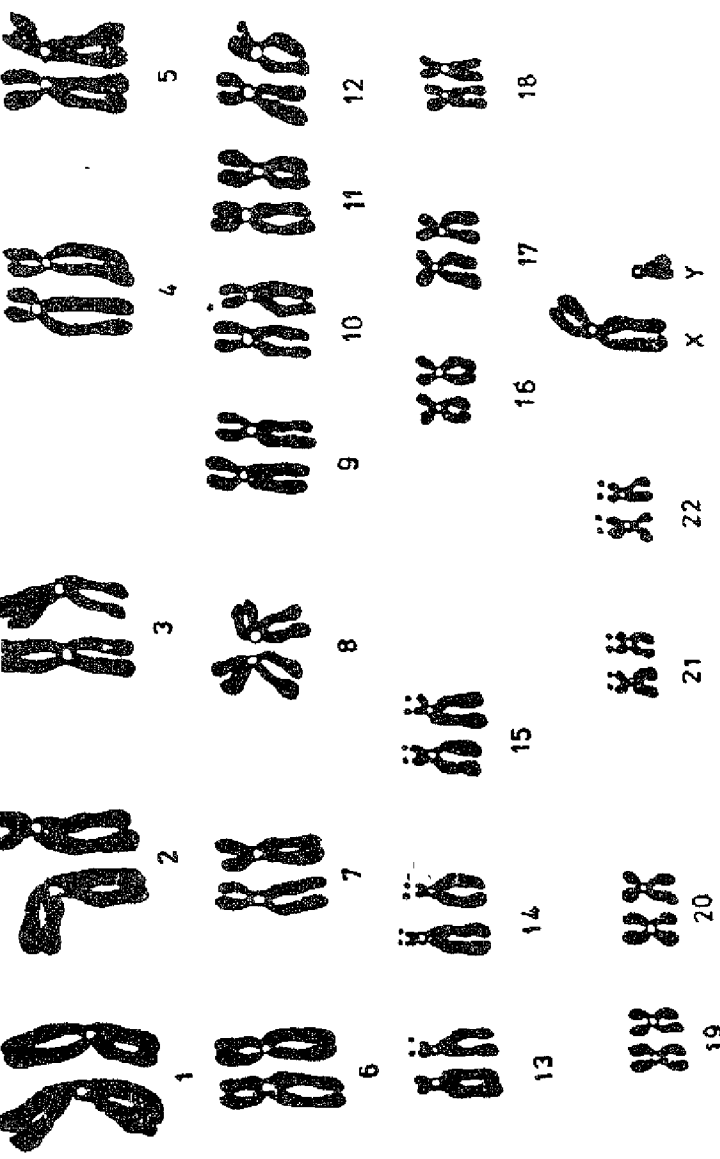
चित्र 6.10 : एक सामान्य नर के युग्मों में व्यवस्थित गुणसूत्र

सूक्ष्म जगत (astral world) की त्रिगुणात्मक तरंगों पर निर्भर है और उन तरंगों के सामंजस्य से ही जीव का चेतन-स्तर निर्मित होता है। इसके अतिरिक्त **गुणसूत्र** (Chromosomes or DNA molecules) उनसे भी अधिक सूक्ष्म जैविक कणों में विभाजित होते हैं जिन्हें **जीन** (genes) कहते हैं और विज्ञान के अनुसार यही जैविक कण निर्जीव तथा सजीव पदार्थों को पृथक करते हैं। दूसरे शब्दों में ये कण निर्जीव और सजीव के बीच सीमा रेखा है। इसीलिए महाकवि तुलसीदास जी ने प्रकृति के इन दोनों अंशों को स्वीकारा है—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥[7]

जैविक कण जीव के क्रम विकास तथा **आनुवंशिकता** (hereditary) की मूलभूत इकाई हैं और ये कण एक निश्चित क्रम से गुणसूत्रों में विद्यमान रहते हैं। प्रत्येक जीव में गुणसूत्र कुछ अपवादों को छोड़कर युग्मों (pairs) में ही मिलते हैं। मनुष्य की कोशिका में प्रत्येक गुणसूत्र तथा जीन दो समान जोड़ों के समूह (चित्र 6.9 एवं 6.10) में होते हैं। जिसका एक जोड़ा माता से प्राप्त होता है और दूसरा पिता से। माता-पिता के संयोग द्वारा प्राप्त गुणसूत्रों के दोनो जोड़े जटिल आनुवंशिकी गुणात्मक तत्वों (hereditary properties) के **वाहक** (bearer) होते हैं जो रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा एक सन्तान से दूसरे में प्रविष्ट होते रहते हैं। यह संयोग ही बन्ध है, कर्म-व्यापार है—

जनम मरन सब दुख सुख भोगा।
हानि लाभु प्रिय मिलन वियोगा ॥
काल करम बस होहिं गोसाईं।
बरबस राति दिवस की नाईं ॥[8]

और इससे परे हो जाना ही मुक्ति है—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ॥[9]

शरीर में कुछ ऐसी सुरक्षित कोशिकाएं भी होती हैं जिनके गुणसूत्र 'जनन

---

7. मानस, बालकाण्ड 7-ग (दोहा)
8. मानस, अयोध्याकाण्ड, 149 (3)
9. मानस, उत्तरकाण्ड, 42 (4)

प्रक्रिया' में माता-पिता की दो विभिन्न कोशिकाओं को एक होने में सहायता प्रदान करते हैं जिन्हें **गैमिटिस** (gametes) या **'वैवाहिक कोष'** (marrying cells) कहत है। इस प्रक्रिया द्वारा संयुक्त कोशिका को **जाइगोट** (Zygote) कहते हैं। जीवशास्त्र के अनुसार किसी जीव का लिंग पिता के शुक्राणु (sperm) द्वारा निर्धारित होता है, माता के अण्डाणु (ovum) द्वारा नहीं, क्योंकि माता के गुणसूत्र का प्रत्येक जोड़ा एक्स (X) होता है और पिता में एक्स (X) एवं वाई (Y) दोनों होते हैं। यही कारण है कि स्त्री और पुरुष की निषेचित क्रिया में माता के 'एक्स' और पिता के 'वाई' गुणसूत्र के संयोग से लड़का पैदा होता है, जबकि माता के 'एक्स' एव पिता के 'एक्स' गुणसूत्रों द्वारा लड़की पैदा होती है।

उत्परिवर्तन

आनुवंशिकी विज्ञान अर्थात वंशपरम्परा तथा परिवर्तन (विविधता) के विज्ञान की नीव ग्रेगर जॉहन मैंडल ने एक शतक पहले डाली थी। इसलिए मैंडल को आनुवंशिकी विज्ञान का पिता कहना अनुचित न होगा। चार्ल्स डार्विन ने अपने विकास सम्बधी सिद्धांतों में अभिगृहीत किया था कि किसी भी वर्ग के जीवों के गुणन के साथ-साथ विविधता का उद्भव होता है। विविधता प्राकृतिक वरण तथा जीवन संघर्ष के लिए आवश्यक है। यदि समष्टि के एक वर्ग के समस्त जीव एक समान हो तो जीवन संघर्ष तथा प्राकृतिक वरण नहीं होगा। समष्टि में विविधता दो क्रिया-विधियो के परिणामस्वरूप होती है : (1) **पुनर्योजन** तथा (2) **उत्परिवर्तन**। विभिन्न जीवो पर किए गए शोध कार्यो से ज्ञात हुआ कि वंशागत भिन्नताएं जीव की संरचना मे परिवर्तन के कारण अथवा गुणसूत्र की संरचना या संख्या में परिवर्तन के कारण पेदा की जा सकती हैं। जीन की संरचना में आकस्मिक तथा निश्चित परिवर्तन को जीन उत्परिवर्तन या केवल परिवर्तन कहते हैं।

आधुनिक जीवशास्त्री यह मानते हैं कि वस्तुतः सभी वंशानुगत परिवर्तन (variations) मूल स्रोत उत्परिवर्तन (mutation) में ही निहित है और इसी प्रक्रिया द्वारा जीव जगत का क्रमविकास होता है। उत्परिवर्तन जीन तथा गुणसूत्र दोनो मे हो सकते हैं जो कई प्रकार के होते हैं। जीन कणों में भिन्नता के फलस्वरूप जीव-जन्तुओं पर इनका प्रभाव भी भिन्न-भिन्न होता है और यह भिन्नता तथा परिवर्तन एक ही जीन के उत्परिवर्तन से होता है। इस प्रक्रिया द्वारा सभी जीव-जन्तुओ मे विद्यमान सार्वभौमिक गुणात्मक तत्व 'यौन शक्ति' (sex-urge) के प्रभाव से विभिन्न जातियों-उपजातियों तथा उनकी शाखाएं-प्रशाखाएं प्रस्फुटित होती रहती है।
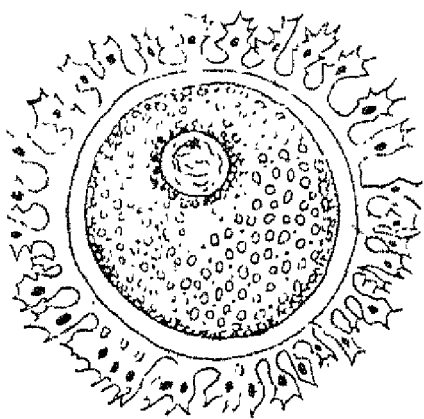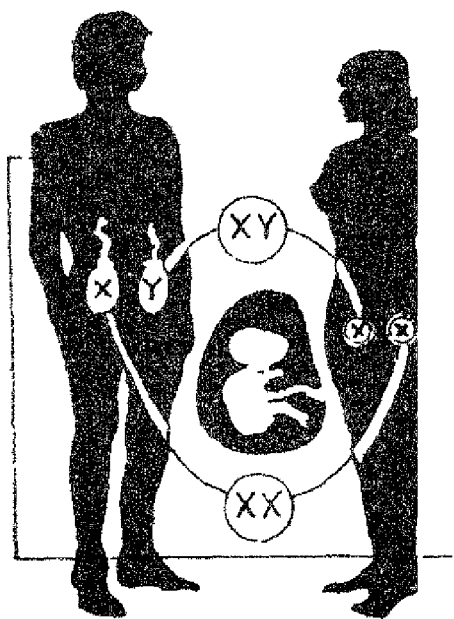
अण्डाणु

शुक्राणु

चित्र 6.11 : मनुष्य का अण्डाणु तथा शुक्र

आज वैज्ञानिक जीन-प्रक्रिया को एक सार्वभौमिक नियम (Universal law) मानते हैं किन्तु इस संदर्भ में महत्वपूर्ण बात यह है कि कोई भी उत्परिवर्तन जीव-जन्तुओं की कोशिकाओं में स्थित विशेष गुणसूत्रों तथा जीन-कणों द्वारा उत्प्रेरित होकर एक विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा ही सम्भव हो पाता है और उसी प्रक्रिया में सभी जीन-कण एक अनुशासित सेना की भांति वंशानुक्रम (heredity) को आगे बढ़ाते हैं। जीवशास्त्र के इसी स्वतंत्र सिद्धांत को **क्रम विकासवाद** (Theory of Evolution) कहते हैं। सन् 1927 ई. में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जोसेफ मूलर ने अनेक प्रकार के प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि एक्स-रे की सूक्ष्म किरणों द्वारा शरीर के जीन-कणों को प्रयोगशाला में कृत्रिम ढंग से उत्परिवर्तित किया जा सकता है। एक्स-रे के अतिरिक्त पराबैंगनी विकिरण (ultraviolet radiations) तथा सरसों की गैस (Mustard gas) आदि भौतिक एवं रासायनिक तत्व भी उत्परिवर्तन में सहायक होते हैं। जोसेफ मूलर ने यह दावा किया कि प्रयोगशाला में विकिरण के प्रभाव से वैसा ही कृत्रिम उत्परिवर्तन हो सकता है जैसा कि प्रकृति द्वारा निरन्तर होता रहता है। इसके अतिरिक्त विकिरण की तीव्रता को बढ़ाकर प्राकृतिक उत्परिवर्तन को कई गुणा अधिक बढ़ाया जा सकता है। यद्यपि जोसेफ मूलर की इस सफलता से जीव-विज्ञान में कृत्रिम जीव-निर्माण की आधारशिला रख दी गई, किन्तु इसी सफलता ने जीव शास्त्रियों के अहंज्ञान को भी कई गुना अधिक बढ़ा दिया। इन सफलताओं से उन्हें यह विश्वास हो गया कि अब इस जगत में ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है।

कृत्रिम जीव-निर्माण

आधुनिक विज्ञान को कृत्रिम जीव-निर्माण के क्षेत्र में वैदिक कालीन भारत के विज्ञान का ऋणी होना चाहिए जिसने कई हजार वर्ष पूर्व कौशल्या, कैकयी तथा सुमित्रा का कृत्रिम गर्भाधान कराकर सूर्यवंश को अमर कर दिया। इस कार्य का श्रेय वैज्ञानिक ऋषि श्रृंगी को जाता है जिन्होंने दशरथ के माध्यम से उपर्युक्त तीनों रानियों को खीर के रूप में ग्रहण करने के लिए कुछ पदार्थ दिया और फलस्वरूप तीनों रानियाँ गर्भवती हो गई—

> **एहि बिधि गर्भ सहित सब नारी।**
> **भई हृदयें हरषित सुख भारी॥**[10]

---

10 मानस, बालकाण्ड, 189 (3)

इसकी धारण-विधि महर्षि अग्निदेव ने राजा दशरथ की सभा के मध्य बतला दी थी—

तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद मगन नृप हरष न हृदयँ समाई ॥[11]

यदि प्राकृतिक प्रक्रिया से संतान उत्पत्ति होती तो एक-दो दिन अथवा सप्ताह के अन्तराल से जनन क्रिया हुई होती किन्तु कृत्रिम गर्भाधान के कारण ही सभी रानियों के एक ही समय पुत्र उत्पन्न हुए—

कैकय सुता सुमित्रा दोऊ।
सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ ॥[12]

जिसको महाकवि तुलसीदास जी ने श्रीराम के मुख से इस प्रकार कहलवाया है—

जनमे एक संग सब भाई।
भोजन सयन केलि लरिकाई ॥[13]

विज्ञान के अनुसार जीव पदार्थ का ही क्रम विकसित रूप है, जबकि भारतीय दर्शन के अनुसार जीव पदार्थ में सूक्ष्म रूप से पहले से ही विद्यमान होता है। उदाहरणार्थ बीज में पहले से ही जीव न हो तो वह वृक्ष नहीं हो सकता। इसी प्रकार पुरुष के शुक्राणु (sperm) और स्त्री के अण्डाणु (ovum) में जीव पहले से ही उपस्थित है और पदार्थ की रासायनिक प्रक्रिया जीव की उत्पत्ति, विकास तथा अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम या साधनमात्र है। यहाँ जीव से तात्पर्य शुद्ध चेतन सत्ता से है जिसके प्रभाव से जड़-पदार्थ जीव के रूप में प्रतिबिंबित होता है, अर्थात पदार्थ के रूप में जीव वास्तविक चेतन सत्ता नहीं है बल्कि उसका प्रतिरूप बनकर कुछ क्रियाकलापों को प्रकट करता है—

परबस जीव स्वबस भगवंता।
जीव अनेक एक श्रीकंता ॥[14]

जिसके फलस्वरूप जीव में ही शुद्ध चेतन सत्ता अथवा आत्मा का भ्रम उत्पन्न हो जाता है और वेदान्त तथा योगदर्शन के अनुसार इसी को जीव का अहंकार (Ego) कहा जाता है। अहंकारवश जीव अपने को कर्त्ता समझ बैठता है किन्तु

---

11. मानस, बालकाण्ड, 189 (दोहा)
12. मानस, बालकाण्ड, 194 (1)
13. मानस, अयोध्याकाण्ड, 9 (3)
14. मानस, उत्तरकाण्ड, 77 (4)

वास्तव में वह शक्ति आत्मा या परमात्मा है। महाकवि तुलसीदास जी ने भी जीव को उसी परम शक्ति के अधीन माना है–

नाथ जीव तव मायाँ मोहा।
सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥[15]

कृत्रिम जीव-निर्माण के सम्बंध में अनेक प्रकार के प्रयोग किए गए। इसी क्रम में सन् 1940 ई. में जॉन रॉक ने शरीर से बाहर **परखनली** (test tube) में शुक्राणु तथा अण्डाणु का संयोग कराने में सफलता प्राप्त की। इसके पश्चात् कोलम्बिया विश्वविद्यालय के डॉ. लैंडम बी. शेट्ल्स ने भी इसी प्रकार का सफल प्रयोग किया। प्रयोग की अवधि में शेट्ल्स ने सूक्ष्मदर्शी यंत्र (microscope) द्वारा देखा कि पूरा शुक्राणु (sperm) अण्डाणु (ovum) में प्रविष्ट हो गया और इस निषेचित क्रिया (चित्र 6.11) के तीस घण्टे पश्चात एक से दो कोशिकाएं निर्मित हुई, पचास घण्टे बाद दो से चार, साठ घण्टे बाद चार से आठ और इसी क्रम से कोशिकाओं का स्वप्रजनन (चित्र : 6.12) बढ़ता गया। यद्यपि बीसवीं सदी के मध्य से ही वैज्ञानिक कृत्रिम जीव के निर्माण में जुटे हुए हैं, किन्तु इसका स्पष्ट संकेत संसार को तब मिला जब सन् 1965 ई. में इलिनायस विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सोल स्पोगेलमैन ने एक विषाणु (virus) को निर्दिष्ट कर उसे अलग करने में सफलता प्राप्त की। इसके पश्चात सन् 1967 ई. में केलीफोर्निया मे स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में कृत्रिम ढंग से जीव उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की। सन् 1970 ई. में विस्कान्सिन विश्वविद्यालय में नोबेल पुरस्कार विजेता भारतीय प्रोफेसर हरगोविन्द खुराना ने प्रयोगशाला में ही कृत्रिम जीन (gene) के निर्माण का दावा कर संसार को आश्चर्य चकित कर दिया। इस अनुसंधान के दौरान सन् 1976 ई. को उन्होंने एक नया जीन-कण कृत्रिम रूप से तेयार किया जो परखनली के अतिरिक्त जीवाणु (bacteria) में भी सक्रिय होकर अपनी **प्रतिलिपि** (duplicate) बनाने में समर्थ था। डॉ. खुराना की यह खोज **जीव-रहस्य** (genetic code) को अनावृत करने की दिशा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण कदम था।

25 जुलाई, सन् 1978 ई. को प्रातः पांच बजकर सत्तरह मिनट पर इंग्लैंड के ओल्डहम अस्पताल में विश्व के प्रथम एवं प्रमाणिक 'परखनली शिशु' का जन्म हुआ। इस चमत्कार को साकार रूप देने वाले डॉक्टरों का नाम है—डॉ. पेट्रिक स्टेप्टो और डॉ. राबर्ट एड्वर्ड्स तथा 32 वर्षीया निसंतान लेस्ली ब्राउन वह

---

15 मानस, किष्किंधाकाण्ड, 2 (1)

भाग्यशाली माता थी जिसने इस कन्या को जन्म दिया। इस निस्संतान महिला की **डिम्बवाहिनी नलिका** (fallopian tubes) पूर्णतया अवरुद्ध थी। गर्भाधान के पहले श्रीमती लैस्ली ब्राउन को नवम्बर, 1977 ई. में हारमोन्स के इन्जेक्शन दिए गए और जब अण्डाशय (ovary) की कोशिकाओं में अण्डाणु परिपक्व हो गए तो डॉ. स्टेप्टो ने लेप्रोस्कोप नामक यंत्र को अण्डाशय तक प्रविष्ट करके उसका सूक्ष्म निरीक्षण किया और उसी से लगी हुई एक सुई द्वारा अण्डाणु को बाहर निकाल लिया। इसके साथ ही परखनली में स्त्री के गर्भाशय की भाँति प्राकृतिक ढंग से अनेक रासायनिक तत्वों का सम्मिश्रण भी पहले से ही तैयार रखा हुआ था। इस प्रकार लैस्ली ब्राउन के अण्डाणु को उसके पति जॉन ब्राउन के शुक्राणु से निषेचित कराके तीन दिन तक तो परखनली में ही पोषित किया गया और जब भ्रूण (embroy) में जीवन का संचार हो गया अर्थात कोशिकाएं सक्रिय हो उठीं तो चौथे
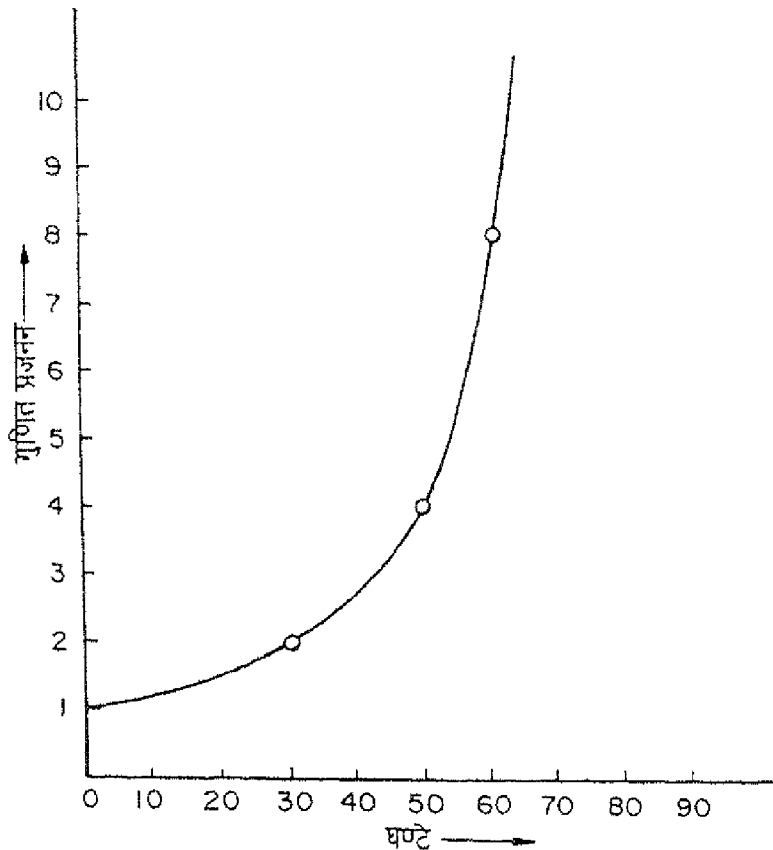
चित्र 6.12 : कृत्रिम जीव-निर्माण में स्वप्रजनन

दिन श्रीमती ब्राउन के गर्भाशय में भ्रूण को स्थापित कर दिया। लेस्ली ब्राउन के गर्भाशय में अनुकूल वातावरण अथवा स्वाभाविक अवस्था बनाए रखने के लिए अनेक इन्जक्शन भी दिए गए जिससे गर्भस्राव का खतरा न हो। इस अत्यंत जटिल एवं सूक्ष्म तकनीकी प्रयोग को जनहित की दृष्टि से विश्वविख्यात डॉक्टरों ने तब तक गुप्त रखा था जब तक कि सफलतापूर्वक शिशु का जन्म नहीं हो गया। **गुणसूत्रों** (chromosomes) की वैज्ञानिक जांच से डॉक्टरों को यह भी पता चल गया था कि परखनली में पलता हुआ कृत्रिम जीव एक लड़की है। अब आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि आनुवंशिकी की प्रक्रिया एवं सिद्धांत क्या है तथा किस प्रकार कृत्रिम जीव-निर्माण की उत्पत्ति होती है। जुलाई, 1978 ई. के बाद दूसरा शिशु आस्ट्रेलिया में सन् 1980 ई. और तीसरा अमेरिका में सन् 1981 ई. में पैदा हुआ। तत्पश्चात विश्व में एक ऐसी स्पर्धा हुई कि फ्रांस, स्वीडन तथा जर्मनी आदि देशों मे भी इस दिशा में सफल प्रयोग किए। भारत में यों तो बंगलौर के अस्पताल में सन् 1976 ई. में परखनली शिशु तैयार करने का दावा किया गया किन्तु वह एक आयातित तकनीक के आधार पर हुआ। 6 अगस्त, 1986 ई. को के.ई.एम अस्पताल बम्बई की डॉ. इन्दिरा हिन्दुजा के प्रयोग से 24 वर्षीया मणि छावड़ा के एक सुंदर बालिका का जन्म कराया गया। यद्यपि श्रीमती मणि छावड़ा की डिम्बवाही नलिकाओं (फैलोपियन ट्यूब्स) में खराबी होने के कारण उसका माँ बनना असम्भव था किन्तु डॉ. हिन्दुजा ने मणि छावड़ा के मासिक धर्म चक्र का अनुमान लगाकर उसके डिम्बाणु बाहर निकाले और नन्हीं प्लेट (पेटी-डिश) में एक निश्चित तापमान पर उसके पति शामजी छावड़ा के शुक्राणु के साथ मिलाकर रखा। जब भ्रूण तैयार हो गया तब गत 30 नवम्बर, 1985 ई. को उसे महिला के गर्भाशय में रखा गया। स्थानांतरण की इस पद्धति को 'इनविटो फर्टिलाइजेशन एण्ड एम्ब्रायो ट्रांसफर' कहा जाता है। फलस्वरूप 6 अगस्त, 1986 ई. को लड़की ने जन्म लिया।

इसके बाद 8 अगस्त, 1986 ई. को डॉ. इन्दिरा हिन्दुजा ने अपने साथियों डॉ. टी.सी.आनंद कुमार तथा डॉ. जे.अय्यर से मिलकर एक और नया परीक्षण किया। इस नई प्रक्रिया में महिला के **डिम्बाणु** (ovum) और पुरुष के शुक्राणुओं को मिलाकर प्लेट डिश मे एक निश्चत तापमान पर रखकर उसका भ्रूण तैयार किया गया और इसे गर्भाशय की बजाए डिम्बवाही नलिका में स्थानांतरित किया गया। यहां यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि जिसे परखनली शिशु (test tube baby) कहा जाता है, वास्तव में वह परखनली शिशु नहीं बल्कि **नन्हीं प्लेट** (petty dish) शिशु होता है। वास्तविकता यह है कि परखनली शिशु का परखनली से कोई सम्बंध नहीं होता। बल्कि समय और परिस्थिति के अनुकूल इसके (पात्र) नाम,

रूप और आकार में परिवर्तन होता रहता है। अतः यह परम्परा केवल आधुनिक काल में ही नहीं अपितु भारतीय प्राचीन विज्ञान में भी पूर्णतया विकसित थी। अन्तर केवल इतना है कि आधुनिक विज्ञान का प्रयोग परखनली में हुआ जबकि पौराणिक काल में घड़े (मृतिका भांड) में परीक्षण किया गया।

मत्स्य पुराण का प्रसंग इस विषय में उद्धृत है—

इतीन्द्रशापात् पतितो तत्क्षणात् तौ महीतले।

अवाप्तावेकदेहेन कुंभाज्जन्म तपोधन॥[16]

अर्थात-तपोधन। इस प्रकार इन्द्र के शाप से वे दोनों (अग्नि और वायु) उसी क्षण पृथ्वीतल पर गिर पड़े और एक ही शरीर से (दोनों ने) घड़े से जन्म धारण किया।

वसिष्ठोऽप्यभवत् तस्मिन जलकुंभे च पूर्ववत्।[17]

तथा—

अगस्त्य इति शान्तात्मा बभूव ऋषि सत्तमः।[18]

अर्थात—वसिष्ठ भी पहले की तरह उसी जलकुम्भ से प्रकट हुए तदुपरांत उसी जलकुंभ से ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्य उत्पन्न हुए, जो अत्यंत शांत स्वभाव वाले थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक ही घड़े में दो शिशुओं का उत्परिवर्तन किया गया। आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिक डॉ. जान क्रेनिन ने अक्तूबर, 1983 में एक परखनली से दो-दो बच्चे एक साथ पैदा करने का सफल प्रयोग किया। किन्तु यह आश्चर्य नहीं है। क्योंकि आज भी उत्तर प्रदेश के एक अनुसंधान संस्थान में चार बकरी के बच्चों को एक ही परखनली से उत्पन्न करने का दावा किया है। महाकवि तुलसीदास जी ने भी कुंभज (घड़े से जन्म लेने वाला) का इस प्रकार वर्णन किया है—

कुंभजादि मुनिनायक नाना।

गए रामु सब कें अस्थाना॥[19]

तहाँ रहे सनकादि भवानी।

जहँ घटसंभव मुनिवर ग्यानी॥[20]

और भी—

---

16. मत्स्य पुराण, अध्याय 61, श्लोक 18
17. मत्स्य पुराण, अध्याय 61, श्लोक 35
18. मत्स्य पुराण, अध्याय 61, श्लोक 36
19. मानस, लंकाकांड, 119 (1)
20. मानस, उत्तरकांड, 31 (4)

कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा।
सोषेउ सुजसु सकल संसारा ।।[21]

'रामचरितमानस' में वर्णित सीता जी के जन्म से सम्बन्धित प्रासंगिक कथा सर्वविदित है कि ये राजा जनक को हल चलाते समय खेत में एक घड़े से प्राप्त हुई थी—

भूमि विदारण होत ही, जगमंगल-दातार।
प्रगट्यो सिंहासन सुभग, अद्भुत तेज अपार ।।[22]
चारि सखि चारों तरफ, लीन्हें मुरछल हाथ।
मध्य विराजति भूमिजा, पावन जेहि गुणगाथ ।।[23]

कुछ विद्वान सीता के नामकरण का संबंध वैदिक कालीन कृषि की अधिष्ठात्री देवी से मानते हैं, जहां 'सीता' शब्द का अर्थ हल की खींची हुई रेखा होता है। सम्भवतः उनके भूमिजा कहलाने का यही हेतु रहा हो। वाल्मीकीय रामायण तथा अधिकांश राम कथाएं सीता को पृथ्वी से उद्भूत मानती है। वाल्मीकीय रामायण मे जनक विश्वामित्र से सीता की अलौकिक उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि हल की फाल के समीप प्रादुर्भाव होने के कारण उसका नाम सीता पडा—

अथ में कृषतः क्षेत्रं लांगलादुत्थिता सुताः।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता ।।[24]

तथा किसी माता के गर्भ से उत्पन्न न होने के कारण वे 'अयोनिजा' कहलायी—

वीर्यशुल्केति में कन्या स्थापितेयमयोनिजा।[25]

यही नहीं, सीता जी माता अनुसूया को अपना परिचय देती हुई स्वय को 'अयोनिजा' ही कहती है—

अयोनिजां मां ज्ञात्वा नाध्यगच्छत् स चिन्तयन्।
सदृशं चाभिरूपं च महिपालः पति मम ।।[26]

यही कारण है कि महाकवि तुलसीदास जी ने गर्भ-प्रक्रिया से आविर्भाव न होने के कारण सीता जी को धरनिसुता कहा है—

---

21 मानस, बालकांड, 255 (4)
22 रामचरित्मानस (खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई संस्करण), बालकांड, 201 (दोहा)
23 वही–, बालकाड, 209 (दोहा)
24 बाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, 66 (3-4)
25 –वही–, 66 (15)
26 –वही–, अयोध्याकाण्ड, 118 (37)

सिय पितु मातु सनेह बस विकल न सकी सभारि।
धरनिसुता धीरज धरेउ समउ सुधरमु बिचारि॥[27]

जिस घड़े में सीता जी का जन्म हुआ था वह मुनियों ने अपने रक्त से भरकर दण्डस्वरूप रावण को दिया था और साथ ही शाप दिया था कि हे रावण ! घड़े का ढक्कन उतारते ही परिवार सहित तुम्हारा सर्वनाश हो जाएगा और यही कारण था कि लंकेश्वर रावण ने यह घड़ा जनक के राज्य में दबवा दिया क्योंकि शिवजी की सभा में वेदान्त विचार पर 'रावण' जनक जी से पराजित हो जाने के कारण प्रतिशोध लेना चाहता था।

कछु बिन दिए नहीं गति आछी।
घटभरि रुधिर दिए तनु पाछी॥[28]

इस प्रकार तेजस्वी ऋषियों के रक्त से घड़े में सीता जी का आविर्भाव हुआ जो आज का विज्ञान परखनली शिशु के आविष्कार का नामकरण दे रहा है।

महाभारत के दानी पात्र करण, जिसका जन्म द्वापर युग में हुआ था, के विषय में भी यही किंवदंती है कि उनका जन्म अविवाहिता कुन्ती के गर्भ-प्रक्रिया से न होकर कान-मार्ग से हुआ था और इसी कारण इस योद्धा का नाम करण रखा गया। करण के नाम से हरियाणा प्रांत में आज भी करनाल शहर आबाद है। भारत का द्वापर युगीन विज्ञान इतना समृद्ध था कि संतान कान से भी उत्पन्न हो जाती थी तो देखना है कि संसार में आधुनिक विज्ञान इस दिशा में कब और कितनी सफलता प्राप्त करता है। द्वापर युग ही नहीं अपितु यह सफल प्रयोग सत्-युग से ही प्रचलित था। बराह पुराण के अनुसार कल्प के अन्त में भगवान विष्णु के कान से मधु और कैटभ नामक दो भयंकर असुर उत्पन्न हुए। पार्वती जी के शरीर-कोश से उत्पन्न होने के कारण देवी को कौशिकी कहा गया है। इस प्रकार निष्कर्ष निकलता है कि सत्-युग, त्रेता-युग तथा द्वापर-युग में पात्र का आकार परखनली अथवा पैटी डिश न होकर घड़ा तथा कान समरूप होगा।

जैव क्रमिक विकास

प्रकृति के क्रम विकास में कुछ ऐसे भी असाधारण दृष्टांत मिलते हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि यद्यपि किसी शिशु का विकास गर्भाशय के बिना भी हो सकता

---

27 रामचरितमानस (गीताप्रेस गोरखपुर), अयोध्याकांड, 286 (दोहा)

28. रामचरितमानस (खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई संस्करण), बालकांड, 109 (दोहा)

है, लेकिन सामान्यतः उस शिशु का ढांचा विकृत होगा। सन् 1980 ई. में पटना जिले के फजिल्लापुर गाँव के निवासी जमादार वालेश्वर के छः वर्षीय पुत्र विनोद के पेट का ऑपरेशन कर डॉक्टरों ने एक अविकसित शिशु को निकाला। उस मांस-पिण्ड में पैर, दाँत तथा 20 सेंटीमीटर लम्बे बाल भी विकसित हो चुके थे। कुछ दिनों बाद विनोद की अवस्था सामान्य हो गई। इस प्रक्रिया में निषेचित क्रिया द्वारा दो डिम्बाणु सक्रिय हो उठते हैं जिनमें से एक शिशु में ही प्रवेश कर विकसित होने लगता है अथवा सुप्तावस्था में पड़ा रहता है। तदुपरांत अनुकूल वातावरण प्राप्त कर विकसित होने लगता है। इस आसाधारण प्रक्रिया द्वारा जो असामान्य गुणात्मक तत्व विकसित होता है, वैज्ञानिक उसे **'टेराटोमा'** कहते हैं। प्रकृति के क्रम विकास में अनेक बार ऐसा भी सुना गया है कि पुरुष, नारी बन गया और महिला पुरुष बन गई अर्थात लिंग परिवर्तन भी स्वतः हो जाता है। टेराटोमा का विकास शिशु के विकास के अनुरूप होता है, क्योंकि वह उसके शारीरिक अंगो का ही एक अभिन्न अंग बन जाता है, जबकि गर्भाशय का शिशु माता से पृथक एक भिन्न अस्तित्व के रूप में पलता है। सापेक्षवाद के अनुसार इसका कारण भी मूलरूप से कारण और कार्य शृंखला से ही जुड़ा हुआ है, क्योंकि इस वृत्तात्मक रेखागणित में हम कार्य अथवा फल को भी कारण से पृथक नहीं कर सकते और इसी को वेदान्त में **'कर्मविधान'** कहते हैं–

निज कृत कर्म जनित फल पायउँ।
अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ ॥[29]

अन्यत्र–

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी।
ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी ॥
करइ जो करम पाव फल सोई।
निगम नीति असि कह सबु कोई ॥[30]

श्रीराम द्वारा सीता का परित्याग करने पर सीता जी ने वाल्मीकि आश्रम में 'लव' को जन्म दिया। महर्षि वाल्मीकि जी को सीता जी स्नान करने जाने से पूर्व 'लव' को सुपुर्द करके गई थी, किन्तु कुछ ही क्षणों में वापिस आकर वन्य जन्तुओं के भय से उसे उठाकर अपने साथ ले गई। वाल्मीकि जी ने जब

---

29. मानस, अरण्यकाण्ड, 1 (7)
30. मानस, अयोध्याकाण्ड, 76 (4)

लव' को अपने स्थान पर लेटा हुआ न पाया तो वे बहुत ही चिन्तित हुए और अपनी तपोशक्ति से 'लव' के अनुरूप ही कुशा (एक प्रकार की वन्य घास) से तयार कर एक दूसरा शिशु उस स्थान पर लिटा दिया। आधुनिक विज्ञान को यह चुनौती है कि क्या कुशा द्वारा जीव पैदा किया जा सकता है ? यह भी ध्यातव्य है कि 'लव' का भावी वंश अस्तित्व में न आकर 'कुश' द्वारा ही वंश चला। उस समय के वर्णन असंभव से प्रतीत होते हुए भी आज अनेक रूपों में संभव होते जा रहे हैं।

यद्यपि जीव और निर्जीव पदार्थ की कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं है फिर भी विज्ञान के अनुसार सूक्ष्म जीन (gene) ही वह मूलभूत जैविक परमाणु है जहाँ से निर्जीव पदार्थ अथवा जड़ पदार्थ रसायनिक प्रक्रिया द्वारा जीव में परिवर्तित हो जाता है तो इस क्रिया को वैज्ञानिक **उत्परिवर्तन** (transmutation) कहते है। इस अद्भुत सफलता को कुछ वैज्ञानिकों ने आधुनिक विज्ञान का एक चमत्कार बतलाया किन्तु यह प्रतिक्रिया वैज्ञानिकों के अहंकार के अतिरिक्त और कुछ नही है। दूसरी ओर रोमन के कैथोलिक चर्च ने इस क्रिया को ईश्वर की रचना मे हस्तक्षेप कहा है। इस अटूट प्रक्रिया में यदि कोई महापुरुष अहंकारवश अपने को सर्वथा पृथक और स्वाधीन समझ लेता है तो यह मानसिक भाव का सापेक्षभ्रम है जिसको माया कहते हैं। महाकवि तुलसीदास जी ने कहा था कि समस्त जीवो को वश में करने वाली मैं और मेरा, तू और तेरा मानसिक भाव पैदा करने वाली ही माया है—

मैं अरू मोर तो तैं माया।
जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥[31]

यदि ईश्वर को सर्वशक्तिमान कर्त्ता माना जाता है तो हमें यह भी मानना पडेगा कि आधुनिक विज्ञान के रूप में हस्तक्षेप भी वही कर सकता है। विज्ञान की अपूर्व सफलता से बहुत से लोग चिन्तित हैं कि इस वैज्ञानिक जगत का भविष्य क्या होगा ? चिन्ता करने की आवश्यकता ही नहीं क्योंकि इस सम्बंध में चिन्ता करने वाला तो कोई और है किन्तु अहंकारवश हम अपने को ही कर्त्ता मान लेते है। ऐसे लोगों को तुलसीदास जी की ये पंक्तियां याद रखनी चाहिए—

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥[32]

---

31 मानस, अरण्यकाण्ड, 14 (1)

32. मानस, अयोध्याकांड, 218 (2)

उमा दारू जोषित की नाईं।
सबहि नचावत रामु गोसाई ॥[33]
होइहि सोइ जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै साखा ॥[34]

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ ॥[35]

'कृत्रिम जीन' उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त कर मनुष्य जीन की प्रकृति अथवा प्रक्रिया में हस्तेक्षप कर जीव को एक निश्चित रूप अथवा आकृति प्रदान कर सकता है, किन्तु उसकी इच्छा, विचार, वासना, प्रकृति, भावना तथा संस्कार मे परिवर्तन लाने का कोई उपाय नहीं है क्योंकि हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहता और अभिमान आदि जीव के सहज धर्म हैं–

हरष बिषाद ग्यान अग्याना।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना ॥[36]

वेदान्तानुसार मनुष्य अपने पूर्व संस्कारों का ही मूर्तरूप है अर्थात उसकी इच्छा, वासना तथा तृष्णा द्वारा ही शरीर के परमाणु, जीन, कोश आदि एक निश्चित रूप ग्रहण कर उसके चरित्र का निर्माण करते हैं। इस प्रकार पदार्थ के विभिन्न रूप भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण करते रहेंगे। प्रस्तुत हे महाकवि तुलसीदास जी का कथन–

भानुबंस भए भूप घनेरे।
अधिक एक तें एक बड़ेरे
जनम हेतु सब कहँ पितु माता।
करम सुभासुभ देइ विधाता ॥[37]

वैसे तो प्रत्येक जाति (species) अपनी जैसी ही संतान उत्पन्न करती हे फिर भी प्रत्येक जाति के सदस्यों में परस्पर कुछ न कुछ भिन्नता होती जाती है। समय बीतने के साथ इस भिन्नता के कारण एक स्पीशीज़ में उपजातियां बनती जाती हैं, यद्यपि उनके आकार तथा मूल संरचना में उस स्पीशीज़ के सभी लक्षण विद्यमान रहते हैं। ऐसे ही अन्तरों को 'विभिन्नता' कहते हैं। आप जानते है कि

---

33 मानस, किष्किंधाकांड, 10 (4)
34 मानस, बालकाण्ड, 51 (4)
35 मानस, अयोध्याकाड, 171 (दोहा)
36 मानस, बालकाण्ड, 115 (4)
37 मानस, अयोध्याकाण्ड, 254 (3)

पृथ्वी पर अनेक प्रकार के जीव हैं तथा सब बाह्य आकृति में एक दूसरे से अलग-अलग हैं।

जैव-विकासवाद के अनुसार जब जीव अपनी पृथ्वी पर सबसे पहली बार उत्पन्न हुआ था तो वह अत्यधिक सरल था। वह अमीबा के समान एक ही कोशिका का था। किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया जीवधारी धीरे-धीरे जटिल होते गए और अन्त में मनुष्य जैसे जटिल जन्तु की उत्पत्ति हुई। सभी जीवधारी जो कि इस समय पाए जाते हैं बहुत पहले पाए जाने वाले सरल जीवों से विकसित हुए हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रत्येक जाति (स्पीशीज़) स्थिरता के बावजूद एक निश्चित सीमा में तीव्र परिवर्तन की स्थिति में है। जब वह परिवर्तन सीमा के बाहर हो जाते हैं तो वह स्पीशीज़ को जन्म देती है। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में जीवों की उत्पत्ति चौरासी लाख योनियों में है—

आकर चारि लच्छ चौरासी।
जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥[38]

विकास के समर्थन में प्राथमिक तथा सीधा प्रमाण **जीवाश्मों** (fossils) की सहायता से दिया जाता है। जीवाश्म **अवसादी शैलों** (sedimentary rocks) मे निम्नतर स्तरों पर पाए जाते हैं। सबसे नीचे के स्तरों में निम्न श्रेणी के जन्तुओ के जीवाश्म मिलते हैं। अवसादी शैलों के ऊपर की स्तरों में क्रमशः अधिक विकसित जन्तुओं तथा पौधों के जीवाश्म मिलते हैं। इन जीवाश्मों की सहायता से न केवल हम उन जन्तुओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं अपितु उनसे हम उस समय की भू-वैज्ञानिक परिस्थितियों का आकलन भी कर सकते हैं। जीवाश्मों के अध्ययन से हमें मनुष्य की उत्पत्ति के बारे में वहुत से प्रमाण मिलते हैं। डेढ़-दो करोड वर्ष पहले उष्ण कटिबंध के जंगलों में बड़े आकार के बन्दर पाए जाते थे। बहुत से प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनुष्य तथा कपि के पूर्वज बन्दर के समान थे और उष्ण कटिबन्ध के जंगलों में वास करते थे। अतः कहा जाता है कि कपि तथा मनुष्य के पूर्वज ऐसे प्राणी रहे होंगे जिनमें कपि एवं मनुष्य दोनों के ही गुण हों। प्राणियों का यह समूह दो मुख्य धाराओं में विकसित हुआ। एक विकसित होकर कपि बन गया तथा दूसरा मनुष्य। कुछ लोग कपि को वानर नाम देने लगे।

सबसे प्राचीन मनुष्य जावा मनुष्य (चित्र 6.13) के नाम से पुकारे जाते है क्योंकि इस मनुष्य का जीवाश्म सर्वप्रथम जावा द्वीप में मिला था। आकृति के

---

38 मानस ——— 41 (2)

चित्र 6.13
जावा मनुष्य

चित्र 6.14
नियनडर्थल
मानव

चित्र 6.15
क्रो-मैगनन
मानव

जीवाश्मों से बने हुए चित्र (दायीं ओर)

आधार पर कह सकते हैं कि हनुमान जी के पूर्वज शायद इसी क्षेत्र के निवासी हों। जावा मनुष्य से अधिक विकसित पेकिंग मानव का जीवाश्म पेकिंग में मिला। यह आग का उपयोग करता तथा पत्थरों से बने हुए प्राचीन हथियार उपयोग में लाता था। मनुष्य के विकास की शृंखला में पेकिंग मानव के बाद नियनडरथल मानव (चित्र 6.14) आता है। इस मनुष्य का जीवाश्म सर्वप्रथम जर्मनी के नियनडरथल में मिला था। यह मानव इस पृथ्वी पर 50,000 से लेकर 1,50,000 वर्ष पहले वास करता था। नियनडरथल मनुष्य के बाद क्रो-मेगनन मानव (चित्र 6.15) उत्पन्न हुए। वे आधुनिक मनुष्य से बहुत मिलते-जुलते थे। जावा मानव, पेकिंग मानव तथा नियनडरथल मानव की गणना आदिम मानवों में होती है परन्तु क्रो-मेगनन मानव की गिनती आधुनिक मनुष्य में होती है। आधुनिक मनुष्य का वैज्ञानिक नाम होमोसेपीन्स है। ये पृथ्वी पर 25,000 से 50,000 वर्ष पहले उत्पन्न हुए।

विभिन्न विधियों से जीवाश्मों तथा अवसादी शैलों की लगभग सही उम्र पता लगाई जा सकती है और इन विधियों की सहायता से सम्पूर्ण भू-वैज्ञानिक कल्प बहुत से 'महाकल्पों' में विभाजित किया जा सकता है। प्रत्येक महाकल्प बहुत सी 'अवधियों' में तथा प्रत्येक अवधि (देखें परिशिष्ट) में बहुत से युग होते हैं।

कुछ विशेष प्रकार के प्रजनन विधियों के अतिरिक्त सभी बहुकोशकीय जन्तुओं में जन्तु-उत्पत्ति एक युग्मज (ज़ाइगोट) या निषेचित अण्डे के रूप में होती है। प्रत्येक स्पीशीज के **युग्मज** (Zygote) में उसी जाति के एक जीव को पैदा करने की विशेषता होती है। उदाहरणार्थ एक अमीबा अपनी जाति का अमीबा ही पैदा कर सकता है। अर्थात अमीबा के स्पीशीज़ से अमीबा ही उत्पन्न होता है। परन्तु भ्रूणीय अभिवर्धन में कुछ गुण ऐसे होते हैं जो कि किसी एक वर्ग के प्राणियों में समान होते हैं। इससे हम यह सोच सकते हैं कि एक समान अन्तिम निष्कर्ष एक जैसी परिवर्धन प्रक्रिया से बनते हैं। कुछ परिवर्धन समानताएं (चित्र : 6.16) प्रस्तुत चित्र में दिखाई गई हैं। प्रत्येक शृंखला एक निषेचित अण्डे (ज़ाइगोट) से प्रारम्भ होती है। विभिन्न स्पीशीज़ के जन्तु अपने बाह्य आकार में एक दूसरे से भिन्न हो सकते हैं परन्तु उनकी रासायनिक रचना में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है। अतः जीव की उत्पत्ति एक अण्डे से आरंभ हुई और वायुमंडल में पृथक-पृथक रूप में उनका आविर्भाव हुआ। यही कारण है कि महाकवि तुलसीदास जी ने जीव की उत्पत्ति के चार रूप (अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज) दिए हैं—

आकर चारि जीव जग अहहीं।
कासीं मरत परम पद लहहीं॥[39]

और ये चारों रूप चौरासी लाख योनियो में जल, थल एवं नभ में विद्यम।

आकर चारि लाख चौरासी।
जाति जीव जल थल नभ बासी॥[40]
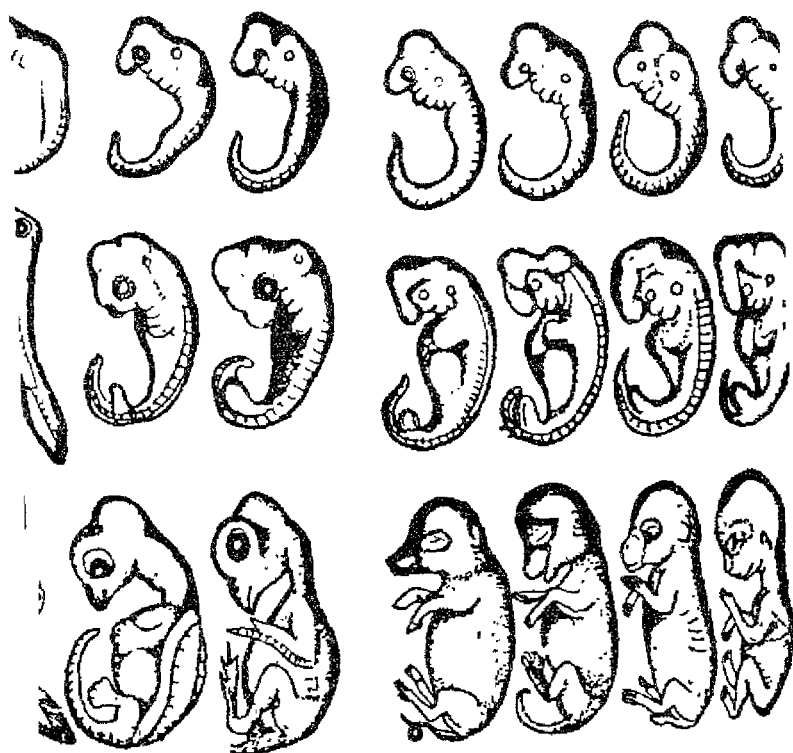
त्र 6.16 : विभिन्न कशेरुकों के भ्रूण अ. मछली; ब. मछली; स. चूजा; ज. सूअर; द. गाय का बछड़ा; य. शशक; र. मनुष्य

ानस ——— 45 (2)

ानस 7 1)

वैज्ञानिक नियम का दार्शनिक दृष्टिकोण यह है कि यदि मनुष्य तथा जीव-जन्तुओं की उत्पत्ति परमात्मा द्वारा हुई है तो उसका अंत भी उसी परमशक्ति मे होगा। यदि ब्रह्मांड का सम्पूर्ण पदार्थ किसी निश्चित नियम के अनुसार असंख्य वृत्तात्मक प्रक्रियाओं में रूपांतरित हो रहा है तो उसी पदार्थ द्वारा बना हुआ हमारा शरीर सामान्यतः उस निश्चित नियम, प्रक्रिया तथा भौतिक परिधि से बाहर नही हो सकता। केवल गुण-विकार युक्त चेतना पुरुष ही इस प्रबल भौतिक प्रक्रिया से मुक्त होकर निर्गुण और निराकार हो सकता है। यहीं पर जीव को मुक्त होने के लिए द्वन्द्वात्मक संघर्ष करना पड़ता है।

भारतीय दर्शन के अनुसार यदि पदार्थ के परमाणु कृत्रिम रूप से जीन-कोष तथा जीव में परिवर्तित हो सकते हैं तो यह उनकी अन्तिम अवस्था नहीं होगी बल्कि पदार्थ के ही नियमों के अनुसार वे सभी तत्व घूम-फिर कर अपने मौलिक रूप में वापस आ जाएंगे। उदाहरणार्थ यदि पदार्थ के परमाणु जीन-कोष आदि के रूप में क्रमविकसित होकर मनुष्य के शरीर का स्थूल रूप से निर्माण कर सकते हैं तो मृत्यु के पश्चात वही तत्व सूक्ष्म रूप ग्रहण कर मनुष्य के सूक्ष्म शरीर के रूप में परिवर्तित हो जाएंगे तथा उसके अनुकूल ही सूक्ष्म लोक (astral plane) का भी निर्माण हो जाएगा। इसीलिए मनुष्य न तो परमाणु, जीन, कोष आदि का समूहमात्र है और न ही पदार्थ का एक विशिष्ट स्वरूप बल्कि वह नित्य, शाश्वत और अविनाशी आत्मा है जिसका न कभी नाम-रूप परिवर्तन होता है और न ही उसका निर्माण तथा विनाश।

इस भौतिक जगत में पदार्थ के विभिन्न रूप केन्द्रीय शक्ति मन तथा उसकी सहायक शक्तियों (देश-काल-निमित्त, गति, चुम्बकत्व, गुरुत्वाकषण आदि) द्वारा ही विभक्त होते हैं। परन्तु इन शक्तियों का अपने में कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है बल्कि ये केन्द्रीय शक्ति मन पर ही निर्भर करती हैं, जो पदार्थ के भिन्न-भिन्न नाम-रूपात्मक वस्तुओं को प्रतिबिम्बित करता है। अतः जब हम परमाणु, जीन, कोष आदि सूक्ष्म तत्वों की कल्पना मन में करते हैं तो इसकी धारणा तब तक साकार रूप ग्रहण नहीं कर पाएगी जब तक कि इन सूक्ष्म तत्वों का सम्बंध किसी स्थूल वस्तु, शरीर, जीव-जन्तु तथा वनस्पति से नहीं जोड़ लिया जाता, क्योंकि इन सूक्ष्म तत्वों का अपने में कोई अस्तित्व नहीं है।

7
मनोविज्ञान

चेतना का जटिल विधान अनादिकाल से मानव को चुनौती देता रहा है। मनुष्य ने उसे समझने का जितना प्रयास किया है, उतना ही वह उसमें उलझता गया है। परन्तु मनुष्य की ज्ञान-पिपासा ने पराजय स्वीकार नहीं की। अपनी इस दुर्दम जिज्ञासा के कारण ही वह मन के अज्ञात प्रकोष्ठों को प्रकाश में ला सका है। मन को समझाने का यह प्रयास दो रूपों में होता रहा है। एक ओर मनुष्य विवेचन और विश्लेषण द्वारा मानसिक प्रक्रिया की शोध करता रहा है तो दूसरी ओर वह मन के स्पन्दनों को मुखर बनाकर नई सृष्टि, जिसका विधाता वह स्वयं है, खड़ी करता रहा है। पहले प्रयास की परिणति मनोविज्ञान में हुई है जबकि दूसरे की साहित्य में।

मानसिकता

साहित्य और मनोविज्ञान, दोनों का मूल सुख-दुख की द्वन्द्वात्मक अनुभूति में है। मनुष्य दुख से प्रताड़ित होकर सुख की खोज करता है। इसके साथ ही वह दुःख का कारण और सुख का उपाय भी जानना चाहता है—एक से बचने के लिए और दूसरे को पाने के लिए। इसीलिए वह पदार्थ-विज्ञान और दार्शनिक शोधों मे लगा रहा है—

> **असुर समूह सतावहिं मोही।**
> **मैं जाचन आयउं नृप तोही॥**

अनुज समेत देहु रघुनाथा।
निशिचर वध मैं होय सनाथा॥[1]

पदार्थ-विज्ञान द्वारा वह अधिकारिक सुख-सुविधाएं जुटाने का प्रयत्न करता रहा है और दार्शनिक विवेचन द्वारा यह जानने की चेष्टा करता रहा है कि इस द्वन्द्वात्मक अनुभूति का स्रोत कहां है। इस खोज के दौरान ही वह इस प्राथमिक निष्कर्ष पर पहुंच सका :

मनो पुब्बंगमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया,
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं व वहृतो पदं,
मनो पुब्बंगमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा,
ततो नं सुखमन्वेति छायाव अनपायिनी।[2]

सुख-दुःख की यह द्वन्द्वात्मक अनुभूति विचारकों को मन के सूक्ष्म विश्लेषण की ओर ले गई। फलतः मनोवेत्ता मन के अनेक रहस्यों का उद्घाटन कर सके ओर निरन्तर कर रहे हैं, किन्तु सुख-दुःख ही द्वन्द्वात्मक अनुभूति का सिद्धांत आज भी उतना ही मान्य है, जितना मनोविज्ञान के आरम्भ में था। मनोविज्ञान अन्तःकरण की गहराइयों को खोल-खोलकर, कुरेद-कुरेद कर देखता है। उनकी परख और व्याख्या करता है और तब कहीं निष्कर्षों पर पहुंचता है। यहां आकर मनोविज्ञान रुक जाता है, परन्तु जहां मनोविज्ञान रुकता है, साहित्य वहीं से आगे बढ़ता है। साहित्य के आरम्भ से ही उसमें मानसिक वृत्तियों का निरूपण होता आया हे। जैसे-जैसे मन-सम्बन्ध ज्ञान की वृद्धि होती गई, वैसे-वैसे ही साहित्य की प्रवृत्ति भी उनके सूक्ष्म निरूपण की ओर होती गई। साहित्य ने मनोजगत् के ज्ञान की उपेक्षा भी नहीं की, प्रत्युत् वह मनोविज्ञान की नवीनतम शोधों का स्वागत करने के लिए सदा उत्सुक रहा है।

साहित्यकार को अपनी रचना में मानसिक वृत्तियों को इस प्रकार नियोजित करना होता है कि उनका परस्पर तनाव कम-से-कम हो सके। संसार में अतृप्त और कुंठित लोगों की कमी नहीं है, किन्तु सबके सब साहित्यकार नहीं बन जाते। जो वस्तु बाह्य जगत् में नहीं मिलती, मन उसे अन्तर्जगत् में पाने का प्रयास करता हे। जो होंठ चुंबनों से वंचित रह जाते हैं, वे गाने लगते हैं और यही कारण है

---

1. मानस, बालकाण्ड, 206 (5)

2 धम्मपद, पृष्ठ 1-2

कि कुंठाओं की तीव्र प्रेरणा से जो गीत फूटते हैं वे मानव-मन को सहज ही प्रिय होते हैं, इस प्रकार अभाव की चेतना काव्य की बड़ी प्रेरक शक्ति है। काव्य-सर्जना का सम्पूर्ण श्रेय अतृप्ति और कुंठाओं को ही नहीं है बल्कि उसके लिए कुछ मूल प्रवृत्तियों का बलवान होना भी आवश्यक है। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण दो मूल प्रवृत्तियां हैं–(1) आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति और (2) रचना की प्रवृत्ति। आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति से सम्पन्न व्यक्ति दूसरों की निगाह में आना चाहता है, वह अपने आपको दूसरों के समक्ष दिखलाना चाहता है। इस प्रवृत्ति में दूसरों का महत्व रहता है। साहित्यकार अपनी कृति के मूल्यांकन के लिए दूसरों की दृष्टि को प्रधानता देता है अर्थात वह अपनी सृष्टि दूसरों की दृष्टि में रखकर प्रस्तुत करता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'मानस' के आरम्भ में लोक-सम्मान को महत्व दिया है–

जेहि प्रबंध बुध नहिं आदरहीं।
सो श्रम आदि बाल कवि करहीं।।[3]

तथा–

नृप किरीट तरूनी तनु पाई।
लहहिं सकल सोभा अधिकाई।।
तैसेहिं सुकवि कवित बुध कहहीं।
उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं।।[4]

रचना की प्रवृत्ति अपने आपको अनेक प्रकार के निर्माणों में व्यक्त करती है। मिट्टी के घरौंदे से लेकर संसार के दार्शनिक-विचार तथा विधि-विधान इसी की उपज है। तुलसीदास जी लिखते हैं–

निज कवित्त केहि लाग न नीका।
सरस होउ अथवा अति फीका।।[5]

गोस्वामी तुलसीदास जी के मन में सिद्धों और नाथों की वीभत्स साधनाओं के प्रति इतना रोष था कि वह उन्हें 'मानस' जैसा ग्रंथ लिखने के लिए प्रेरित कर सका, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि राम-कथा के महात्म्य वर्णन के प्रसग में उन्होंने लिखा है–

---

3 मानस, बालकाण्ड, 13 (4)
4 मानस, बालकाण्ड, 10 (1-2)
5 मानस, बालकाण्ड, 7 (6)

कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभी पाखंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि, ईंधन अनल प्रचंड॥[6]

उत्तेजना प्रवृत्ति

'रामचरितमानस' की कथा के वक्ता तीन हैं –शिव, याज्ञवलक्य और कागभुंशुडि। श्रोता हैं–पार्वती, भारद्वाज और गरूड़। इन तीनों श्रोताओं ने अपना यह मोह प्रकट किया है कि कहीं राम मनुष्य तो नहीं हैं। तीनों वक्ता जो कथा कह रहे है, वह इसी मोह को छुड़ाने के लिए है। मनुष्य की मानसिक शक्ति के मूल मे कार्य करने वाली एक मूल प्रवृत्ति है–जिज्ञासा। इसके साथ आश्चर्य का भाव हुआ है। अतः यही कारण है प्राचीन कथाओं में मनुष्य स्वभाव-सम्बंधी जिज्ञासा की अभिव्यक्ति के साथ कुछ अतिप्राकृतिक तत्वों का समावेश भी रहता है। 'मानस' मे यह सम्मिश्रण बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। मानस-कथा तीन-तीन व्यक्तियों की साश्चर्य जिज्ञासा को शांत करने के लिए सुनाई गई है। पार्वती की इस जिज्ञासा की तृप्ति के लिए तुलसीदास जी के शब्दों में–

जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि बिरहँ मति भोरि।
देख चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥[7]

शिवजी सम्पूर्ण मानस-कथा को पार्वती की इसी मानव-अतिमानव सम्बधी जिज्ञासा को शांत करने के लिए सुनाते हैं। 'मानस' की लोकप्रियता के मूल मे यही तथ्य है क्योंकि वह पाठक अथवा श्रोता की जिज्ञासा को अधिक से अधिक मात्रा में शांत कर सकती है।

विश्व प्रसिद्ध भौतिकवेत्ता सर आइज़क न्यूटन के गति के नियमानुसार प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होती है। यदि आप किसी को उत्तेजित करेंगे तो प्रतिक्रिया स्वरूप वह भी समुचित कार्रवाई करेगा या प्रत्युत्तर देगा। इसलिए क्रिया-सिद्धांत सम्बंधी सबसे पहला सिद्धांत **व्यवहारवादी** (behavioural) है व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक **उत्तेजना-प्रतिक्रिया** की प्रक्रिया को प्रधानता देते हैं और शारीरिक क्रिया (व्यवहार) के माध्यम से मन का अध्ययन करते हैं।

"The theory of actions most widely accepted by Psychologists at the present time is, perhaps, the theory which regards all organisms

---

6 मानस, बालकाण्ड, 32 (क)

7 मानस, बालकाण्ड, 108 (दोहा)

as merely machines and all behaviour as mechanically determines

W. McDougall, Social Psychology, p. 313

साधारणतः मन क्या है—इस विषय में व्यवहारवादी अधिक जानने की चेष्टा नही करते। उनके अध्ययन का मुख्य विषय मन क्या कर सकता है, यही रहता ह। प्राणी जो कुछ करता है, उसमें वे मन की अभिव्यक्ति पाते हैं, प्राणी के आचरण और उसके कर्मो से परे भी कोई चेतन सत्ता है, अथवा कर्मो से परे भी चेतना का कहीं स्थान है, वे इस बात को स्वीकार नहीं करते।

यद्यपि महाकवि तुलसीदास जी उच्च कोटि के आस्तिक थे, जिन्होंने सर्वव्यापी चेतनसत्ता के अस्तित्व का उद्घोष बड़े प्रबल स्वर में किया है—

विषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।
मायाधीस ग्यान गुन धामू॥[8]

किन्तु कुछ प्रसंग ऐसे भी अवश्य मिल जाते हैं जहां व्यवहारवादियों का सिद्धांत व्यंजित होता है। इस सिद्धांत की बहुत ही अच्छी व्यंजना उस प्रसंग मे आई है, जहां हनुमान जी सीता से अशोक वाटिका के फल खाने की अनुमति चाहते हैं, वे सीता से कहते हैं—

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा।
लागि देख सुंदर फल रूखा॥[9]

यहां पर वृक्ष के फल उत्तेजक हैं और भूख प्रतिक्रिया है, अतः किसी चेतना का प्रश्न हीं नहीं उठता। रावण को दिए गए हनुमान के निम्न उत्तर से स्पष्ट है कि यह **उत्तेजना-प्रतिक्रिया** केवल देह-रक्षा के लिए है—

खायउँ फल प्रभु लागि भूखा।
कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परमप्रिय स्वामी।
मारहिं मोहि कुमारग गामी॥[10]

---

8 मानस, बालकाण्ड, 116 (3-4)

9 मानस, सुंदरकाण्ड, 16 (4)

10 मानस, सुंदरकाण्ड, 21 (2)

इस प्रकार की घटनाओं में सर्वाधिक रावण-अंगद-संवाद तथा रावण-मंदोदरी-संवाद में उल्लेखनीय हैं। ये दोनों प्रसंग रावण को उसकी हीनता का बोध कराते हुए उसे उत्साहित कर देते हैं। अंगद के शब्द रावण के मन में भय और हीनता को उद्‌बुद्ध करने के लिए उत्तेजक का काम करते हे। इस पर भी जब रावण अपनी शक्ति बघारता जाता है और अभिमानपूर्वक कहता हे—

सुर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुने अनल अति हरषि बहु बार साखि गौरीस॥[11]

तो अंगद एक ही उक्ति से उसके अभिमान को चूर-चूर कर देता है—

सुनु मतिमंद देहि अब पूरा।
काटें सीस कि होइअ सूरा॥
इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा।
काटइ निज कर सकल सरीरा॥[12]

जब रावण राम की सेना की कार्यवाही से चिंतित घर लौटता है तो उसकी पत्नी भी उससे भयोत्तेजक प्रार्थना ही करती है—

तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा।
खल खद्योत दिनकरहि जैसा॥
तासु बिरोध न कीजिअ नाथा।
काल करम जिव जाके हाथा॥[13]

एक ओर अंगद रावण को उसकी हीनता का बोध कराता है तो दूसरी ओर मदोदरी राम के पराक्रम का बखान करती है। दोनों का परिणाम एक ही होता है। रावण के मन में आशंका, भय और निराशा की जड़ें जमने लगती हैं ओर वह आतंकित हो जाता है।

'मानस' मे कुछ ऐसे भी उदाहरण पढ़ने में आते हैं जहां उत्तेजना-प्रतिक्रिया दोनों ओर समान रूप से होती है। इस प्रकार की उत्तेजना-प्रतिक्रिया का बहुत ही अच्छा लक्ष्मण-परशुराम-संवाद है। इस प्रकार का एक और उदाहरण सीता-राम का पूर्वराग है। दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति एक साथ राग का उदय होता हे। यह आकर्षण ही पारस्परिक प्रतिक्रिया है। यह घटना 'मानस' में व्यवहारवाद

---

11 मानस, लकाकाण्ड, 28 (दोहा)

12 मानस, लंकाकाण्ड, 28 (5)

13 मानस, लकाकाण्ड, 5 (3-5)

का एक ऐसा उदाहरण है, जहां दोनों पक्षों में पारस्परिक [illegible] प्रतिक्रिया एक साथ सक्रिय है–

देखन मिस मृग विहग तरू फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥[14]
जानि कठिन सिवचाप बिसूरति।
चलि राखि उर स्यामल मूरति ॥
x x x
परम प्रेममय मृदु कीन्ही।
चारू चित्त भीतीं लिखि लीन्ही ॥[15]

सुख-लालसा

क्रिया-सम्बंधी दूसरा सिद्धांत आनन्द प्राप्ति की लालसा को कार्य की मूल प्रेरणा मानता है। मनुष्यों के अनुभव से यही ज्ञात होता है कि वे या तो आनंद पाना चाहते हैं या दुःख को कम करना चाहते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार किसी बड़े सुख की आकांक्षा के कारण छोटे सुख का त्याग भी किया जा सकता है। यद्यपि 'मानस' जैसे सम्पूर्ण कृतित्व में इस सिद्धांत के उदाहरण बहुत ही कम हैं, फिर भी अधिकांश पात्रों की क्रियाएं इसी सिद्धांत से परिचालित होती हैं, इसके प्रमाण मे 'मानस' की अनेक घटनाएं प्रस्तुत की जा सकती हैं।

पार्वती शिव की प्राप्ति के निमित्त कठोर तप करती है। वह तपस्या इतनी कठिन है कि अब तक कोई वैसी तपस्या नहीं कर सका है–

अस तप काहु न कीन्ह भवानी।
भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी ॥[16]

परन्तु इस कष्ट का प्रयोजन ऐसे फल की कामना है, जिसकी प्राप्ति के सामने इस समस्त कष्ट की व्यथा फीकी पड़ जाती है। जैसे ही पार्वती को उस फल की प्राप्ति का आश्वासन मिलता है, वे तपस्या के कष्टों के होते हुए भी अत्यत प्रसन्न हो जाती हैं–

---

14 मानस, बालकांड, 234 (दोहा)

15 मानस, बालकांड, 234 (1-2)

16 मानस, बालकांड, 74 (1)

सुनत गिरा विधि गगन बखानी।
पुलक गात गिरिजा हरषानी ॥[17]

इसी प्रकार का दूसरा उदाहरण राम के वन-गमन के प्रसंग में मिलता है। इस प्रसंग में सीता जी उन सभी भयों की उपेक्षा करती हैं जो श्रीराम उसे दिखलाते है क्योंकि पति-वियोग उन सभी कष्टों से बढ़कर है—

बन दुःख नाथ कहे बहुतेरे।
भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना।
सब मिलि होहिं न कृपा निधाना ॥[18]

इसलिए वह बड़े कष्ट से बचने के लिए छोटे कष्ट स्वीकार कर लेती है। इतना ही नहीं, पति के साथ रहने से, उनके दर्शन मात्र से वह वन के कष्टो को भूल जाएगी। मानसिक सुख के लिए वह स्थूल एवं भौतिक सुखों का परित्याग करने के लिए तैयार हो जाती है—

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई।
प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई ॥
x x x
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें।
सरद बिमल बिधु बदनु निहारें ॥[19]

सुख पाने की लालसा मनुष्य में इतनी प्रबल होती है कि वह आसन्न आपदाओं की ओर से आँखें बंद कर लेता है और सुख के लालच में वह भयकर स्थिति को आमंत्रित कर लेता है। 'मानस' में प्रसंग आया है कि प्रतापभानु राज्य-विस्तार के सुख की लालसा के कारण अपने दुर्भाग्य को न्यौता देता है। सुख की इसी इच्छा के कारण वह कपट-मुनि की सारी शर्तें स्वीकार कर लेता है और परिणामस्वरूप सब कुछ खो बैठता है—

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा।
सत्यकेतु तव पिता नरेसा ॥
x x x

---

17 मानस, बालकांड, 74 (3)

18 मानस, अयोध्याकाण्ड, 65 (3)

19 मानस, अयोध्याकांड, 64 (1-4)

प्रभुहिं तथापि प्रसन्न बिलोकी।
माँगि अगम बर हाउँ असोकी ॥[20]
जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ ॥[21]
सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा।
बिप्रश्राप किमि होइ असाँचा ॥[22]
काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा।
भयउ निसाचर सहित समाजा ॥
दससिर ताहि बीस भुज दंडा।
रावन नाम बीर बरिबंडा ॥[23]

इसी प्रकार जब मंथरा कैकेयी के सामने भविष्य का भयावह चित्र प्रस्तुत करती है तो वह (मंथरा) उस तिरस्कार की संभावना के विरुद्ध अत्यंत विनाशकारी स्थिति पैदा कर देती है और इस प्रकार कैकेयी की कुपित होने वाली समस्त कार्यवाही भावी कष्ट से बचने के लिए है—

रामहि तिलक कालि जौं भयउ।
तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयउ ॥[24]
सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का।
देहु एक बर भरतहि टीका ॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी।
पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥
तापस बेष बिसेषि उदासी।
चौदह बरिस रामु बनबासी ॥[25]

सुख-लालसा का अत्यंत हेय और स्वार्थता से परिपूर्ण रूप देवताओं और इन्द्र की क्रियाओं में पाया जाता है। वे अपने सुख के लिए षड्यंत्र कर मंथरा की बुद्धि भ्रष्ट कर देते हैं। देवताओं द्वारा मतिभ्रष्ट मंथरा कैकेयी को कुमार्ग पर ले जाती है। इसके पीछे मूलतः देवताओं की सुख-लालसा ही काम कर रही है—

---

20 मानस, बालकांड, 163 (1-4)
21 मानस, बालकांड, 164 (दोहा)
22 मानस, बालकांड, 174 (4)
23 मानस, बालकांड, 175 (1)
24 मानस, अयोध्याकांड, 18 (3)
25 मानस, अयोध्याकांड, 28 (1-2)

विपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुर काजु ॥[26]
नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ॥[27]

विरोध प्रवृत्ति

क्रिया-सम्बंधी एक अन्य सिद्धांत विचार को महत्व देता है। इस सिद्धांत के अनुसार मस्तिष्क न्यूनाधिक व्यवस्थित विचारों का समुच्चय है तथा प्रत्येक विचार अपने आप में एक इकाई भी है और क्रिया की प्रवृत्ति भी। उच्च-स्तर की सभी क्रियाओं को तथा-कथित विचार-प्रेरित क्रिया अर्थात कर्म को उस क्रिया के विचार की चेतना का सीधा ही परिणाम कहा जाता है—

"According to this theory, the mind consists of a more or less organised system of ideas; and every idea is both an intellectual entity and a tendency to action. The type of all the higher forms of action is so called ideo-motor action, the action which is supposed to result directly from the presence in consciousness of the idea of that action."

Ibid, P. 323

मानस के कथा-प्रसंगों में तुलसीदास जी के जिस असाधारण मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय मिलता है, उसकी पुष्टि 'मानस' के पात्रों के चरित्र से भलीभांति हो जाती है। गुण और अवगुण से सनी हुई विधाता की सृष्टि का वर्णन सरल नहीं है। दुष्टों के पापों और साधुओं के गुणों की कथा अगाध समुद्र के समान है, किन्तु संग्रह या त्याग के लिए उन्हें पहचानना आवश्यक है। अतः गोस्वामी जी ने वर्णन किया है—

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा।
उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहिं ते कछु गुन दोष बखाने।
संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥[28]

---

26. मानस, अयोध्याकाड, 11 (दोहा)
27. मानस, अयोध्याकांड, 12 (दोहा)
28. मानस, बालकांड, 5 (1)

यह उक्ति अपने संदर्भ में संत-असंत वर्णन की सार्थकता सिद्ध करती है और व्यापक अर्थ में 'मानस' की अंतरात्मा की ओर संकेत। तुलसीदास जी ने समस्त 'मानस' में अपने इस विश्वास को व्यक्त किया है कि समस्त सृष्टि सत् और असत् तत्वों से परिपूर्ण है। उनका यह विश्वास निराधार नहीं है। आधुनिक मनोविज्ञान भी इस बात का साक्षी है कि मनुष्य में कुछ आंतरिक विशेषताएं (जैसे क्रोध, भय, खेद, जिज्ञासा, अभिमान, विनम्रता तथा प्रेम) सार्वभौम रूप से पाई जाती है। तुलसीदास जी ने उत्तरकांड में मनुष्य की ऐसी अनेक वृत्तियों का उल्लेख किया है जिनकी सत्ता सार्वभौमिक है—

कीट मनोरथ दारू सरीरा।
जेहि न लाग घुन को अस धीरा॥
सुत वित लोक ईषना तीनी।
केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी॥[29]

कभी-कभी जब मनुष्य के समक्ष दुविधा होती है तो वह विचारों का सहारा लेकर ही कर्म करता है। रावण जब मारीचि को कपट मृग बनने के लिए बाध्य करता है तो मारीचि अपना कर्त्तव्य विचारों के आधार पर ही निश्चित करता है—

तब मारीचि हृदयं अनुमाना।
नवहि बिरोधें नहिं कल्याना॥

x x x

अस जियं जानि दसानन संगा।
चला राम पद प्रेम अभंगा॥[30]

इसी प्रकार की द्विधा कालनेमि के समक्ष आती है। वह भी मारीचि की तरह विचार कर अपने कर्त्तव्य का निर्णय करता है—

सुनि दसकंठ रिसान अति, तेहिं मन कीन्ह बिचार।
रामदूत कर मरौं बरु, यह खल रत मल भार॥[31]

यह आवश्यक नहीं कि विचार सदैव ही सत्पक्ष की ओर झुके हुए हों। कभी-कभी विचारों से असत् निष्कर्ष भी निकाले जाते हैं। इन्हीं विचारों को आजकल **विरोध-प्रवृत्ति** (Negative attitude) की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसी प्रवृत्ति वालों को आप कितना ही क्यों न समझा लें किन्तु उनकी बुद्धि सुमार्ग पर कार्य करेगी

---

29 मानस, उत्तरकांड, 70 (3)

30 मानस, अरण्यकांड, 25 (2-4)

31 मानस, लंकाकांड, 56 (दोहा)

ना महा। रावण विचारा द्वारा सदा ही असत् निष्कर्षों पर पहुंचता है—

होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ ऐहा॥
जौं नर रूप भूप सुत कोऊ।
हरिहउं नारि जीति रन दोऊ॥[32]

इस प्रकार विचार सत् और असत् दोनों प्रकार के कार्यों से सम्बन्धित रहता है किन्तु एक सिद्धांत केवल सत्कर्मों को दूसरे प्रकार के कर्मों से पृथक रखकर देखता है। तुलसीदास जी मानव-प्रकृति में सत् और असत् तत्व को मानव की शक्ति से परे मानते हैं और व्यक्ति के कर्मों को उसके स्वभाव के अनुसार निर्दिष्ट। उनके अनुसार यह गुण-दोषमयी सृष्टि विधाता ही रचना है—

जड़ चेतन गुण दोष मय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार॥[33]

अपरिष्कृत प्रवृत्ति

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार मानव व्यवहार को मूल प्रवृत्ति कहीं अव्यवहृत रीति से संचालित करती हैं तो कहीं वे **परिष्कृत रूप** में अपने आपको व्यक्त करती है।

"The human mind is endowed with a number of instincts which are very similar to some found in the higher animals, for example, the instinct of fear, of sex, and of pugnacity. While these are displayes in a simple and unmistakable form of behaviour among animals, their operation in human beings is so largely modified and obscured by acquired modifications and the power of self conscious control, that without the analogy presented by animal behaviour the task of defining human instincts would be one of extreme difficulty."

W.Mc Dougall-Psychology, the study of behaviour, p. 169

अतः **अपरिष्कृत रूप** में मूल प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति उन प्रसंगों में देखी जा सकती है जहां मन की कोई वृत्ति पात्र-अपात्र तथा परिस्थिति के संदर्भ से निरपेक्ष रूप में व्यक्त हो। जब वह वृत्ति किसी पात्र-विशेष से परिस्थिति-विशेष के सदर्भ मे व्यक्त होती है तो परिष्कृत कहलाती है।

---

32. मानस, अरण्यकाड, 22 (3)

33. मानस, बालकांड, 6 (दोहा)

अपरिष्कृत मूल प्रवृत्तियाँ अधिकांशतः निम्न श्रेणी के प्राणियों (पशुओं) में घटित होती हैं, किन्तु कभी-कभी वे मानव-जीवन में भी घटित होती दिखलाई दे जाती हैं। उदहारणार्थ शूर्पणखा के दृष्टांत में अपरिष्कृत वृत्ति की व्यंजना स्पष्ट दिखलाई देती है। शूर्पणखा जब राम के प्रति आसक्त होती है तो वह यह नहीं जानती कि उसका परिणाम क्या होगा। अत. वह परिणामों की चिंता किए बिना वही करती है जिसके लिए उसे प्रवृत्तिजन्य परिस्थितियाँ बाध्य करती हैं। क्योंकि जब एक सुन्दरी अपने आपको अपने प्रियतम के प्रति समर्पित करती है तो वह उसके सुख-दुःख का विचार किए बिना और जिस मार्ग पर वह जा रही है उसके एक भी चरण को देखे बिना ऐसा कर सकती है। यह सब वह अदम्य वासना के कारण करती है—

> **भ्राता पिता पुत्र उरगारी।**
> **पुरुष मनोहर विरखत नारी॥**
> **होइ विकल मन सकइ न रोकी।**
> **जिमि रविमनि द्रव रविहि विलोकी॥**[34]

नारद-मोह का उदाहरण भी उसी कोटि का है, अंतर केवल इतना है कि नारद मुनि होने के कारण केवल मोहग्रस्त कहलाकर बच जाते हैं, शूर्पणखा के समान काम्पीड़ित नहीं कहलाते—

> **देखि सहाय मदन हरषाना।**
> **कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना॥**
> **काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी।**
> **निज भयँ डरेउ मनोभव पापी॥**[35]

इसी प्रकार जयंत की कुटिलता 'जिज्ञासा' की मूल प्रवृत्ति का अपरिष्कृत रूप है—

> **सुरपति सुत धरि बायस बेषा।**
> **सठ चाहत रघुपति बल देखा।**
> **सीता चरन चोंच हति भागा।**
> **मूढ़ मंदमति कारन कागा॥**[36]

---

34 मानस, अरण्यकांड, 16 (3)

35 मानस, बालकांड, 125 (3-4)

36 मानस, अरण्यकांड, 0 (3-4)

परिष्कृत प्रवृत्ति

परिष्कृत मूल प्रवृत्तियां 'मानस' में भय, विकर्षण, आकर्षण, जिज्ञासा, क्रोध, दैन्य, क्षुधा, संग्रह-वृत्ति, तथा शरणागति आदि के रूप में देखने में आती हैं।

'मानस' प्रधानतः संघर्षमूलक काव्य है। अनेक स्थलों पर भय के प्रसंग आए हैं। कोई भी अपरिचित पदार्थ मनुष्य और पशुओं के अंदर भय का संचार कर सकता है। राम-रावण युद्ध के प्रसंग में जब रावण माया रचता है तो वानर भयभीत होकर भागने लगते हैं–

देख कपिन्ह अमित दससीसा।
जहं तहं भजे भालू अरू कीसा॥
भागे बानर धरहिं न धीरा।
त्राहि त्राहि लछमन रघुबीरा॥[37]

अन्य प्रवृत्तियों की तुलना में भय की शक्ति इस रूप में बहुत अधिक है कि भय-संचार के समय अन्य प्रवृत्तियां निष्क्रिया हो जाती हैं। भय से मिलती-जुलती वृत्ति **विकर्षण** की होती है। दोनों में केवल इतना अंतर है कि भय में भय के आलम्बन से विपरीत दिशा में पलायन होता है जबकि विकर्षण में आलम्बन को हटाया या अस्वीकार किया जाता है। राम-वन-गमन के पश्चात भरत के अयोध्या लौटने पर अपनी माँ के कुकृत्यों के प्रति इतना प्रबल विकर्षण हो जाता है कि वे कैकेयी को माँ भी समझने के लिए तैयार नहीं हैं–

हंसबंसु दरसरथु जनकु, राम लखन से भाइ।
जननी तूं जननी भई, विधि सन कछु न बसाइ॥[38]

और जब यह वृत्ति स्वयं कैकेयी के मन में अपने प्रति उत्पन्न होती है तो वह भी अपने अस्तित्व को समाप्त करने की इच्छा करने लगती है–

अवनि जमहि जाचति कैकई।
महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥[39]

आकर्षण-प्रवृत्ति

आकर्षणात्मक प्रवृत्तियों में साहचर्य एवं वात्सल्य प्रमुख हैं। साहचर्य भी दो प्रकार

---

37. मानस, लंकाकांड, 95 (2)
38. मानस, अयोध्याकांड, 161 (दोहा)
39. मानस, अयोध्याकांड, 251 (3)

का होता है—**वैयक्तिक** तथा **सामूहिक**। वैयक्तिक साहचर्य की वृत्ति व्यक्ति-विशेष की संगति पसंद करती है और सामूहिक साहचर्य की वृत्ति समूह मे रहने के लिए प्रेरित करती है। मनुष्यों में वैयक्तिक साहचर्य तथा पशुओं में सामूहिक साहचय की प्रधानता पाई जाती है। मैकडूगॉल ने प्रथम प्रकार की वृत्ति को ही संगति-वृत्ति तथा दूसरे प्रकार की वृत्ति को समूह-वृत्ति की संज्ञा दी है। संगति-वृत्ति के संदर्भ मे उसने यौन-आकर्षण को प्रमुखता दी है।[40]

संगति-वृत्ति को हम दो रूपों में निरीक्षण कर सकते हैं। एक को अपनापन के आधार पर तो दूसरे को काम-भावना के आधार पर। रामचरितमानस में चारो भाइयों में अपनापन के अन्तर्गत भ्रातृत्व-प्रेम भी उतना ही प्रमुख है जितना कि सीता-राम का साहचर्य। यद्यपि भ्रातृत्व-वृत्ति की प्रबलता 'मानस' में अनेक स्थलो पर वर्णित है किन्तु, इसका उल्लेख दो प्रसंगों में विशेष महत्व रखता है क्योंकि उन प्रसंगों में इस वृत्ति के उदय के साथ-साथ अन्य वृत्तियॉ लुप्त हो जाती है।

जब राम को राज्याभिषेक की सूचना मिलती है तो उस अवसर पर होने वाला आनंद और उत्साह भ्रातृत्व-वृत्ति की प्रबलता के कारण लुप्त हो जाता है—

जनमे एक संग सब भाई।
भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनवेध उपबीत बिआहा।
संग संग सब भए उछाहा॥
बिमल बंस यह अनुचित एकू।
बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥[41]

इसी प्रकार जब भरत राम-वन-गमन के पश्चात अयोध्या लौटते हैं तो उन्हें आते ही महाराजा दशरथ के देहावसान की सूचना मिलती है। सूचना पाकर वे अत्यंत दुःखी होते हैं किन्तु पिता की मृत्यु का कारण पूछने पर जैसे ही उन्हें राम के वन-गमन का पता चलता है तो वे पितृ-मरण को भूल जाते हैं—

भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जिय, थकित रहे धरि मौनु॥[42]

कामभावना प्रवृत्ति

काम-भावना यद्यपि अधिकांशतः अव्यक्त रूप में कार्य करती है किन्तु 'मानस'

---

40 W. Mc.Dougall-An outline of psychology. Instinct of mating.

41 मानस, अयोध्याकांड, 9 (3-4)

42 मानस, अयोध्याकांड, 160 (दोहा)

मे व्यक्त एव अव्यक्त दोनों ही रूप में दृष्टिगोचर होती है। व्यक्त रूप में पावती की शिव प्राप्ति हेतु तपस्या, प्रथम मिलन के पश्चात सीता-राम दोनों की उत्कठा, वनवास के समय सीता का साथ जाने के लिए हट, शूर्पणखा की तपस्वीयो के प्रति आसक्ति एवं नारद-मोह आदि उदाहरण हैं। किन्तु अव्यक्त रूप में काम-भावना के प्रदर्शनार्थ प्रत्येक पुरुष काम के आवेग में अपनी शक्ति को प्रकट करता हे। उदाहरणार्थ स्वयंवर की प्रथा काम-वृत्ति के साथ शक्ति की अभिव्यक्ति की प्रतीक जान पड़ती है। वाल्मीकि रामायण में सीता-स्वयंवर के बाद जब घर लौट रहे थे तो राम की मुलाकात भगवान परशुराम से होती है किन्तु 'मानस' में इनकी आपस मे भेंट धनुर्भंग के अवसर पर होती है। इस प्रकार तुलसीदास जी ने काम-वृत्ति के आवेग के साथ शौर्य-वृत्ति को बड़े सुन्दर ढंग से जोड़ कर अपने मौलिकता का परिचय दिया है। राम के साथ वन जाने के लिए सीता के आग्रह के मूल मे भी काम-वृत्ति निहित है—

जहँ लगि नाथ नेहु अरू नाते।
पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥

x x x

प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं।
मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥[43]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'मानस' में सीता-हरण से अंत तक का प्रसग अधिकतर काम-वृत्ति से ही परिचालित है। राम-रावण-संघर्ष में रावण की सीता के प्रति आसक्ति का महत्वपूर्ण योग है। निस्संदेह राम-रावण-युद्ध रावण की केवल प्रतिशोध भावना का परिणाम था क्योंकि उसमें प्रमुख हाथ शूर्पणखा की कामसक्ति का था। रावण सीता के प्रति आसक्त होने के कारण सीता जी से अपने प्रेम का प्रस्ताव करता है—

कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी।
मंदोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरी करउँ पन मोरा।
एक बार बिलोकु मम ओरा॥[44]

त्रिजटा के मुख से भी सीता के प्रति रावण के आसक्त होने का प्रमाण मिलता है—

---

43. मानस, अयोध्याकांड, 64 (2-3)

44. मानस, सुदरकांड, 8 (2)

एहि के हृदय बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत बन सब कर नास है ॥[45]

साहचर्य प्रवृत्ति

साहचर्य-वृत्ति का एक अन्य प्रमुख रूप है--**वात्सल्य**। इसमें संरक्षण-वृत्ति निहित रहती है क्योंकि रक्षा-भावना वात्सल्य का परिवर्धित स्वरूप है। 'मानस' में आरंभ से अंत तक राम की वत्सलता की अभिव्यक्ति लोक-मंगल के रूप में हुई है। वात्सल्य ही 'मानस' में केन्द्रीय वृत्ति है क्योंकि अवतार से लेकर रावण-वध तक वह व्याप्त है। राम-वन-गमन के प्रसंग में दशरथ की व्यथा, दशरथ का विलाप और शरीर-त्याग वात्सल्य की पराकाष्ठा के ही रूप हैं। कैकेयी की माँग को सुनते ही दशरथ की दशा बिगड़ती है--

बिबरन भयउ निपट नरपालू।
दामिनि हनेउ मनहुँ तरू तालू ॥
माँथे हाथ मूँदि दोउ लोचन।
तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥[46]

दशरथ के लिए भरताभिषेक इतना कष्टदायी नहीं है जितना राम को चौदह वर्ष के लिए वन भेजा जाना--

रिसि परिहरू अब मंगल साजू।
कछु दिन गएँ भरत जुबराजू ॥
एकहि बात मोहि दुखु लागा।
बर दूसर असमंजस मागा ॥[47]

कैकेयी अच्छी प्रकार जानती थी कि दशरथ 'राम' के विना जीवित नहीं रह सकते--

कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं।
जीवन मोर राम बिनु नाहीं ॥[48]

---

45 मानस, लंकाकांड, 98 (दोहा)
46 मानस, अयोध्याकांड, 28 (3-4)
47 मानस, अयोध्याकांड, 31 (2)
48 मानस, अयोध्याकांड, 32 (1)

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को वन से वापिस लाने के लिए सुमंत को भेजा ाया, किन्तु दशरथ व्याकुल होकर सुमंत से पूछने लगे–

कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही।
कहँ प्रिय पुत्रवधु वैदेही ॥[49]

ओर परिणामस्वरूप–

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयउ सुरधाम ॥[50]

वात्सल्य की पराकाष्ठा रावण में भी दिखलाई देती है। यद्यपि वह पुत्र के सम्बध में चिंतित नहीं है, तथापि मेघनाद की मृत्यु पर रावण का दुःख कठोर व्यक्तित्व के भीतर वात्सल्य जैसे कोमल भाव का अस्तित्व सिद्ध करता है–

सुत बध सुना दसानन जबहीं।
मुरछित भयउ परेउ महि तबहीं ॥[51]

नारियों में वात्सल्य की मात्रा अधिक पायी जाती है। 'मानस' में कैकेयी का वात्सल्य कथा के प्रवाह को ही मोड़ देता है, परन्तु कौशल्या में उसका सात्विक रूप दिखलाई देता है। सीता जी की सुकुमारता के कारण कौशल्या जी राम की अपेक्षा अपनी पुत्रवधु 'सीता' की ओर से अधिक चिन्तित हैं, यह है उनका वत्सल-प्रेम।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि आकर्षणात्मक प्रवृत्तियों में साहचर्य दो प्रकार का होता है–(1) **संगति-वृत्ति** तथा (2) **समूह-वृत्ति**। संगति-वृत्ति का अब तक वर्णन किया जा चुका है। प्रस्तुत वृत्ति अधिकांश मानव आदि उच्च समाज में पायी जाती है किन्तु समूह-वृत्ति मुख्यतया निम्न श्रेणी के प्राणियो में पाई जाती है। 'मानस' में वानरों का यूथबद्ध रहना इसी प्रवृत्ति को व्यक्त करता है–

एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ ॥

बानर कटक उमा मैं देखा।
सो मूरुख जो करन चह लेखा ॥[52]

49 मानस, अयोध्याकांड, 154 (1)
50. मानस, अयोध्याकांड, 155 (दोहा)
51 मानस, लंकाकांड, 76 (3)
52. मानस, किष्किंधाकांड, 21 (0-1)

युयुत्सा प्रवृत्ति

साहचर्य की विरोधी वृत्ति **युयुत्सा** है। इसका सम्बंध क्रोध से है। यह वृत्ति अधिकांशतः वहां उद्दीप्त होती है जहां व्यक्ति के अहं (Ego) को आघात पहुंचता है। राम के अतिरिक्त अन्य सभी पात्रों में इसका उदय अहं को आघात पहुंचने से हुआ है। परशुराम के क्रोध का उदय शिव-धनुष के अपमान के साथ जुड़ा है—

सुनहु राम जेहिं सिव धनु तोरा।
सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥[53]

कैकेयी के क्रोध का कारण मंथरा द्वारा कल्पित अपमान है—

रेख खँचाइ कहहँ बल भाषी।
भामिनि भइहु दूध के माखी॥
जौं सुत सहित रहु सेवकाई।
तौं घर रहहु न आन उपाई॥[54]

राम का जयंत के प्रति आक्रोश राम की अवज्ञा किए जाने के कारण उद्दीप्त हुआ है तथा लक्ष्मण का भरत के प्रति आक्रोश इस कल्पना पर आधारित है कि भरत उनकी शक्ति को चुनौती दे रहे हैं—

राम निरादर कर फलु पाई।
सोवहुं समर सेज दोउ भाई॥[55]

वालि सुग्रीव के प्रति इसलिए कुद्ध है कि उसके द्वारा उसका स्वत्व बाधित हुआ है—

मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साई।
दीन्हेउ मोहि राज बरिआई॥
बाली ताहि मारि गृह आवा।
देखि मोहि जिय भेद बढ़ावा॥[56]

नारद जी भी शिवजी के गणों से इस कारण क्रुद्ध होते हैं कि उनके द्वारा नारद का उपहास किया जाता है और फलस्वरूप नारद ने गणों को कठोर शाप दिया—

---

53. मानस, बालकांड, 270 (2)
54. मानस, अयोध्याकाड, 18 (4)
55. मानस, अयोध्याकांड, 229 (2)
56. मानस, किष्किंधाकांड, 5 (5)

तब हर गन बोले मुसुकाई।
निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई ॥
असि कहि दोउ भागे भयँ भारी।
बदन दीख मुनि बारि निहारी ॥
वेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा।
तिन्हहिं सराप दीन्ह अति गाढ़ा ॥[57]

शत्रुघ्न का मंथरा के प्रति क्रोध भी अहं के कारण ही उद्दीप्त हुआ क्योंकि मंथरा ने उनके परिवार की शांति भंग कर दी थी—

तेहि अवसर कुबरी तहं आई।
बसन बिभूषन बिबिध बनाई ॥
x x x
हुमगि लात तकि कूबर मारा।
परि मुह भर महि करत पुकारा ॥[58]

रावण के क्रोध का कारण उसके असीम और अबाध प्रभुत्व में बाधा की उपस्थिति है—

रन मद मत्त फिरइ जग धावा।
प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा।
x x x
ब्रह्मसृष्टि जहं लगि तनुधारी।
दसमुख बसवर्ती नर नारी ॥[59]

रावण तथा उसके दल में युयुत्सा (क्रोध) वृत्ति की प्रधानता है। राम के दल में यह वृत्ति पाई जाती है, किन्तु उसकी प्रधानता नहीं है। राम-पक्ष के कार्य जन-हिताय तथा जन-सुखाय है। 'मानस' के उत्तरार्ध की घटनाओं में संघर्ष की प्रधानता अधिक देखी जा रही है। भगवान राम पीड़ितों के उद्धार के लिए अवतार लेते हैं—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा।
तुम्हहि लागि धरिहहुँ नर बेसा ॥[60]

और राक्षसों द्वारा पीड़ित लोगों को सुख दिलाने की प्रतिज्ञा करते हैं—

57. मानस, बालकांड, 134 (3-4)
58. मानस, अयोध्याकांड, 162 (1-2)
59. मानस, बालकांड, 181 (5-6)
60. मानस, बालकांड, 186 (1)

निसिचर हीन करहुं महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्ह, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥[61]

फिर भी उनके दूत रावण को यह परामर्श देते हैं कि यदि वह अपना भला चाहता है तो सीता को लौटा दे—

अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा।
सब अपराध छमहि प्रभु तोरा ॥
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी।
परिजन सहित संग निज नारी ॥
सादर जनक सुता करि आगे।
एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागे ॥[62]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रावण के प्रति राम के आक्रोश में उनके अहं (Ego) का बड़ा हाथ था।

'मानस' की तीनों मुख्य वृत्तियों—काम, अहं और वात्सल्य के बाधित होने पर **क्रोध (युयुत्सा)** का उदय होता है। शूर्पणखा का क्रोध स्पष्टतः काम की बाधा से उत्पन्न हुआ है। रावण का क्रोण प्रधानतः अहं की बाधा से उद्भूत है। रावण अपने अहंकार के मद में राम की शक्ति की अवमानना करता है—

एहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध।
सहज असंक लंकपति सभाँ गयउ मद अंध ॥[63]

परशुराम का क्रोध भी इसी प्रकार का है—

अति रिस बोले बचन कठोरा।
कहु जड़ जनक धनुष के तोरा ॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू।
उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू ॥[64]

राम के क्रोध के मूल मे काम, अहं और वात्सल्य तीनों की बाधा निहित है—

बिनय न मानत जलधि जड़, गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ॥[65]

कैकेयी का रोष वात्सल्य और अहं की बाधा का परिणाम है—

---

61. मानस, अरण्यकांड, 9 (0)
62. मानस, लंकाकांड, 19 (3-4)
63. मानस, लंकाकाड, 16 (क)
64. मानस, बालकांड, 269 (2)
65. मानस, सुंदरकांड, 57 (दोहा)

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का।
देहु एक वर भरतहि टीका॥
मागउँ दूसर वर कर जोरी।
पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥
तापस बेष बिसेषि उदासी।
चौदह बरिस रामु बनवासी॥[66]

आत्मप्रकाशन वृत्ति

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो यह अहं भाव 'मानस' में अनेक रूपों में व्यक्त हुआ है। कहीं यह आत्म-प्रकाशन के रूप में प्रकट हुआ है तो कहीं प्रतिष्ठा का प्रश्न बनकर। सती का आत्मघात इसका उदाहरण है—

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू।
उर धरि चन्द्रमौलि वृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।
भयउ सकल मख हाहाकारा॥[67]

स्व अथवा अहं वृत्ति की अभिव्यक्ति बहुधा आत्मप्रकाशन के रूप में होती है। नारद-मोह आत्म-प्रकाशन का बहुत ही सुन्दर उदाहरण है। वे काम-विजय के अहंकार के कारण ही शिव के समक्ष अपने पराक्रम का उल्लेख करते हैं—

तब नारद गवने सिव पाहीं।
जिता काम अहमिति मन माहीं॥
मार चरित संकरहि सुनाए।
अतिप्रिय जानि महेस सिखाए॥[68]

शिव जी ने नारद जी को अपना घनिष्ट एवं अत्यंत प्रिय जानकर शिक्षा दी कि हे मुनि ! मैं तुमसे बार-बार विनती करता हूं कि जिस तरह यह कथा तुमने मुझे सुनाई है, उस तरह भगवान श्रीहरि को कभी मत सुनाना, यहां तक कि चर्चा चलने पर भी इसको छिपा जाना—

66. मानस, अयोध्याकांड, 28 (1-2)
67. मानस, बालकांड, 63 (4)
68. मानस, बालकांड, 126 (3)

संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहिं सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान॥[69]

किन्तु नारद मुनि को तो आत्म-प्रकाशन का भूत सिर पर सवार था और शिवजी के मना करने पर भी कामदेव का सम्पूर्ण चरित्र नारद ने भगवान को कह सुनाया—

काम चरित नारद सब भाषे।
जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे॥[70]

शीलनिधि नाम का एक राजा था, जिसके विश्वमोहिनी नामक अत्यंत सुंदर कन्या थी। इस राजकुमारी के स्वयंवर हेतु भगवान विष्णु से नारद जी सुंदर रूप मागने गए जो एक प्रकार का आत्म-प्रकाशन ही है। यह आत्म-प्रकाशन उस समय चरम सीमा पर पहुंच जाता है जब वरमाला के साथ आती हुई राजकुमारी को देखकर वे (नारद जी) बार-बार उकस-उकस कर व्यग्र होते हैं—

पुनि-पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं।
देखि दसा हर मन मुसुकाहीं॥[71]

यहां तक कि भगवान परशुराम भी आत्म-प्रकाशन वृत्ति के रोग से रोगी हैं—

बाल ब्रह्मचारी अति कोही।
बिस्व बिदित क्षत्रि कुल द्रोही॥
भुज बल भूमि भूप बिनु कीन्ही।
बिपुल बार महि देवन्ह दीन्ही॥
सहस बाहु भुज छेदन हारा।
परसु बिलोकु महीप कुमारा॥[72]

ओर भी—

चाप सुवा सर आहुति जानू।
कोपु मोर अति घोर कृसानू॥
x x x
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे।
समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥[73]

---

69 मानस, बालकांड, 127 (6)
70 मानस, बालकांड, 127 (4)
71 मानस, बालकांड, 134 (1)
72 मानस, बालकांड, 271 (3-4)
73 मानस, बालकांड, 282 (1-2)

रावण में भी आत्मप्रकाशन की वृत्ति बहुत प्रवल है। जब बालिपुत्र अंगद रावण को उसी की सभा में अपमानित करता है तो उसके अहं को आघात लगा और अपनी सामर्थ्य को बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करता है—

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला।
हरगिरि जान जासु भुज लीला॥
x x x
सोइ रावन जग विदित प्रतापी।
सुनेहु न श्रवन अलीक प्रलापी॥[74]

लक्ष्मण में भी आत्म-प्रकाशन-वृत्ति वड़ी प्रबल है। इसके चरित्र में जो उतावलापन है, वह आत्म-प्रकाशन-वृत्ति का ही कारण एवं द्योतक है। धनुष-यज्ञ के प्रसंग में राजा जनक की चुनौती को सुनकर वे अपने पराक्रम का वर्णन किए बिना नहीं रहते—

जौं तुम्हारि अनुशासन पावौं।
कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
x x x
काचे घट जिमि डारौं फोरी।
सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥[75]

किन्तु लक्ष्मण आत्म-प्रकाशन रूप में वर्णित अपने पराक्रम के मूल में राम का प्रताप मानते हैं और इसी वृत्ति के कारण दूसरे पात्रों के आत्म-प्रकाशन से भिन्नता आ गई है—

तव प्रताप महिमा भगवाना।
को बापुरो पिनाक पुराना॥[76]

दैन्य वृत्ति

आत्म-प्रकाशन की विरोधी वृत्ति दैन्य है। इस वृत्ति की अभिव्यक्ति दबे स्वर, संपत

74. मानस, लंकाकांड, 24 (1-4)
75. मानस, बालकाड, 252 (2-3)
76. मानस, बालकाड, 252 (3)

क्रियाओं, झुके हुए सिर अथवा लटका हुआ मुँह, पैर के अंगूठे से मिट्टी कुरेदना, सिर खुजलाना तथा किंकर्तव्यविमूढ़ की अवस्था में होती है। जब राम अपने अयोध्या लौटने-न-लौटने के निर्णय का भार चित्रकूट प्रसंग में भरत पर डाल देते हैं तो उस समय भरत जिस प्रकार से उत्तर देते हैं उससे उनका दैन्य अत्यंत उत्कृष्ट रूप में व्यक्त होता है। उत्तर के आरम्भ में भरत करबद्ध प्रणाम करता है और यह केवल औपचारिक शिष्टाचार मात्र ही नहीं है बल्कि उत्तर की संगति में उनकी ये चेष्टाएं वास्तव में दैन्य-व्यंजक हैं। भरत अपने उत्तर में राम के समक्ष कोई ठोस और स्पष्ट प्रस्ताव नहीं रख पाते हैं। यह किंकर्त्तव्यविमूढ़ता ही उनकी दीनता है। उत्तर देते समय वे यह स्पष्ट कर देते हैं कि उनका उद्देश्य तो अपने मन में आई शंकाओं का मिटाना था, अतः मिट गई। वे किसी भी प्रकार का धर्म-संकट राम के समक्ष खड़ा करना नहीं चाहते। विनयपूर्वक जो उन्होंने उत्तर दिया, उस पर भी उन्हें शंका थी कि मुख से कोई अनुचित बात तो नहीं कही गई और यह विचार ही उनके विनय का द्योतक है--

कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीता नाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु, जोरि जलज जुगहाथ ॥[77]

कहौं कहावौं का अब स्वामी।
कृपा अंबुनिधि अंतरजामी ॥

x x x

x x x

उतरू देह सुनि स्वामि रजाई।
सो सेवकु लखि लाज लजाई ॥[78]

संग्रह वृत्ति

रामचरितमानस का धार्मिक पक्ष **तीन जिज्ञासाओं** की इस जिज्ञासा पर निर्भर है कि राम कौन हैं ? यदि ये ईश्वर हैं तो मनुष्य के समान आचरण कर कष्ट क्यों उठाते हैं ? इसी प्रकार 'मानस' के मनोवैज्ञानिक सत्य भी जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तर रूप में ही व्यक्त हुए हैं। विज्ञान और धर्म के मूल में इसी वृत्ति का प्रमुख स्थान है। मनोवृत्तियों तथा संत-असंत का वर्णन गरूड़ की इन जिज्ञासाओं

---

77. मानस, अयोध्याकांड, 266 (दोहा)

78. मानस, अयोध्याकांड, 266 (1) से 268 (3) तक

का परिणाम है—

संत असंत मरम तुम्ह जानहु।
तिन्ह कर सहज सुभाउ बखानहु॥[79]

इस प्रकार 'मानस' के धार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक पक्ष जिज्ञासा के परिणाम है। जिज्ञासा भी, भय के समान, किसी अपरिचित और विचित्र सत्य से उत्तेजित होती है। दोनों में उत्तेजक की मात्रा के अतिरिक्त जो अंतर होता है वह है कि भय में विकर्षण किन्तु जिज्ञासा में आकर्षण वृत्ति दिखलाई पड़ती है।

परम पिता परमात्मा ने सृष्टि की रचना की है और उसमें प्राणीमात्र को एकसा बनाया है कि उसकी प्रवृत्ति भोजन खोजने की है। किन्तु इस प्रवृत्ति की प्रधानता निम्न प्राणियों में अधिक होती है। पर्वत की कन्दरा में वानरों सहित जाम्बवान को देखकर सम्पाती (गीध) का उनकी ओर झपटना इसी वृत्ति की अभिव्यक्ति है—

आजु सबहि कहँ भच्छन करऊँ।
दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ॥
कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा।
आजु दीन्ह विधि एकहिं बारा॥[80]

अशोक-वाटिका में हनुमान जी की भूख भी इसी वृत्ति की उदीप्ति है—

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा।
लागि देखि सुंदर फल रूखा॥[81]

राक्षसों द्वारा आकाश में उड़ते हुए जीव-जन्तुओं और पक्षियों को जल में उनका प्रतिविम्ब देखकर उन्हें पकड़ कर खाए जाने में भी इसी वृत्ति की चरितार्थता है—

जीव-जन्तु जे गगन उड़ाहीं।
जल बिलोकि तिन्ह के परिछाहीं॥
गहइ छाकें सक सो न उड़ाई।
एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥[82]

लोभी और जिज्ञासु व्यक्तियों की इच्छाएं असीम होती हैं। एक पूरी होने

---

79. मानस, उत्तरकांड, 120 (3)
80. मानस, किष्किंधाकांड, 26 (2)
81. मानस, सुंदरकांड, 16 (4)
82. मानस, सुंदरकांड, 2 (1-2)

के पश्चात दूसरी मन में कामना आ जाती है जिसके फलस्वरूप वह महत्वाकांक्षी बन जाता है। प्रतापभानु एक सम्पन्न नरेश था किन्तु फिर भी उसकी महत्वकांक्षा उमसे एक छत्र राजा बनने के लिए प्रेरित करती है—

कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें।
चारि पदारथ करतल मोरें॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी।
मागि अगम बर होउँ असोकी॥[83]

जरा मरन दुख रहित तनु, समर जितै जनि कोउ।
एक छत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ॥[84]

इस महत्वाकांक्षा को ही परिष्कृत मूल प्रवृत्तियों की **संग्रह-वृत्ति** कहा गया है।

राक्षसों द्वारा पीड़ित पृथ्वी की आर्तपुकार में व्यक्त प्रवृत्ति को **शरणागत वृत्ति** कहते हैं। दृष्टव्य है—

धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी।
गई तहाँ जहाँ सुर मुनि झारी॥
निज संताप सुनाएसि रोई।
काहू ते कछु काज न होई॥[85]

और विभीषण का राम-पक्ष में आ मिलना भी इसी वृत्ति का उदाहरण है—

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥[86]

इस प्रकार 'मानस' में मनोवृत्तियों का विशद विलेषण करने के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सम्पूर्ण रामकथा सामाजिक आधार पर खड़ी है। उसमें अह, काम और वात्सल्य का महत्व स्पष्ट दिखलाई देता है, फिर भी अन्य वृत्तियों की अभिव्यक्ति उनके कारण रुक नहीं गई है। इन मूल प्रवृत्तियों में सर्वाधिक महत्व किसका है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस संबंध मे मनोवैज्ञानिकों में भी मतभेद है। **फ्रायड** ने काम-वृत्ति को प्रधानता दी है तो **एडलर** ने अहं तथा तज्जनित विजयैषणा (Will of power) को। तुलसीदास जी इन दोनो

---

83 मानस, बालकांड, 163 (4)

84 मानस, बालकांड, 164 (दोहा)

85 मानस, बालकांड, 183 (4)

86 मानस, सुंदरकांड, 45 (दोहा)

े महत्व से अवगत थे, इसके प्रमाण 'मानस' में अनेक स्थलों पर मिलते हे।
र कामी में काम की प्रबलता से पूर्णतया अवगत थे–

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम॥[87]

कलियुग-वर्णन के प्रसंग में काम-वृत्ति का उदाहरण–

नारि बिबस नर सकल गोसाईं
नाचहिं नट मर्कट की नाईं[88]

काम के वशीभूत होकर नैतिकता का उल्लंघन करने वाले भी–

गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी।
भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥[89]

यौन-वृत्ति की शक्ति के समक्ष बहिन-बेटी का भी विचार नहीं किया जाता–

कलि काल बिहाल किए मनुजा।
नहिं मानत काउ अनुजा तनुजा॥[90]

विजयैषणा के अनुसार मनुष्य अपनी हीनता के बोध से प्रेरित होकर उसकी क्षतिपूर्ति की चेष्टा करता है। इस प्रकार अस्तित्व रक्षण और उसकी सार्थकता का भाव भी उसके अंतर्गत आ जाता है।

मनोवृत्तियों के शमन के लिए तुलसीदास जी ने कहा कि भक्ति से सम्पूर्ण बधन खुल जाते हैं। भक्ति जीवन का महत्तम मूल्य है क्योंकि सभी साधनाओं का फल अकेली भक्ति से मिल जाता है–

तीर्थाटन साधन समुदाई।
जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥

x x x

जहँ लगि साधन बेद बखानी।
सब कर फल हरि भगति भवानी॥[91]

तुलसीदास जी ने मनोवृत्तियों के शमन के लिए भक्ति के साथ-साथ ज्ञान (विज्ञान) का महत्व भी स्वीकारा है, किन्तु दोनों की प्रकृति और क्षमता के अन्तर को देखते हुए उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि ज्ञान में मनोवृत्तियों के शमन

---

87. मानस, उत्तरकांड, 130 (ख)
88. मानस, उत्तरकांड, 98 (1)
89. मानस, उत्तरकांड, 98 (2)
90. मानस, उत्तरकांड, 101 (3)
91. मानस, उत्तरकांड, 125 (2-4)

की वैसी सामर्थ्य नही जैसी भक्ति में। ज्ञानी सिद्धि-प्राप्ति के उपरांत भी मनोवेगों से विचलित हो सकता है जबकि भक्त पर मनोवृत्तियाँ अपना प्रभाव नहीं डाल सकतीं। भक्ति से उद्वेगकारी मनोवृत्तियों का शमन हो जाता है—

परम प्रकास रूप दिन राती।
नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
x x x
खल कामादि निकट नहिं जाहीं।
बसइ भगति जाके उर माहीं॥[92]

इसका कारण तुलसीदास जी ने यह बतलाया है कि 'ज्ञान', 'योग', 'वैराग्य', 'विज्ञान' आदि पुरुष (पुलिंग) हैं अतः वे सरलता से 'माया' (स्त्री) के वश मे हो जाते हैं, किन्तु भक्ति स्वयं स्त्री होने के कारण समलिंगी माया की ओर आकृष्ट नही होती—

ग्यान बिराग जोग बिग्याना।
ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँति।
अबला अबल सहज जड़ जाती॥[93]

पुरुष त्यागि सक नारिहि, जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी बिषयाबस, बिमुख जो पद रघुबीर॥
सोउ मुनि ग्याननिधान, मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान, नारि बिष्नु माया प्रगट॥

इहाँ न पच्छ पात कछु राखउँ।
बेद पुरान संत मत भाषउँ॥
मोह न नारि नारि कें रूपा।
पन्नगारि यह रीति अनूपा॥[94]

---

92 मानस, उत्तरकांड, 119 (2-3)
93 मानस, उत्तरकांड, 114 (8)
94 मानस, उत्तरकांड, 115 (0-1)

8
अपराध-विज्ञान

मानव का शिशु रूप में इस भूतल पर जब पदार्पण होता है तो किसको मालूम कि यह शिशु सज्जन होगा या दुर्जन, साधु होगा या असाधु, किसी राज्य का राजा बनेगा या दस्यु-गिरोह का राजा। माँ की गोद में पलता बच्चा जब भूख लगने पर माँ के स्तन पर दूध पाने के लिए आघात करता है, तभी शायद अपराध की मूल भावना 'प्रतिशोध' का पहला पाठ पढ़ता है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि प्रत्येक बच्चा अपनी बाल्यावस्था में अपराध की ओर आकर्षित होता है, यह बात दूसरी है कि परिस्थितियां उसके इस आकर्षण को किस सीमा तक कार्यान्वित होने देती हैं। यदि कोई बालक किसी की खिड़की का शीशा पत्थर मारकर तोड़ देता है तो इसके पीछे उसका उद्देश्य मात्र तंग करना है किन्तु वह अपराध है। कभी समाज या परिवार ने यह सोचने का कष्ट किया कि अपराधी किन परिस्थितियों में बनते हैं। कहावत है कि "पूत के पांव पालने में ही दीख जाते हैं।" अतः परिवार जनों और विशेषकर माताओं का यह कर्त्तव्य है कि बच्चों की तनिक भी गलती को क्षमा न करें। अन्यथा ये बच्चे बडे होकर माता-पिता, परिवार जनों एवं समाज को क्षमा नहीं करते। यदि दुर्भाग्यवश ऐसा बच्चा बड़ा होकर किसी देश का शासक बन गया तो उसका राज्य रावणराज्य ही कहलाएगा।

परिभाषा

नगेन्द्रनाथ बसु द्वारा सम्पादित हिन्दी विश्वकोश में अपराध शब्द के पर्याय पाप, दोष भूल कसूर अपना उचित काम न करना दण्ड योग्य काम करना आदि

है। हिन्दी विश्वकोश के अनुसार चलित धर्मशास्त्र, सामाजिक नियम और राजनियम के विरुद्ध आचरण करना ही अपराध है। किन्तु अच्छी तरह सोच-विचार कर देखने पर अपराध शब्द का प्रकृत तात्पर्य प्रकाश करना अत्यंत कठिन है। धर्म-अधर्म की परिभाषा देते हुए महाकवि तुलसीदास जी ने कहा था कि दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुःख पहुंचाने के समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। समस्त पुराणों और वेदों का यह निश्चित सिद्धांत सभी पण्डित (विद्वान) जानते हैं–

> परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
> पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
> निर्नय सकल पुरान बेद कर।
> कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर ॥[1]

अपराध वह वृक्ष है जिसकी जड़ सुन्दरी, भोजन शराब, तना क्रोध, पत्ते कलह, फूल घृणा तथा फल विनाश है। एक देश में जो काम अपराध माना जाता है, दूसरी जगह लोग उसी काम की निन्दा नहीं करते, उसे दोष भी नहीं मानते। भारतवर्ष में चुम्बन एक अपराध है जबकि पाश्चात्य देशो में सार्वजनिक स्थानों पर चुम्बन एक परम्परा है। पहले हमारे देश में सहमरण (सती होना), नरबलि आदि अनेक कुरीतियां प्रचलित थीं। उस समय लोग उन्हें सुकर्म समझते थे, किन्तु इस समय उन सब कामों की बात सोचने में रोएं खड़े हो जाते हैं। आजकल छोटी आयु में विधवा हो जाने से बालिकाओं को जन्मभर वैधव्य यंत्रणा भोगनी पडती है। भारतवर्ष में अस्सी वर्ष से भी अधिक वयस् की वृद्धा एकादशी के दिन निर्जल उपवास करती हैं। प्यास से कंठ सूखने और कलेजा फट जाने पर एक बूंद पानी भी नही पीती। पार्वती जी ने शिव जी को प्राप्त करने के लिए ऐसा ही कठोर उपवास किया–

> कछु दिन भोजनु बारि बतासा।
> किए कठिन कछु दिन उपवासा ॥[2]

इस निष्ठुर काम का आज हम आदर करते और इसे भद्र वंश का कर्त्तव्य (कर्म) समझते हैं। किन्तु दूसरे देश वाले हमारे इस निर्दय आचरण की बात सुनकर चोक उठते हैं। हम भी एक दिन चौंक उठेंगे। अतएव देशभेद और समाजभेद

---

1 मानस, उत्तरकाण्ड, 40 (1)

2 मानस, बालकाण्ड, 73 (3)

से अपराध कभी एक तरह का नहीं रह सकता।

प्राणियों में आपराधिक-प्रवृत्ति एवं प्रतिशेध की भावना जन्म से ही विद्यमान होती है। यहां तक कि वीर अभिमन्यु की तरह बच्चे अनेक बातें गर्भ से ही सीख कर आते हैं। केवल आवश्यकता होती है उन्हें समझने और अवलोकन करने की। इन प्रवृत्तियों को जागृत करने वाले तत्व हैं उनके परिवार, समाज तथा माहौल (environment) जिसमें वच्चे का पालन-पोषण हुआ है। बच्चे का परिवार, समाज तथा परिवेश किस सीमा तक उसे अपराध करने के लिए उत्साहित करता हे, यह सब उसकी रुचि, आकांक्षा एवं मजबूरी पर निर्भर करता है। मनुष्य जितना महत्वाकांक्षी होगा वह उतना ही अधिक आपराधिक विचारों का होगा, कुमार्ग पर चलने वाला, कामी और सम्पूर्ण समाज से द्रोह करने वाला होगा जैसे लंकाधिपति रावण की दशा हुई जो अपने ही पापों (अपराधों) से नष्ट हो गया–

बिस्व द्रोह रत यह खल कामी।
निज अघ गयउ कुमारगगामी ॥[3]

और इस प्रकार आदि काल से ही मानव-समाज दो-गुटों में विभाजित रहा हे–एक निर्माणकारी तथा दूसरा विनाशकारी। जो मनुष्य परिश्रम करते हैं, मस्तिष्क मे अपनी उन्नति के लिए नवीन विचार संजोते हैं और देश तथा समाज की भलाई के लिए निर्माण करते हैं–वे निर्माणकारी होते हैं। किन्तु इसके विपरीत जो निर्माणकारी मनुष्यों के कार्य में बाधा डालते हैं, विघ्न पैदा करते हैं अथवा किसी प्रकार हानि पहुंचाते हैं, ऐसे समाज विरोधी तत्व विनाशकारी कहलाते हैं और उनका एक ही ध्येय होता है कि विघ्न डालो–

द्विजभोजन मख होम सराधा।
सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा ॥[4]

ऐसी प्रवृत्ति वालों के सरताज तो स्वयं भी कुछ विध्वंस कर संसार में भ्रष्ट आचरण फैला देते हैं–

जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा।
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा ॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना ॥[5]

---

3 मानस, लंकाकाण्ड, 109 (2)
4. मानस, वालकाण्ड, 180 (4)
5. मानस, वालकाण्ड, 183 (छंद)

इन लोगों की सदा ही हिंसा पर प्रीति होती है और ऐसा कार्य करते हैं जिससे धर्म का विनाश हो—

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला।
सो सब करहिं बेद प्रतिकूला ॥[6]

निर्माणकारी मनुष्य अपने देश के लिए भवन तैयार करता है, विनाशकारी उसे विध्वंस करने का प्रयत्न करता है। निर्माणकारी अपने परिश्रम से धनोपार्जन करता है तो विनाशकारी भवनों को नष्ट-भ्रष्ट कर अर्जित धन लूटने का प्रयास करता है तथा वानर-बांट का श्रेय पाता है। ध्यातव्य है—

जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे।
सुखी सकल रजनीचर कीन्हे ॥
एक बार कुबेर पर धावा।
पुष्पक जान जीति लै आवा ॥[7]

मानव-समाज का एक गुट "मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्" का अनुसरण करता है तो दूसरा गुट पर-नारी का अपहरण कर ले जाता है। यहां तक कि यदि कोई मनुष्य इन दुष्कर्मों से समाज तथा राज्य की संपत्ति को नष्ट होने से बचाने की चेष्टा करता है तो उसकी हत्या तक का भी प्रयास किया जाता है। यह प्रयास ऐसा ही होता है जैसा रावण ने जटायु के साथ किया—

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना।
काढ़ेसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पंख परा खग धरनी।
सुमिरि राम करि अद्भुत करनी ॥[8]

निसिचर की परिभाषा देते हुए महाकवि तुलसीदास जी ने पराए धन और पराई स्त्री पर मन चलानेवाले, दुष्ट, चोर और जुआरी, माता-पिता एवं देवताओं को सम्मान न देने वाले तथा साधुओं के द्वारा सेवा कराने वाले व्यक्ति राक्षस-प्रवृत्ति के बतलाए हैं—

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा।
जे लंपट परधन परदारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥

---

6. मानस, बालकाण्ड, 182 (3)
7. मानस, बालकाण्ड, 178 (4)
8. मानस, अरण्यकाण्ड, 28 (11)

जिन्ह के यह आचरन भवानी।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥[9]

धर्म-अधर्म

आज का भारतवर्ष वही नहीं है जो सदियों पूर्व था और इसका समाज भी वही नहीं है। समाज में परिवर्तनकारी शक्तियाँ इस रूप में क्रियाशील रहती हैं कि तत्काल उनका प्रभाव आंशिक रूप में ही व्यक्त होता है। भारतीय समाज हमें जिस रूप में आज उपलब्ध होता है उसकी पृष्ठभूमि वैदिक समाज से प्रारम्भ होती है। इस प्रकार भारतीय सभ्यता का आदिकाल ऋग्वेद की धारा से प्रारम्भ होता है। उसमें समाज के उभय पक्ष, आन्तरिक और वाह्य, का स्वरूप सामने आता है। समाज के लक्ष्य और उसके घटकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसमें ऋग्वेद के पूर्व के समाज की छाया है। अथर्ववेद में वर्णित है कि—

ऋत सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च।
भूतं भविष्य दुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीबलं बले ॥[10]

उपर्युक्त पंक्तियों के अध्ययन से आभास होता है कि वेद में 'ऋत' शब्द आया है। उस समय 'ऋत' ही विश्व एवं मानव समाज, दोनों का आधार था। ऋत के समाजीकरण होने पर उसका स्वरूप धर्म में परिवर्तित हुआ। महर्षि मनु ने धर्म की व्याख्या करते हुए लिखा है कि सामान्य धर्म के दस लक्षण होते हैं जो 'मनुस्मृति' में इस प्रकार वर्णित है—

धृतिः क्षमा दयोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धी विद्या सत्यमक्रोधे दशकं धर्म लक्षणम् ॥[11]

अर्थात् (1) धैर्य रखना, (2) क्षमा करना, (3) मन को वश में रखना, (4) चोरी, डकैती नहीं करना, (5) हृदय को पवित्र रखना, (6) इन्द्रियों को वश में रखना, (7) सात्विक बुद्धि, (8) सात्विक ज्ञान, (9) सत्य वचन बोला, और (10) क्रोध न करना।

धर्म शब्द का अर्थ समय-समय पर परिवर्तित होता रहा है, किन्तु अन्त

---

9. मानस, बालकाण्ड, 183 (1-2)

10. अथर्ववेद, 9-9-17

11. मनुस्मृति, 6/92

यह मानव के विशेषाधिकारों, कर्त्तव्यों, बन्धनों का द्योतक, आर्य जाति के सदस्य की आचार-विधि का परिचायक एवं वर्णाश्रम का द्योतक हो गया। धर्म में व्यक्ति समाज और उनके सामाजिक संगठनों के व्यवहार, आचरण तथा कर्त्तव्यों का नियमन किया गया। पूर्वमीमांसा-सूत्र में जैमिनि ने धर्म को 'वेदविहित प्रेरक' लक्षणों के अर्थ में स्वीकार किया है, अर्थात वेदों में प्रयुक्त अनुशासनों के अनुसार चलना ही धर्म है–

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः (पूर्वमीमांसा-सूत्र 1-1-2)

महाकवि तुलसीदास जी ने भी स्वीकार है कि वेद में बनाई विधि के अनुसार कार्य करने से सब प्रकार के पाप (अपराध) समाप्त हो जाते हैं–

जब प्रतापरवि भयउ नृप फिरी दोहाई देस।
प्रजा पाल अति वेद बिधि कतहुँ नहीं अघ लेस ॥[12]

धर्म का सम्बंध उन क्रिया-संस्कारों से है, जिनसे आनंद मिलता है और जो वेदों द्वारा प्रेरित एवं प्रशंसित हैं। गौतम धर्म-सूत्र के अनुसार वेद धर्म का मूल है "वेदोधर्ममूलम्, तद्विदां च स्मृतिशीले" (गौतम धर्म-सूत्र 1-1-1-2)। ऋग्वेद में चित्रित समाज के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उसमें अवैदिक समाजों का अस्तित्व है। दास, दस्यु, अव्रत, अपव्रत आदि विशेषण जिस समाज के लिए आए हैं वे आचरण, व्यवहार, भाषा, मान्यता आदि में वैदिकों से भिन्न हैं। वे वैदिक समाज से संघर्ष करते हुए दिखाई पड़ते हैं। सदियों तक संघर्ष के बाद वे समाज वैदिकों से पराभूत होकर उत्तर वैदिक काल तक वैदिक समाज में आत्मसात् हो जाते हैं। ऐसा समावेश उस समय हुआ जब वैदिकों ने अपने समाज को संहिताबद्ध कर लिया था। इस प्रकार दोनों समाजों में समन्वय हुआ किन्तु विजयी वैदिक समाज के ही आधार पर थे। इसका प्रभाव धर्म पर पड़ा। ऋत के समाजीकरण के साथ 'ऋत' धर्म का रूप धारण कर चुका था। संस्कार, यज्ञीय-विधि, राज्याभिषेक, दैनिक कर्मकाण्ड आदि का स्वरूप धर्म के साथ लग जाने से धर्म का रूप व्यापक हो गया। उसके साथ ही वह बोझिल भी हो गया। उसमें विषमता के साथ आडम्बर आने लगा। पशुबलि से लेकर शूद्रों के साथ व्यवहार तक सभी कुछ धार्मिक बन गए। उनमें संशोधन का कार्य नास्तिक हो गया।

वैदिक एवं दस्युओं में केवल शारीरिक भिन्नता ही नहीं थी बल्कि विचारगत भी भेद था। वैदिक समाज का विरोधी अवैदिक समाज था। वैदिक परम्परा को मानने वाला समूह आर्य और वेदों की अवहेलना करने वाला समूह अनार्य कहलाया।

---

12. मानस, बालकाण्ड, 153 (दोहा)

इस प्रकार आर्य और अनार्य वर्गो में संघर्ष आदि काल से ही चलता रहा है। उत्तरवर्तीकाल में अवैधानिक कार्य करने वाले दस्यु कहे जाने लगे और उनका डाकुओं के अर्थ में अधिक प्रयोग किया गया। ऋग्वेद (1-33-4) में 'धनिनः' को दस्यु कहा गया किन्तु वे यज्ञ नहीं करते थे। अतएव उनके साथ संघर्ष, वैचारिक ओर जातिगत था। ऋग्वेद में उल्लेख किया गया है कि—

वयं ताद् अस्य सम्भृतम वासु इन्द्रेण विभाजमेहि।[13]

"धनशाली दस्युओं का धन लेकर इन्द्र अपने समाज में वितरित कर दे।" ऋग्वेद में दस्युओं के लिए अक्रतून, अयज्ञान विशेषण आए हैं। इन विशेषणो से स्पष्ट हो जाता है कि वे वैदिक परम्परा से भिन्न एवं विद्रोही थे। अथर्ववेद (2-14-5 एव 10-6-20) में ये यज्ञ विध्वंसक भी हो जाते हैं और उनके अमानवीय लोक से सम्बद्ध करते हुए मायावी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। महाकवि तुलसीदास जी ने भी इनको भयानक, पापी, मायावी और देवताओं को दुख देने वाले कहा है—

देखत भीमरूप सब पापी।
निसिचर निकर देव परितापी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया।
नाना रूप धरहिं करि माया॥[14]

अब स्थिति ऐसी आ गई कि वैदिक एवं अवैदिक समाजों, आर्य तथा अनार्य समाजों, सुरों और असुरों में संघर्ष के साथ परस्पर सम्बंध की दिशा भी निर्धारित होने लगी। दस्युओं का प्रभाव वैदिकों पर भी पड़ने लगा। सामाजिक नियमों की अवहेलना और वैदिक व्रत में विश्वास करने वाले अर्थात् वैदिकों, दोनों में संघर्ष हुआ। यह उनके लिए संक्रमण काल था किन्तु वैदिकों ने दोनों पर विजय प्राप्त की। इस विजय में उन्हें कुछ संशोधन भी करना पडा। इस संशोधन का परिणाम हुआ अवैदिक संस्कृति का वैदिक संस्कृति में लोप। वैदिक समाज सीमा, जाति, देश एवं संहिता में बद्ध हो गया। अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए समाज के लिए आचार-विचार, विधि-नियम, व्यवहार-सदाचार विषयक सूत्र तैयार किए गए जो धर्मसूत्र कहलाए। इन धर्मसूत्रों के आधार पर धर्म-शास्त्र, स्मृति तथा संहिताओं की रचनाएं की गईं। अनेक महर्षियों, लेखकों तथा विद्वानों ने इस कार्य मे योगदान दिया। आरम्भ में सभी चरणों (शाखाओं) में धर्मसूत्र नहीं थे, किन्तु

---

13. ऋग्वेद, 8-40-6

14. मानस, बालकाण्ड, 182 (2)

आर्यजाति के सदस्यों के आचार-नियमों से था, अतः कालान्तर में सभी धर्मसूत्र सभी शाखाओं के लिए प्रमाण-स्वरूप मान्य हो गए।

अधर्म-कुकर्म

धर्म सूत्रों एवं धर्मशास्त्रों में जो विधियां बतलाई गयीं, उनका मूल वैदिक साहित्य में अक्षुण्ण रूप में पाया जाता है। धर्मशास्त्रों ने वेद को जो धर्म का मूल कहा है, वह उचित ही है। किन्तु यह सत्य है कि वेद धर्म-सम्बंधी निबन्ध नही है, वहां तो धर्म-सम्बंधी बातें प्रसंगवश आती गयी हैं। वास्तव में धर्मशास्त्र सम्बंधी विषयों के यथातथ्य एवं नियमनिष्ठ विवेचन के लिए हमें स्मृतियों की ओर ही झुकना पडता है। मनुस्मृति के अनुसार धर्म के पांच उपादान हैं—सम्पूर्ण वेद, वेदज्ञों की परम्परा एव व्यवहार, साधुओं का आचार तथा आत्मतुष्टि।

> **वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।**
> **आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥**[15]

ऐसी ही बात याज्ञवल्क्यस्मृति में भी पायी जाती है। इसके भी अन्तर्गत पाच उपादान हैं—वेद, स्मृति (परम्परा से चला आया हुआ ज्ञान), सदाचार (भद्र लोगों के आचार-व्यवहार), जो अपने को प्रिय (अच्छा) लगे तथा उचित संकल्प से उत्पन्न अभिकांक्षा या इच्छा। ध्यातव्य है—

> **श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।**
> **सम्यक्संकल्पज कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्॥**[16]

धर्म-सम्बंधी निबंधों तथा नियमपरक धर्मशास्त्र-सम्बंधी ग्रन्थों का प्रणयन कब से आरम्भ हुआ ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, किन्तु इसका कोई निश्चित उत्तर दे देना सम्भव नहीं है। इतना अवश्य है कि धर्म-सम्बंधी ग्रन्थ श्लोक-छद मे या श्लोकों में प्रणीत थे। पद्य-बद्ध बातें स्मृतिशील होने के कारण जनता की स्मृति में सुविधापूर्वक वहती जाती थी। इसी कारण इन ग्रन्थों को स्मृति कहा गया। यथा मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, नारदस्मृति आदि। मुख्य स्मृतिकार हैं—मनु, बृहस्पति, दक्ष, गौतम, यम, अंगिरा, योगीश्वर, प्रचेता, शातातय, पराशर, सवर्त,

---

15 मनुस्मृति, 2/6

16 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/7

उशना, शंख, लिखित, अत्रि, विष्णु, आपस्तम्ब, हारीत। उपस्मृतियों के लेखक हैं—नारद, गर्ग, पुलस्त्य, शौनक, क्रतु, बौधायन, विश्वामित्र, जाबालि, नाचिकेत, कश्यप, व्यास, व्याघ्र, कात्यायन, कपिल, कणाद, वशिष्ट आदि। धर्मसूत्र, धर्मशास्त्र तथा स्मृति की रचना के पश्चात इनमें वर्णित रीति-रिवाजों, विधि-विधानो, धर्म अधर्म, पाप-पुण्य और आचार-विचारों को संग्रहीत कर समाज के पथ-प्रदर्शन हेतु संहिताओं का प्रणयन किया गया। दुष्टों के अवगुणों तथा साधुओं के गुणो की पहचान कराने वाली ये संहिताएं ही थीं जिनके आधार पर उनका ग्रहण या परित्याग करना सम्भव हो सका है। महाकवि तुलसीदास जी कहते हैं—

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा।
उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने।
संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥[17]

महाभारत, रामायण तथा पुराणों ने भी धर्मशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है। यद्यपि भले, बुरे सभी ब्रह्मा के पैदा किए हुए हैं किन्तु गुण और दोषों का विचार कर वेदों ने उनको अलग-अलग कर दिया है। वेद, इतिहास और पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा की यह सृष्टि गुण-अवगुणों से लिप्त है—

भलेउ पोच सब बिधि उपजाए।
गनि गुन दोष बेद बिलगाए॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना।
बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना॥[18]

वेद शास्त्रों ने यह सिद्ध कर दिया है कि पाप-पुण्य, दुःख-सुख, साधु-असाधु और सुजाति-कुजाति, ब्राह्मण-कसाई, स्वर्ग-नरक आदि सभी पदार्थ इसी ब्रह्मा की सृष्टि में विद्यमान हैं। कदाचित महाकवि तुलसीदास जी का संकेत उन सज्जन और दुर्जनों की ओर है जो अपने-अपने कर्म के अनुसार प्राप्त करते हैं। यथा साधु को स्वर्ग और असाधु को नरक का दण्ड मिलता है। ध्यातव्य है एक 'मानस' का प्रसंग—

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती।
साधु असाधु सुजाति कुजाती॥

x x x

17. मानस, बालकाण्ड, 5 (1)

18. मानस, बालकाण्ड, 5 (2)

सरग नरक अनुराग विरागा।
निगमागम गुन दोष बिभागा ।।[19]

संत तुलसदास जी जानते थे कि संत और असंत (अपराधी) इसी जगत म पैदा हुए हैं। जिस प्रकार सुधा और सुरा एक ही स्थान पर पैदा होने के उपरात भी उनके अलग-अलग गुण हैं, उसी प्रकार एक सज्जन और अपराधी में भिन्नता है—

सुधा सुरा सम साधु असाधू।
जनक एक जग जलधि अगाधू।।
भल अनभल निज निज करतूती।
लहत सुजस अपलोक बिभूती ।।[20]

दण्ड-व्यवस्था

जेसा कि पूर्व वर्णन किया जा चुका है कि धर्मसूत्र, धर्मशास्त्र, मीमांसा, स्मृतिया तथा संहिताएं आदि का सृजन अनुक्रम से हुआ है। अर्थात् अधिकतम धर्मसूत्र, अधिकतर धर्मशास्त्री (स्मृतियो) से प्राचीन हैं, धर्मसूत्रों की भापा स्मृतियों की भाषा की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। धर्मसूत्रों की विषय-वस्तु एक तारतम्य से व्यवस्थित हे, किन्तु स्मृतियों (यहां तक कि प्राचीनतम स्मृति, मनुस्मृति) में ऐसी अव्यवस्था नही पाई जाती, प्रत्युत इनकी विषय-वस्तु तीन प्रमुख शीर्षकों में है—यथा आचार व्यवहार एवं प्रायश्चित। यही वह सामाजिक ढांचा है जिसके आधार पर मनुष्य समाज का नियंत्रण करता है। 'धर्म' शब्द का अर्थ समय-समय पर परिवर्तित होता रहा है। किन्तु अन्त में यह मानव के विशेपाधिकारों, कर्त्तव्यों, बन्धनों का द्योतक, आर्य जाति के सदस्य की आचार-विधि का परिचायक एवं वर्णाश्रम का द्योतक को गया। कालान्तर पर आचार-विचार विषयक नियमों तथा अपराध की परिभाषा में परिवर्तन होता आया है। अर्थात **पाप को अपराध तथा प्रायश्चित को दण्ड का रूप दिया गया।** हमारे धर्मशास्त्रकारों ने हिन्दु समाज को धार्मिक, नैतिक, कानूनी आदि सभी मामलों में एक सूत्र में बांध रखना चाहा है। इस दिशा मे विद्यमान धर्मसूत्रो में गौतम धर्मसूत्र सर्वाधिक प्राचीन है जिसने आर्यजाति का मार्गदर्शन किया है।

---

19 मानस, बालकाण्ड, 5 (3-5)

20 मानस, बालकाण्ड, 4 (3-4)

धमशास्त्रो म जो प्रवन्ध अपराधों के दण्ड तथा अपराधों के वर्गीकरण के विषय में पाए जाते हैं उनमे हमें पर्याप्त रुचिकर सामग्री मिलती है। तब प्रतीत होता है कि जिन विचारधाराओं को हम बीसवीं शताब्दी की देन समझते है वे वास्तव में हजारों वर्ष पुरानी हैं। साथ में हमें तत्कालीन समाज के प्रश्नों, तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक और कौटुम्बिक परिस्थिति का अच्छा ज्ञान होता जाता है। उदाहरणार्थ, जो व्यक्ति संकटग्रस्त स्त्री या पुरुष को बचाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न नहीं करता उसे दंडपात्र समझा जाता था। प्राकृति संकट जैसे भूकम्प, अतिवृष्टि, उल्कापात आदि घटनाएं बार-बार होती थीं, अतः उनसे होने वाली जनहानि को कम करने के लिए कठोर नियम आवश्यक थे। इस प्रकार का कानून भारत में अब नहीं है। हाँ, कुछ विदेशों में ऐसा प्रवन्ध या तो है या चर्चा का विषय बन चुका है।

धर्मशास्त्रों की अपराध-सूची में कुछ तो ऐसे दुष्कृत्य उल्लिखित हैं जो आज भी प्रचलित हैं। मनुष्य-वध, शारीरिक हानि पहुंचाना आदि अपराध तो दंडयोग्य थे ही किन्तु स्त्री-पुरुष सम्बंध की पवित्रता पर बहुत जोर दिया जाता था। इसीलिए सतकवि तुलसीदास जी को कहना पड़ा—

उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥[21]

तथा—

बिनु अवसर भय तें रह जोई।
जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक परपति रति करई।
रौरव नरक कल्प सत परई॥[22]

दूषित विचारों एवं मनोभावों से परस्त्री या अविवाहित स्त्री के अंग या वस्त्र छूना भी अपराध था। बिना विवाह के शारीरिक सम्बंध रखना अपराध था। यही कारण था कि कि शूर्पणखा ने कुत्सित विचारों से जो सूर्य वंशी राजकुमारो से सम्बंध करना चाहा, उसे उसका परिणाम भुगतना पड़ा और लक्ष्मण ने उसको अग-भंग की सजा दी—

---

21. मानस, अरण्यकाण्ड, 4 (6)
22. मानस, अरण्यकाण्ड, 4 (8)
23. मानस, अरण्यकाण्ड, 17 (1)

नाक कान बिनु भइ बिकरारा।
जनु स्रव सैल गेरु कै धारा॥[23]

प्राचीन युग के लेखक गौतम, बौधायन, वशिष्ठ और आपस्तंब द्वारा लिखित ग्रंथो को हम 'धर्मसूत्र' कहते हैं। उसके बाद के लेखक मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, विष्णु, पराशर आदि द्वारा लिखित ग्रंथों को 'धर्मशास्त्र' कहते हैं। इन सभी ग्रंथो को एक नाम दिया गया है—'स्मृति'।

यह सर्वविदित है कि शौच-मूत्रादि वेगों (pressure) को धारण करने से रोग प्रादुर्भूत होते हैं अतः इहलोक और परलोक में भी अपना हित चाहने वाले व्यक्ति को निम्न वेगों को रोकना चाहिए—

(1) मानसिक वेग—लोभ, शोक, भय, क्रोध, अहंकार, निर्लज्जता, ईर्ष्या, अतिराग तथा दूसरे का धन लेने की इच्छा।

(2) वाचिक वेग—अत्यंत कठोर वचन, चुगलखोरी, असत्य वचन तथा अकालयुक्त वचन बोलना।

(3) शारीरिक वेग—हिंसा, परपीड़न, परस्त्रीगमन एवं चोरी करना।

इन उपर्युक्त वेगों को रोकने से मनुष्य के मन, वचन और कर्म पापरहित हो जाते हैं; जिससे वह पुण्य का भागी होता है तथा सुखपूर्वक अर्थ, धर्म एव काम को प्राप्त करके उसके फलों का उपभोग करता है। यह आदर्श ही आचार-संहिता की आधारशिला है।

ईश्वर तथा वेदशास्त्र को मानने वाले ही नहीं, किन्तु उनको न मानने वाले देशों की सरकारें भी व्यक्ति-परिवार-समाज-राष्ट्र की उन्नति तथा सुखशान्ति के लिए व्यक्ति, परिस्थिति, देश-काल पर ध्यान रखकर "यह करो, यह न करो"—ऐसा कानून बनाती हैं; अन्यथा अज्ञानी दुष्ट पुरुष परिवार-समाज-राष्ट्र की ही नही, अपितु व्यक्तिगत अपनी भी सुख-शान्ति का भी विनाश कर लेते हैं। उक्त विधि-निषेधात्मक कानून को शास्त्रीय भाषा में धर्म-अधर्म नाम से कहा जा सकता है। धर्म-अधर्म की परिभाषा देते हुए महाकवि तुलसीदास जी ने कहा था—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥[24]

इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि व्यक्ति-परिवार-समाज-राष्ट्र की सुख-शाति के लिए धर्माधर्म की आवश्यकता ईश्वर-वेद-शास्त्र को न मानने वालों को भी हे तथा यह सदा रहेगी। उक्त आवश्यकता की दृष्टि से यह कानून बनाया गया

---

24 मानस, उत्तरकाण्ड, 40 (1)

पति बंचक परिपति रति करई।
रौरव नरक कल्प सत परई।
छन सुख लागि जनम सत कोटी।
दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ॥[29]

प्राचीन काल में बहुत से अपराध अधर्म की परिभाषा में आते थे जिनके दण्ड का विधान प्रायश्चित के रूप में था–

अकार्य कारणा मेषां प्राशश्चितं तुकल्पयेत्।
यथा सकल्प तुरूपं व दण्ड चैवा प्रकल्पयेत् ॥

(दण्ड विवेक पृष्ठ 76)

अपराध के दो रूप व्यवहार में थे–अधर्म और कुकर्म। अधर्म पाप था और कुकर्म का तात्पर्य–सामाजिक अपराध से था जो सामाजिक रूप से राजा द्वारा दण्डनीति के अनुसार दण्डित किया जाता था। इसीलिए राजा को धर्मशील होना चाहिए–

कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू।
चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥[30]

यदि राजा अदण्डनीय व्यक्ति को दण्ड दे और दण्डनीय व्यक्ति को दण्ड न दे तो वह राज्य करने योग्य नहीं है और इस लोक में राज्य से च्युत हो जाता है तथा मरने पर नरक में पड़ता है–

अदण्डवान् दण्डयन् राजा दण्डयांश्चैवाप्यदण्डयन्।
इह राज्यात् परिभ्रष्टो नरकं च प्रपद्यते ॥[31]

यदि राजा दण्ड की व्यवस्था न करे तो सभी देवता, दैत्य, प्राणी तथा पक्षी मर्यादा का उल्लंघन कर जाएंगे। इसलिए दण्ड सभी प्रजाओं पर शासन करता है तथा दण्ड ही सबकी रक्षा करता है। दण्ड सभी के सो जाने पर जागता रहता हे, अतएव बुद्धिमान लोग दण्ड को धर्म मानते हैं। कुछ पापी राजदण्ड के भय से, कुछ यमराज के दण्ड के भय से और कतिपय पारस्परिक भय से भी पापकर्म (अपराध) नहीं करते। इस प्रकार इस प्राकृतिक जगत् में सभी कुछ दण्ड पर ही प्रतिष्ठित है। यदि दण्ड न दिया जाए तो प्रजा घोर अन्धकार में डूब जाए। फलत व्यक्ति-परिवार-समाज तथा राष्ट्र में सुख-शांति की स्थापना भी न हो सकेगी।

---

29 मानस, अरण्यकाण्ड, 4 (8-9)

30 मानस, अयोध्याकाण्ड, 178 (1)

31 मत्स्य पुराण, अध्याय 225, श्लोक-6

सुख-शांति की स्थापना की दृष्टि से तथा प्रत्यक्ष में किया हो या एकान्त मे किया हो, पापाचार तो पापाचार ही है, उसका दण्ड अवश्य मिलना ही न्याययुक्त है। यहां तक कि जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी हो वह राजा भी दण्ड पाने का भागीदार है—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥[32]

यह राजा को दिया दण्ड ईश्वर प्रदत्त होता है। ईश्वर दण्ड-व्यवस्था करेगा, इसे स्वीकार कर लेने पर भी यह प्रश्न होता है कि भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न ही नहीं, अपितु विरुद्ध कानून हैं; जैसे पाश्चात्य देशों में परस्पर अनुमति-पूर्वक परस्त्री-परपुरुप के आलिंगन, चुम्बन में ही नहीं बल्कि सहवास में भी कोई दोष नही माना जाता और भारतवर्ष में चुम्बन में दोष माना जाता है। भारत में ही कुछ वर्ष पूर्व गर्भपात को दोप माना जाता था, अब सरकार ने गर्भपात का विधान बना दिया, अतः दोष नहीं माना जाता। शराब पीना मुसलमानों के लिए पाप है और गोमांस हिन्दुओं के लिए। ईसाइयों के लिए दोनों पाप नहीं हैं। तीनों अपने पक्ष में शाश्वत एवं दैवी आधार प्रस्तुत करते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण इस धारणा को बड़ी स्पष्टता से व्यक्त करता है और तीनों मान्यताओं का समाजशास्त्रीय रूप सामने रख देता है। अतः मानवकृत विधान बदलते रहते हैं। व्यक्तियो के मनमाने विचारों से तथा राष्ट्र के मनमाने कानूनों से धर्माधर्म की व्यवस्था किसी प्रकार भी नहीं हो सकती। वे जिस सामाजिक पद्धति पर स्थिर हैं वहीं अपराधी की जन्मभूमि हैं। अतः यह मान लिया गया कि पाप एवं अपराध की न तो कोई सार्वभौम सूची है और न शाश्वत आधार।

धर्म की नीति पर आधारित होने के कारण 'कुरआन' की सूरा सत्तरह, चौबीस तथा उनच्चास में प्रजा के मूल अधिकारों की रक्षा पर विशेष बल दिया गया है। दोषारोपण (24 : 23), परगृह में बिना आज्ञा प्रवेश (49 : 27-29), बिना अधिकार बध करना (17 : 33) आदि विभिन्न आदेशों के पीछे प्राण रक्षा, व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा, निजी जीवन की रक्षा आदि अधिकारों की सुरक्षा की ही घोषणा है। 'कुरआन' की सत्तरहवीं सूरा की ब्यालीसवीं आयत में लिखा है कि व्याभिचार से दूर रहो क्योंकि परस्त्रीगमन निर्लज्जता और कुपथ (17 : 42) है। अतः इस्लाम धर्म में भी 'कुरआन' के द्वारा दी गई व्यवस्था के अनुसार समाज-व्यवहार सदाचरण पर आधारित है। नैतिक शिक्षा व्यक्तित्व के विकास में सहायक है। अतः धर्मशास्त्र

---

32. मानस, अयोध्याकाण्ड, 70 (3)

कोई भी हो उसमें वर्णित विचार बुरे को बुरा तथा अच्छे को अच्छा मानता है। अत संतकवि तुलसीदास जी ने कहा कि समाज में जिनके द्वारा चिन्ता होती है वह चुगलखोर, अकारण क्रोध करने वाला, स्वार्थी, माता-पिता, गुरु एवं बन्धु-बान्धवों के साथ विरोध रखने वाला, दूसरों का अनिष्ट करने वाला तथा निर्दयी होता है—

सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी।
जननि जनक गुर बंधु बिरोधी॥
सब बिधि सोचिअ पर अपकारी।
निज तनु पोषक निरदय भारी॥[33]

रामायण, महाभारत और अन्य प्राचीन संस्कृत साहित्य में अपराध की गणना नैतिक मान्यताओं के उल्लंघन और धर्म की नैतिक मान्यताओं के 'उल्लंघन तथा आदर्शों' की उपेक्षा के रूप में होती थी। हमारा सम्पूर्ण प्राचीन धार्मिक और पुराण साहित्य इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। प्राचीन कथा-साहित्य को देखने से प्रतीत होता है कि मानव में अपराध की अधोगामी प्रवृत्ति आदियुग से अभिव्यक्त होती रही है और उसके उन्मूलन हेतु श्रीकृष्ण ने स्वयं शान्ति व्यवस्था का बीड़ा उठाने की घोषणा इन शब्दों में उद्घोषित की—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥[34]

महाकवि तुलसीदास जी के शब्दों में—

जब जब होई धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥[35]

गीता में श्रीकृष्ण से अर्जुन ने जानना चाहा कि पाप का कारण क्या है और वह किस आचरण से प्रेरित है ? तब श्रीकृष्ण ने कहा—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्॥[36]

---

33 मानस, अयोध्याकाण्ड, 172 (1-2)

34 श्रीमद्भगवद्गीता, 4.7

35 मानस, बालकाण्ड, 120 (3-4)

36 श्रीमद्भगवद्गीता, 3/37

अर्थात् रजोगुण से उत्पन्न यह काम ही क्रोध है। यह ही अग्नि से सद्भागों से न तृप्त होने वाला और बड़ा पापी है। काम ही मुख्य कारण है। इसी कारण महाकवि तुलसीदास जी ने भी क्रोध को पाप का मूल कहा है—

लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल ॥[37]

महाभारत में दण्ड का सार्वभौम रूप प्रस्तुत किया गया है। उसके अनुसार दण्ड प्रजा पर शासन करता और उसकी रक्षा करता है। विश्व सोता है तो वह जागता है। अतएव विद्वान उसे धर्म कहते हैं। दण्ड ही धर्म, अर्थ और काम की रक्षा करता है। अतएव वही त्रिवर्ग है। इस प्रकार के विवेचन में वैदिक समाज मे विकसित होने वाली परम्परा में परिवर्तन होने लगता है। अब मनुष्य जो भी नियम पालन करता है वह दण्ड के भय से। इसलिए वेदानुसार विधि की उत्तम रीति से राज्य में पाप (अपराध) का कहीं लेश भी नहीं रह जाता। दृष्टव्य है—

जब प्रतापरबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस।
प्रजा पाल अति बेद बिधि कतहुँ नहीं अघ लेस ॥[38]

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं भिक्षुक भी मूलतः पवित्र नहीं माने जाते। यदि वे जीवों के द्रोह में रत, मोह के वश तथा कामासक्त हैं तो उन्हें स्वप्न मे भी निद्रा नहीं आती और फलस्वरूप चित्त अशांत रहता है। संत तुलसीदास जी के शब्दों में—

ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन विश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥[39]

मनुष्य भी दण्ड के ही भय से अपने कर्त्तव्य पालन में लगते हैं। यह भय राजदण्डमूलक हो या यमदण्डपरक लेकिन दण्ड-भय से ही पाप न करने मे भी प्रवृत्ति होती है। मनुष्य का स्वभाव भयमूलक है, इसीलिए समुद्र ने श्रीराम के सम्मुख आत्मसमर्पण कर क्षमा मांगी—

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे।
छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥[40]

जैसे सूर्य अन्धकार को दूर करता है, अंकुश हाथी को वश में रखता है,

---

37. मानस, बालकाण्ड, 277 (दोहा)
38. मानस, बालकाण्ड, 153 (दोहा)
39. मानस, लंकाकाण्ड, 78 (दोहा)
40. मानस, सुन्दरकाण्ड, 58 (1)

वैसे ही दण्ड दुष्टों को सन्मार्ग पर ले आता है। इसके द्वारा ही राजा पृथ्वी पर शासन करता है और प्रजा सुख का भोग। राज्य का सब कार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन, घर—इन सभी का रक्षण करने से परिणाम शुभ होगा। ध्यातव्य है—

राजकाज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम ॥[41]

दण्ड के प्रयोक्ता में सत्यवादिता, समीक्षा करने वाली प्रज्ञा, धर्म, अर्थ और काम के तत्वों का ज्ञान होना चाहिए। इस प्रकार के प्रयोक्ता से त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति होती है। अन्यथा दण्ड प्रयोक्ता का सर्वनाश कर देता है। महातेजस्वी, दुर्धर दण्ड से राजधर्म-च्युत राजा सकुटुम्ब नष्ट हो जाता है जिस प्रकार रावण कुमार्ग पर चलकर अपने ही पाप से नष्ट हो गया।

बिस्व द्रोह रत यह खल कामी।
निज अघ गयउ कुमारगगामी ॥[42]

दण्ड से सम्बद्ध शक्ति का कार्य अपराधी को दण्ड ही नहीं देता है अपितु ऐसा वातावरण प्रस्तुत करता है जिसमें अपराध की स्थिति न आ सके। शक्ति से किसी अधिकार की स्थापना नहीं हो सकती क्योंकि रावण के बल से पृथ्वी कांपती थी। अग्नि, चन्द्रमा तथा सूर्य रावण के सम्मुख तेजहीन थे यहां तक कि शेष और कच्छप भी दैत्याकार रावण का भार सहन करने में असमर्थ थे किन्तु वह शक्तिशाली आपराधिक मनोवृत्ति के कारण आज मिट्टी में मिल चुका है—

तव बल नाथ डोल नित धरनी।
तेजहीन पावक ससि तरनी ॥
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा।
सो तनु भूमि परेउ भरि छारा ॥[43]

दण्ड जीवमात्र की सुरक्षा के लिए है। उसका आधार है अनुशासन। अनुशासन का तात्पर्य है विनय। यह दो प्रकार का होता है—कृतक (नैमित्तिक) और स्वाभाविक (प्राकृतिक)। जो परिश्रम करके किन्हीं कारणों से प्राप्त किया जाए वह कृतक और जो वासनावस स्वतः सिद्ध हो वह स्वाभाविक है। इस प्रकार विनय में बौद्धिक एवं नैतिक दोनों पक्षों का समावेश है। दण्ड से सम्बद्ध दो शब्द

---

41. मानस, अयोध्यकाण्ड, 305 (दोहा)
42. मानस, लंकाकाण्ड, 109 (2)
43. मानस, लकाकाण्ड, 103 (3)

ओर हैं—बल तथा शक्ति। कौटल्य ने बल एवं शक्ति का सम्बंध दण्ड से करके उसे न्यायालय की सीमा से व्यापक बनाया है। वह देवलोक से लेकर स्थावर, जगल, समाज के संघटन, राजा की प्रकृतियों से सम्बद्ध हो गया। उसमें सैनिक शक्ति से लेकर दैवी शक्ति तक का समन्वय हुआ। इस प्रकार दण्ड का आधार शक्ति है लेकिन उत्पीड़न एवं प्रताड़ना से युक्त नहीं। महाकवि तुलसीदास जी ने कहा था कि जिसके हाथ में काल, कर्म तथा जीव हो उस शक्ति को ही दण्ड देने का आधार माना जा सकता है। रावण को मंदोदरी समझा रही है कि—

तासु विरोध न कीजिअ नाथा।
काल करम जिव जाकें हाथा॥[44]

कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र (1/4/14-16) में पक्षपात (स्ववंश-परपक्ष) स्वार्थ, शक्तिसंचय, लोभ आदि को दुष्प्रणीत दण्ड का आधार माना है। ऐसे दण्ड से सामाजिक क्रांति हो जाती है। ऐसे दण्ड से तपस्या में संलग्न परिब्राजकों तक मे उद्वेग हो जाता है। दण्ड के दुरुपयोग से राजाओं का सदा नाश हुआ है। विधि से ज्ञात एवं प्रयुक्त दण्ड ही प्रजा को त्रिवर्ग की प्राप्ति कराता है। अतएव विधि-नियंत्रित दण्ड का आधार है अनुशासन और विनय—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई।
मम अनुशासन मानै जोई॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई।
तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥[45]

आपराधिक प्रवृत्तियां

प्रारम्भ में न राज्य था न राजा। न दण्ड था न दण्ड देने वाला। धर्म से ही प्रजा परस्पर अपनी रक्षा करती थी। कालांतर में क्रमशः खेद एवं मोह से धर्म का नाश हुआ। मनुष्य लोभ के वशीभूत हो गए। उससे काम और रोग उत्पन्न हुआ। फलत व्यक्ति कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के ज्ञान से विमुख हो गया। अतः अपराध के मूल कारण काम, क्रोध और लोभ हैं—

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरू लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥[46]

---

44. मानस, लंकाकाण्ड, 5 (5)
45. मानस, उत्तरकाण्ड, 42 (3)
46. मानस, अरण्यकाण्ड, 38-क (दोहा)

क्याकि लोभ को इच्छा और दम्भ का वल है, काम को केवल स्त्री का वल है तथा क्रोध को कठोर वचनों का वल है। महाकवि तुलसीदास जी के शब्दों में—

लोभ कें इच्छा दंभ वल काम कें केवल नारि।
क्रोध कें पुरुष वचन वल मुनिबर कहहिं बिचारि ॥[47]

मोह के वशीभूति स्वार्थपरायण होकर मनुष्य अनेक अपराध करता है जिसके फलस्वरूप मृत्यु समय अनेक कष्ट सहकर अपना परलोक भी खराव कर लेता है—

करहिं मोहबस नर अघ नाना।
स्वारथ रत परलोक नसाना ॥[48]

कुछ सज्जन ऐसा मानते हैं कि काम, क्रोध, लोभ और मोह आदि दुर्गुण ओर झूठ, कपट, चोरी, व्याभिचार आदि दुराचारों के रहते हुए भी ज्ञान के द्वारा मुक्ति हो जाती है, परन्तु यह बात न तो शास्त्रसम्मत है और न युक्तिसंगत ही। लोगों को इस भ्रम में कदापि नहीं पड़ना चाहिए। यह सर्वथा सिद्धांत-विरुद्ध बात है। ऐसे दोषयुक्त लोगों को तो स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में आसुरी सम्पदा वाला बतलाया है और इनके लिए आसुरी योनियों की प्राप्ति, दुर्गति और घोर नरक की प्राप्ति का निर्देश किया है। भगवान कहते हैं—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥[49]

"हे अर्जुन ! वे मूढ़ मुझको न प्राप्त होकर जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं, फिर उससे भी अति नीच गति को ही प्राप्त होते हैं अर्थात घोर नरकों में पड़ते हैं। काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले अर्थात उसको अधोगति में ले जाने वाले हैं अतएव इन तीनो को त्याग देना चाहिए।"

महाकवि तुलसीदास जी भी कहते हैं—

काम क्रोध मद लोभ की जब लगि मन महँ खान।
तुलसी पंडित मूरखा दोनों एक समान ॥

---

47 मानस, अरण्यकाण्ड, 38-ख (दोहा)

48 मानस, उत्तरकाण्ड, 40 (2)

49 श्रीमद्भगवद्गीता, 16/20-21

इससे यही सिद्धांत निश्चित होता है कि दुर्गुण और दुराचार के रहते हुए कोई भी पुरुष मुक्त नहीं हो सकता अर्थात आपराधिक वृतियों में प्रवृत रहेगा। यही अटल सिद्धांत है।

हमारी इन्द्रियों में अनेक दोष भरे हुए हैं, जैसे वाणी में कठोरता, मिथ्या भाषण, व्यर्थ बकवाद, अप्रिय वचन, अहितकर वचन आदि। इसी प्रकार कानो मे परनिन्दा सुनना, व्यर्थ वचन सुनना, जिह्वा में स्वाद की और त्वचा में स्पर्श की लोलुपता, नेत्रों में पर स्त्री को देखना, दूसरे के दोष देखना एवं इन्द्रियो के भोगों में राग-द्वेष आदि दोष भरे पड़े हैं।

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा।
उभय अपार उदधि अवगाहा॥[50]

सम्पूर्ण सृष्टि प्रकृति के तीन गुण-प्रभावों-सात्विक, राजस और तामस से रगी हुई है। सत्व गुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और मनुष्य उन्नति करता है। रजस् से लोभ पैदा होता है। तथा रजस् को अपनाने वाले बीच में ही चक्कर काटते रहते हैं। तमोगुण से प्रमाद, मोह, रोष, अज्ञान पैदा होते हैं तथा तमोगुणी को पतन की ओर ले जाते हैं। इसीलिए महाकवि तुलसीदास जी ने स्वप्न में भी इनके वश में न होने की सलाह दी है–

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू।
जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥[51]

ये तीनों गुण ही सृष्टि में फैली हुई सारी विभिन्नता के कारण हैं। विश्व मे ऐसा कोई प्राणी नहीं जो इन तीनों गुणों से सर्वथा मुक्त हो। मनुष्य के सम्पूर्ण कार्य, भाव और विचार इन गुणों से प्रेरित तथा ओतप्रोत होने के कारण सात्विक, राजसिक या तामसिक होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी की चेतावनी है कि कलियुग मे सम्पूर्ण धर्म तामस हो जाएगा–

सुनु खगेस कलि कपट हट दंभी द्वेष पाषंड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मांड॥
तामस धर्म करहिं नर जप तप व्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान॥[52]

अपराधों पर प्रभावी नियंत्रण रखने की दिशा में पुरातन भारतीय मनीषी

---

50. मानस, बालकाण्ड, 5 (1)
51. मानस, अयोध्याकाण्ड, 74 (3)
52. मानस, उत्तरकाण्ड, 101 (दोहा)

सदैव सजग रहे हैं। ऋग्वेदीय काल में 'पाप' या अपराध पर विजय की भावना भलीभांति उत्पन्न हो गई थी। ऋग्वेद में एक ऋषि 'वरुण' से कहता है कि 'पाप' किसी व्यक्ति की शक्ति के कारण नहीं होता, प्रत्युत यह भाग्य, सुरा, क्रोध, घृणा एव असावधानी के कारण होता है। यहां तक कि स्वप्न भी दुष्कृत्य करा डालता है। 'पाप' या अपराध को परिभाषित करते हुए ऋग्वेद (10-5-6) में उल्लेख है कि कवियों ने सात मर्यादाएं बनाई हैं, वह मनुष्य जो इनमें से किसी का भी उल्लंघन करता है पापी हो जाता है। यहां कवि से तात्पर्य ऋषियों या धर्मशास्त्रकारों से है। ऋग्वेद के व्याख्याकार निरुक्त ने अपनी पुस्तक निरुक्त (6-27) में स्पष्ट किया है कि चोरी, व्याभिचार, ब्रह्महत्या, मदिरापान, दुष्कर्म की पुनरावृत्ति, असत्यभाषण प्रमुख पाप या अपराध हैं। महाकवि तुलसीदास जी ने काम, क्रोध, मद, लोभ, निर्दयता, कपटीपन, कुटिलता आदि गुणों को पापों का घर कहा है—

> **काम क्रोध मद लोभ परायन।**
> **निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥**[53]

दूसरों से द्रोह करना; परायी-स्त्री, पराए-धन तथा परायी निन्दा में आसक्त रहना भी पापमय मनुष्य की पहचान हैं जो नर-शरीर धारण करते हुए भी राक्षस प्रवृत्ति के हैं—

> **पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपवाद।**
> **ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥**[54]

अपराधों के प्रकार

अपराधों के ऐतिहासिक विकास से हम स्पष्ट देखते हैं कि उनका सूत्र-पात वैदिक काल से ही हो चुका था। यह सत्य है कि उत्तरवर्त्ती काल में अपराध और पाप अलग करना कठिन हो गया था, किन्तु वैदिक काल से ही हम राज्य और समाज के माध्यम से दंड-क्रिया का प्रयोग होते देखते हैं। अपराधों की यत्किंचित जो सूची मिलती है उससे स्पष्ट हो जाता है कि पाप से स्वतंत्र अपराध का अस्तित्व स्वीकार कर लिया गया था। अन्ततोगत्वा पाप का स्थान अपराध ने तथा प्रायश्चित का स्थान दण्ड ने ले लिया था। विश्वास के स्थान पर अपराध-निर्णय में विवेक शक्ति का प्रयोग होने लगा। इसीलिए उनका निर्णय और व्यवहार मात्र अलौकिक

---

53 मानस, उत्तरकाण्ड, 38 (3)

54 मानस, उत्तरकाण्ड, 39 (दोहा)

शक्तियों के हाथ में नहीं दिया गया अपितु उनके स्थान पर समाज और व्यक्ति से उनका सम्बन्ध था।

वैदिक काल में अपराध की सूची के साथ उस काल की स्थिति का प्रभाव मुख्य रहता है। उत्तरवर्ती काल की स्थिति में उस काल की स्थिति का योग स्पष्ट हुआ। फलतः अपराध के वैयक्तिक, सामाजिक और राज्य सम्बंधी सूची का विकास हुआ। इस सूची विस्तार में अपराध संहिता का पूर्ण रूप सामने आ जाता है तथा अपराधों के प्रति दण्ड निश्चय करने के लिए भारतीय दण्ड संहिता भी तैयार किया गया। चूंकि उत्तरवर्ती काल के अपराध परिगणन में समाज की स्थिति का महत्वपूर्ण स्थान रहा है अतः उससे स्पष्ट होता है कि अपराध की कोई शाश्वत सूची नहीं है। उसमें देश, काल और परिस्थिति के अनुसर परिवर्तन हुआ।

साधारणतया, अपराधों के चार वर्ग माने गए हैं–(1) वाक्पारूष्य (शब्दो के द्वारा किया गया अपराध), (2) दण्ड-पारूष्य (शारीरिक अपराध, चोरी), (3) साहस (बलपूर्वक किया गया अपराध), तथा (4) स्त्री संग्रहण (महिलाओं से सम्बंधित अपराध)।

वाक्पारूष्य :

वाक्पारूष्य का सामान्य अर्थ है अपशब्द प्रयोग। कात्यायन के अनुसार दूसरे के सामने संसार के निंदित शब्दों के उच्चारण, हुंकार अथवा कठोर शब्द करना वाक्पारूष्य है–

हुंकार कासनचेव लोके यच्च विगर्हितम्।
अनुकुर्यादनुब्रूयाद्‌ वाकपारूष्यं तदुच्येत॥[55]

बृहस्पति ने वाक्पारूष्य के तीन भेद किए हैं–निम्न, मध्यम और उच्च। देश, जाति, कुटुम्ब और व्यक्ति के सम्बंध में प्रयुक्त अपशब्द निम्न माना जाता है। महाकवि तुलसीदास जी के शब्दों में ध्यातव्य है प्रसंग–

रे कपिपोत बोलु संभारी।
मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी॥[56]

और माता, बहन एवं कन्या के संबंध में मध्यम। महाकवि तुलसीदास जी ने भरत

---

55. कात्यायन, उद्धृत अपरार्क, पृष्ठ 805

56. मानस, लंकाकाण्ड, 20 (1)

के मुख से जो अपशब्द माता कैकेयी को कहलवाए वे इस प्रकार हैं–

जब तें कुमति कुमत जियँ ठयऊ।
खंड खंड होइ हृदउ न गयऊ॥
वर मागत मन भइ नहिं पीरा।
गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥[57]

इसी प्रकार निषिद्ध भोजन, पान और पाप के सम्बंध में प्रयुक्त वाक्पारूष्य उच्च माना जाता है। यथा–

भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए।
पद पखारि सादर बैठाए॥
परूसन जबहि लाग महिपाला।
भै आकासबानी तेहि काला॥
बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू।
है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥[58]

अतः वाक्पारूष्य में वे सब अपराध आ जाते थे जो शब्दों के द्वारा किए जाते हैं। यथा अपने से ऊंचे व्यक्ति का अपमान, स्मृतियों और श्रुतियों का अनादर, किसी विकलांग की शारीरिक विषमता के प्रति ध्यान आकर्षित करना और वीभत्स अपशब्द। इन सब अपराधों के लिए जुर्माना किया जा सकता था। व्यंगात्मक प्रशंसा करना भी अपराध है। किन्तु यदि अपराधी अपराध स्वीकार करता है और पुन. ऐसा नहीं कहेगा तो आधा दण्ड देना होता है। ध्यातव्य है–

राम मात्र लघु नाम हमारा।
परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥
देव एकु गुनु धनुष हमारें।
नव गुन परम पुनीत तुम्हारें॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे।
छमहु बिप्र अपराध हमारे॥[59]

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 355 में वर्णित है कि "जो कोई किसी व्यक्ति पर हमला या आपराधिक बल का प्रयोग उस व्यक्ति द्वारा गम्भीर और अचानक प्रकोपन (provocation) दिए जाने पर करने से, अन्यथा, इस आशय से करेगा

---

57 मानस, अयोध्याकाण्ड, 161 (1)

58 मानस, बालकाण्ड, 172 (2-3)

59 मानस, बालकाण्ड, 281 (3-4)

के तद्द्वारा उसका अनादर किया जाए, दण्डित किया जाएगा।" दृष्टव्य है 'रामचरितमानस' का यह प्रसंग—

बहु धनुहीं तोरीं लरिकाई।
कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं।
एकहि धनु पर ममता केहि हेतू।
सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू॥[60]

दण्ड पारूष्य :

किसी को छूना, मारने के लिए दण्ड या हाथ उठाना और चोट कर देना दण्डपारूष्य कहा जाता है। किसी के अंग को हाथ, पाँव या अन्य शास्त्र से पीड़ित करना दण्डपारूष्य है। यथा—

अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा।
अनुज गहे पद बारहिं बारा॥[61]

इतना अवश्य है कि दण्डपारूष्य में सिद्ध अपराध किसी का हो उसे दण्ड अवश्य मिलता है। इसमें प्रथम प्रयास करने वाले को अधिक उत्तरदायी माना जाता है। दण्डपारूष्य में स्त्री एवं वर्ण के आधार पर भेद किया गया है। झगडे मे यदि अस्पृश्य, धूर्त, दास, म्लेच्छ, पापकारी एवं वर्णसंकर हो तो सामान्य नागरिक की अपेक्षा उसके अपराध अधिक गम्भीर माने जाते हैं। झगड़े में एक पक्ष अस्पृश्य, धूर्त, दास, म्लेच्छ, पापकारी, प्रातिलोम्य हो तो उन्हें अर्थदण्ड के स्थान पर ताडना करना चाहिए। इसी कारण संतकवि तुलसीदास जी को कहना पड़ा कि—

ढोल गंवार सूद्र पसु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी॥[62]

शारीरिक बल प्रयोग से किए गए अपराध मनुष्यों को हानि पहुंचाने वाले दुष्कृत्यों तक सीमित थे किन्तु बाद में पशुओं को हानि पहुंचाना भी अपराध माना गया। इतना ही नहीं, मनुस्मृति के अनुसार वृक्षों, पौधों और लताओं को हानि पहुंचाना भी अपराध है।

---

60. मानस, बालकाण्ड, 270 (4)
61. मानस, सुन्दरकाण्ड, 40 (3)
62. मानस, सुन्दरकाण्ड, 58 (3)

साहस (स्तेय) :

स्तेय ऋग्वेद में भी महान अपराध माना गया है। उससे बचने के लिए देवताओं की स्तुति की गई है। मनु ने स्तेय और साहस में अन्तर किया है। आधुनिक शब्दों में स्तेय को चोरी तथा साहस को डाका कहा जा सकता है। वस्तुओं के मूल्य के आधार पर चोरी के तीन भेद हैं—क्षुद्र, मध्यम और उत्तम।

दूसरे की सम्पत्ति का बलपूर्वक राजकर्मचारी, स्वामी अथवा अन्य किसी की उपस्थिति में भी अपहरण करना साहस है। साहस में सम्पत्ति के अतिरिक्त पर-स्त्री एवं पुरुष का अपहरण भी हो सकता है। चोरी की अपेक्षा बल एवं दर्प से अपहरण के विशेष कारण से साहस स्तेय आदि से अतिरिक्त अपराध माना गया और इसका दण्ड भी अतिरिक्त होता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 362 में लिखा है कि "जो कोई किसी व्यक्ति को किसी स्थान से जाने के लिए बल द्वारा विवश करता है, या किन्हीं प्रवंचनापूर्ण उपायों द्वारा उत्प्रेरित करता है, वह उस व्यक्ति का अपहरण (abduction) करता है, कहा जाता है।" भक्त शिरोमणि तुलसीदास जी ने 'मानस' में रावण द्वारा सीता का अपहरण-प्रसंग इस प्रकार वर्णन किया है—

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाई।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हांकि न जाइ॥[63]

स्त्री-संग्रहण :

"पर स्त्री-पुरुष के मिथुनी भाव" को स्त्री-संग्रहण कहा जाता है। यह तीन प्रकार का होता है—बल, उपाधिकृत और अनुरागज। एकान्त स्थान में इच्छा के विपरीत मत्त, उन्मत्त, प्रमत्त या विलाप करते हुए के साथ बलात्कार है। छद्म से गृह मे बुलाकर मद्य आदि द्वारा अनुचित मनोभाव की अवस्था में संयोग को उपाधिकृत कहते हैं। परस्पर चक्षुराग से अथवा दूती आदि के माध्यम से, रूप या अर्थ लोभ से किए भाग को अनुरागज कहा जाता है। इसीलिए महाकवि तुलसीदास जी ने स्त्री-संग्रहण अपराध के लिए बालि-बध को उचित ठहराया—

अनुज बधू भगिनी सुत नारी।
सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥

---

63 मानस, अरण्यकाण्ड, 28 (दोहा)

इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई।
ताहिं बधें कछु पाप न होई ॥[64]

दण्ड के सिद्धांत

प्रारम्भिक समाजों में समाज या उसके प्रतिनिधियों द्वारा न्याय प्रतिशोध की भावना पर आधारित रहता है। दंड, सामाजिक-संरक्षण की दृष्टि से अधिकांश में 'बदला' के आसपास ही रहता है। अपराधी कष्ट, प्रायश्चित या उस समय का समाज जो कुछ प्रस्तुत करता है उसके लिए सदा तैयार रहता है। वैदिक काल में अत्यधिक दण्ड ऋषि-मुनियों द्वारा शाप रूप में दिया जाता था जिसका मूल्य प्रायश्चित मे चुकाना पड़ता था। ध्यातव्य है—

तदपि साप सठ देहउँ तोही।
नीति बिरोध सोहाइ न मोही ॥
जौं नहिं दंड करौं खल तोरा।
भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा ॥[65]

वैयक्तिक प्रतिशोध और सामाजिक न्याय उस काल में अधिक समान रहते है। सामाजिक न्याय अधिक निष्पक्ष रहता है। किन्तु अपराधी व्यक्ति स्वय ही नहीं अपितु निर्णायकों से तिरस्कृत किया जाता है। इसी ग्लानि के कल्पित डर से वह भयभीत रहता है—

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी।
सुनि अघ नरकहुं नाक सकोरी ॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपनें।
सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनें ॥[66]

आधुनिक विधिशास्त्री मुख्यतः दण्ड के चार सिद्धांत मानते हैं—(1) प्रतिकारात्मक (retributive), (2) अवरोधक (deterrent), (3) निरोधक (preventive), ओर (4) सुधारात्मक (reformative)। प्रतीकारात्मक दण्ड-प्रारम्भिक समाज मे आंख के बदले आंख, दांत के बदले आधारित रहा है। ध्यातव्य है—

---

64. मानस, किष्किधाकाण्ड, 8 (4)
65. मानस, उत्तरकाण्ड, 106 (2)
66. मानस, बालकाण्ड, 28 (1)

करइ जो करम पाव फल सोई।
निगम नीति असि कह सबु कोई॥[67]

किन्तु आधुनिक काल में इसके विपरीत हो रहा है कि अंग-भंग कोई करे और फल किसी दूसरे को। संतकवि तुलसीदास जी संभवतया इसी विधि की ओर इंगित कर रहे हैं—

औरू करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु॥[68]

अपराध रोकने एवं समाज के अन्य सदस्यों के लिए चेतावनी देने के लिए अवरोधक दण्ड होता है। यह दण्ड-सिद्धांत अपराधी को अपराध के अयोग्य बनाने और भय पर आधारित है। ध्यातव्य है महाकवि तुलसीदास जी के ये शब्द—

निज कृत कर्म जनित फल पायउँ।
अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी।
एकनयन करि तजा भवानी॥[69]

निरोधक सिद्धांत अवरोधक एवं सुधारात्मक में समन्वय स्थापित करता है। उन्हे परस्पर अलग करना भी कठिन है। इसमें नागरिक को चेतावनी के स्थान पर अपराध के कारणों को समाप्त करना है जिससे अपराध की पुरावृत्ति न हो। इसमें अपराध की अपेक्षा अपराधी पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इसीलिए महात्मा गांधी ने कहा था कि पाप से घृणा करो पापी से नहीं। अपराधी केवल दण्ड नहीं, उपचार का भी पात्र है। अतएव सामाजिक सुरक्षा के साथ अपराधी के व्यक्तित्व पर ध्यान देना आवश्यक है। मनःस्थिति के विशेष कारणों से अपराध हो जाने पर अपराधी में परिवर्तन भी हो सकता है। कभी-कभी महान् व्यक्तियों से भी अपराध हो जाता है। वानरराज सुग्रीव से भी इसी प्रकार का अपराध हुआ था जो भय दिखाकर और समझाकर सुधार लिया गया—

तब अनुजहि समुझावा रघुपति करूना सींव।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव॥[70]

अपराधी यदि कुटुम्ब, जाति, वर्ग या सम्बन्धिन आदि से दण्ड पा चुका

---

67 मानस, अयोध्याकाण्ड, 76 (4)
68 मानस, अयोध्याकाण्ड, 77 (दोहा)
69 मानस, अरण्यकाण्ड, 1 (7)
70 मानस, किष्किंधाकाण्ड, 18 (दोहा)

, तो उचित है कि राज्य उसे उचित मार्ग पर ले आने का प्रयत्न करे। एक बार अपराध किया हुआ व्यक्ति जीवन की योग्यता नहीं समाप्त कर देता। वह सुधरकर उचित मार्ग पर आ सकता है। लेकिन पूर्व अपराध के कारण सुधरने तथा कार्य करने का उसे अवसर ही नहीं मिलता तो स्वाभाविक है कि वह बाध्य होकर पुन अपराध की स्थिति में चला जाता है। अपराध की मनोवृत्ति जब तक समाप्त नही हो जाती, अपराध समाप्त नहीं हो सकता क्योंकि–

उघरहिं अंत न होइ निबाहू।
कालनेमि जिमि रावन राहू॥[71]

दण्डविधान मनोवृत्ति और आदत पर विशेष ध्यान देता है। दमन तो दण्ड का साधन है और सुधार साध्य। दण्ड वही है जिससे अपराध समाप्त किया जा सके। दण्ड का उद्देश्य चरित्र, नैमिकता तथा मानवीय गुणों का विकास करना है। वैदिक समाज में सुधारात्मक दण्ड का आधुनिक रूप नहीं मिलता। सुधारात्मक अंश का समावेश प्रायश्चित में किया जा सकता है। अन्तर यह है कि प्रायश्चित पाप का होता है और दण्ड अपराध का। प्रायश्चित में व्यक्ति का हृदय कुम्हार के आँवे समान जला करता है–

निज अघ समुझि न कछु कहि जाई।
तपइ अवाँ इव उर अधिकाई॥[72]

स्मृति काल तक अपराध और दण्ड के सिद्धांत का सर्वांगीण विकास हो गया। पाप के अधिक अंशों का सम्बंध अपराध के साथ होने लगा। पाप को अब केवल वैयक्तिक न मानकर सामाजिक भी माना जाने लगा। इसीलिए महाकवि तुलसीदास जी को कहना पड़ा कि आधुनिक युग (कलियुग) में पापों के कारण धर्म विनष्ट हो गए और सद्ग्रंथ समाप्त हो गए–

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भरा सद्ग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ॥[73]

महापातकों में मृत्यु तक का प्रायश्चित माना गया जिसे मृत्यु-दण्ड ही कहा जा सकता है। परम्परा में पाप का भाव उपलब्ध होता है और युग की व्यवस्था मे अपराध। अतएव प्रायश्चित और दण्ड दोनों साथ-साथ हो जाते हैं। वेदो मे प्रायश्चित राज्य की ओर से नहीं कराए जाते बल्कि उसे व्यक्ति स्वयं करता है।

---

71. मानस, बालकाण्ड, 6 (3)
72. मानस, बालकाण्ड, 57 (2)
73. मानस, उत्तरकाण्ड, 97 (दोहा)

श्रीराम को वनवास जाने की आज्ञा देने के उपरांत जो दशा दशरथ जी की हुट उसके फलस्वरूप कैकेयी को इतनी आत्मग्लानी पैदा हुई कि वह किंकर्त्तव्यविमूढ हो गई—

गरइ गलानि कुटिल कैकई।
काहि कहै केहि दूषनु देई ॥[74]

प्रायश्चित का सम्बन्ध वैयक्तिक और सामाजिक दोनों होने से एक महान असगति भी उपस्थित हो जाती है। पापी या अपराधी प्रायश्चित और दण्ड दोनो के लिए उत्तरदायी हो जाता है। अतएव 'मानस' में बालि-उद्धार के समय महापाप हेतु प्रायश्चित के साथ मृत्यु दड का भी सुन्दर उदाहरण ध्यातव्य है—

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि ॥[75]

अपराध का 'वैज्ञानिक अध्ययन' व्यक्ति के अध्ययन की ओर विकसित हो रहा हैं आज के विकसित और सभ्य संसार में विशेष रूप से कुछ पश्चिमी देशो में किसी के दण्ड देने से पूर्व अपराध के कारणों को समझने का प्रयत्न किया जाने लगा है। यह एक विवेकपूर्ण एवं स्वस्थ श्रीगणेश है। आज अपराधी की शरीर संरचना, उसमें आए परिवर्तन तथा उनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में अपराध की मूलभूत जड़ें खोजी जाने लगी हैं। यही तलाश का तारतम्य आगे चलकर अपराधो की रोकथाम में अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकता है और इसी से न्याय पाने की आशा की जा सकती है। व्यक्ति के मस्तिष्क, शरीर, बनावट, व्यवहार एव उसके साथ वातावरण आदि को वैज्ञानिक अध्ययन के अनेक प्रायोगिक साधन सामने आ रहे हैं। देखा गया है कि शारीरिक दोष भी अपराध की प्रवृत्ति को प्रभावित करता है। इसलिए कहा गया है—

काना, कुबड़ा, कोहरा, कोतो गर्दन होय।
इन चारों से तब मिले जब हाथ में डंडा होय ॥

शारीरिक दोष में आपराधिक प्रवृत्ति से संत तुलसीदास जी भी सहमत थे—

कानू खोरे कूबरे कुटिल कुचालि जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि ॥[76]

अपराध समाज की एक नितांत अवश्यंभावी बुराई है जो शत प्रतिशत समाप्त

---

74 मानस, अयोध्याकाण्ड, 272 (1)

75 मानस, किष्किंधाकाण्ड, 9 (दोहा)

76 मानस, अयोध्याकाण्ड, 14 (दोहा)

ी नाम ऐसी कल्पना रामराज्य में की गई है राम राज्य में चोरी डाकुओं का तो नाम तक नहीं था स्वप्न में भी पाप कहीं नहीं था वरन् चारों ओर धर्म की ही जय जयकार थी

चारिउ चरन धर्म जग माहीं।
पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥[77]

उस समय सभी दंभरहित, धर्मपरायण, पुण्यात्मा थे। दूसरे के धन को लेने की बात तो दूर रही, कोई छूता तक नहीं था। राम के शासनकाल में किसी वृद्ध ने किसी बालक का मृतक-संस्कार नहीं किया—

निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिद् स्पृशत।
न च स्म वृद्धा बालान प्रेम कार्याणि कुर्वते॥[78]

महाकवि तुलसीदास जी के शब्दों में—

अल्पमृत्यु नहि कवनिउ पीरा।
सब सुन्दर सब बिरूज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना॥[79]

श्रीराम के राज्य में दण्ड केवल सन्यासियों के हाथों में है और भेद नर्तक समाज में क्योंकि राम राज्य में कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिए दण्ड किसी को नहीं होता; 'दण्ड' शब्द केवल सन्यासियों के हाथ में रहने वाले दण्ड के लिए ही रह गया है तथा सभी अनुकूल होने के कारण भेद नीति की आवश्यकता ही नहीं रह गयी—

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र के राज॥[80]

दण्ड-संहिता

'अपराध रहित' समाज की आदर्श कल्पना आज विश्व के सभी देशो में 'कल्पना मात्र' रह गई है। क्या अपने को सर्वथा विकसित मानने वाले किसी देश या राज्य

---

77. मानस, उत्तरकाण्ड, 20 (2)
78. बाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 7426
79. मानस, उत्तरकाण्ड, 20 (3)
80. मानस, उत्तरकाण्ड, 22 (दोहा)

का प्रधान यह घोषणा कर सकता है कि उसका देश अपराधों से सर्वथा मुक्त है। ऐसी घोषणा आज से हजारों वर्ष पूर्व कैकेय नरेश अवश्पति ने की थी—

न मे स्तेनो जन पदे न कदर्यो न मद्यपिः।
नाना हितग्नि ना विद्वान न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥[81]

अर्थात मेरे राज्य में न कोई चोर है, न दुखी है, न मद्यपि (शराबी) है न कोई अविद्वान है। जब कोई व्यक्ति व्याभिचारी ही नहीं है तो स्त्री के दुराचारिणी होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

अपराध संहिता में परिवर्तन एवं विकास आकस्मिक नहीं है। उसके साथ समाज की शक्तियां कार्य करती रहती है। अतः स्पष्ट है कि विधि, व्यक्ति, समाज और राज्य का योगफल ही अपराध संहिता का मूल रहा है चूंकि समाज की नियामक शक्तियां सतत क्रियाशील है अतः उसके उपचार में ही अपराध की वास्तविक समस्या का समाधान रहा है। अभी विभिन्न शोधों से यह भी सिद्ध किया जा रहा है कि अपराध का सम्बंध आर्थिक कारणों से नहीं है क्योंकि यदि गरीबी से सारे अपराध होते हैं तो समृद्ध देशों में अपराधों की कमी होनी चाहिए थी किन्तु समृद्ध देशों में आज मानसिक एवं नैतिक अपराध निर्धन देशों की अपेक्षा अधिक होते हैं। इन तथ्यों से हम निष्कर्ष पर आते हैं कि अपराध के कारण आर्थिक एवं सामाजिक हैं। इसीलिए महाकवि तुलसीदास जी ने भी कुछ सामाजिक अपराधियों की ओर संकेत दिया है जो चिन्ता के विषय हैं—

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना।
तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥

X X X

सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई।
जो नहिं गुर आयसु अनुसरई॥[82]

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग॥[83]

महाकवि तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसे सामाजिक अपराधियों का समाज में कोई सम्मान नहीं होता है—

काहूँ बैठन कहा न ओही।
राखि को सकइ राम कर द्रोही॥

81. छान्दोग्य उपनिषद् 5.11.5
82. मानस, अयोध्याकाण्ड, 171 (2-4)
83. मानस, अयोध्याकाण्ड, 172 (दोहा)

मातु मृत्यु पितु समन समाना।
सुधा होइ विष सुनु हरिजाना ॥[84]

क्योंकि इनके साथ शत्रुता एवं मित्रता करना दोनों ही घातक हैं—

कवि कोविद गावहिं असि नीति।
खल सन कलह न भल नहिं प्रीती ॥[85]

आधुनिक समाज में यदि किसी अपराधी को दंडित करना हो तो भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code) का मापदंड व्यवहार में लाया जाता है। आज परिवर्तनशील परिस्थिति में अपराध दंड प्रक्रिया (Criminal Procedure Code) के आधार पर यदि निर्णय लिया जाए तो रावण भारतीय दंड संहिता (IPC) की धाराएं-350 (सीता जी को भय या क्षोभ दिखाकर), 362 (सीता अपहरण), 366 (व्यपहरण पश्चात शादी का प्रस्ताव), 368 (परिरोध में सीता जी को निरुद्ध रखना), 370 (देवताओं एवं शक्तियों को दास बनाना) आदि के अन्तर्गत दंडित किया गया। ध्यातव्य है रावण के बढ़ते अत्याचार का परिणाम—

बरुन कुबेर पवन जम काला।
भुज बल जितेउँ सकल दिगपाला ॥
देव अनुज नर सब बस मोरें।
कवन हेतु उपजा भय तोरें ॥[86]

धारा 354 व 368 के अन्तर्गत सुग्रीव की पत्नी के साथ बल प्रयोग करने के कारण बालि को दंडित किया गया। धारा 416, 419 के अन्तर्गत प्रतिरूपण (personation) द्वारा छल क ने के अपराध में पार्वती जी को भी शिवजी ने क्षमा नहीं किया—

सतीं कीन्ह सीता कर बेषा।
सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा ॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती।
मिटइ भगति पथु होइ अनीती ॥[87]

धारा 425 व 426 के अन्तर्गत सीता जी के साथ रिष्टि करने के अपराध

---

84. मानस, अरण्यकाण्ड, 1 (3)
85. मानस, उत्तरकाण्ड, 105 (7)
86. मानस, लंकाकाण्ड, 7 (2)
87. मानस, बालकाण्ड, 55 (4)

म जयन्त को और धारा 349, 430 एवं 431 के अन्तर्गत पथ अवरुद्ध करने के दोष में कालनेमि दैत्य को दण्डित किया गया।

दांडिक विमुक्तियां

भारतीय व्यवस्था में दण्ड को 'सीधा डंडा' का रूप न देकर उसके साथ अपराध, अपराधी, परिस्थिति, आयु, व्यक्तित्व, देश आदि का सम्बंध स्वीकार किया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि दंड-प्रयोग में न्यायाधीश को अपने विवेक से प्रयोग का अवसर मिल सका। विवेक में मानवता के सामान्य तत्वों के साथ कुछ आधार भी प्रस्तुत किए गए जिनके आधार पर वह कुछ अपराधियों को अपराध से मुक्त कर सकता था। इस प्रकार की दांडिक विमुक्तियां सुधारात्मक दण्ड-सिद्धान्त के पूरक हैं। इस सिद्धांत के अन्तर्गत स्त्री, रुग्ण, अस्सी वर्ष से अधिक आयु के वृद्ध या सोलह वर्ष से कम आयु के किशोर आते हैं। किशोर यदि गुरुगृह अथवा अभिभावक के पास हैं तो उनको दण्ड से विमुक्त समझा जाता था। इसीलिए भरत जी के मन में विचार आया कि—

> **जद्यपि मैं अनभल अपराधी।**
> **भै मोहि कारन सकल उपाधी॥**
> **तदपि सरन सनमुख मोहि देखी।**
> **छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी॥**[88]

क्योंकि—

> **अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा।**
> **मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा॥**[89]

दांडिक विमुक्तियों के विषय में महाकवि तुलसीदास जी का विचार है कि पुरुषत्वहीन, कंजूस, मूढ़, दरिद्र, बदनाम, अत्यंत बूढ़ा, रोगी, संतों का विरोधी आदि चौदह प्रकार के प्राणियों को दण्ड देना उचित नहीं है—

> **कौल काम बस कृपिन बिमूढ़ा।**
> **अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥**
> **सदा रोग बस संतत क्रोधी।**
> **बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥**

---

88 मानस, अयोध्याकाण्ड, 182 (2)

89 मानस, अयोध्याकाण्ड, 182 (3)

तनु पोषक निंदक अघ खानी।
जीवत सव सम चौदह प्रानी॥[90]

इसीलिए इन अपराधियों के लिए निम्न सम्पदाएं असंभव हैं—

सेवक सुखचह मान भिखारी।
व्यसनी धन सुभ गति दिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी।
नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥[91]

अपराध की प्रवृत्तियों का प्रभाव केवल व्यक्ति के रूप में एक अपराधी पर ही नहीं पड़ता वरन् पूरे घर-परिवार पर पड़ता है, जन-जीवन पर पड़ता है, समाज पर पड़ता है। दण्ड केवल एक व्यक्ति को मिलता है किन्तु उसके परिणाम अनेक लोगों को भुगलने पड़ते हैं। यही कारण है कि लोग अपराध या अपराधी के संसग से ही कतराते रहे हैं क्योंकि अपराध या अपराधी होने से वह अपनी साख खो बेठते हैं। ध्यातव्य है—

संग तें जती कुमंत्र ते राजा।
मान ते ग्यान पान तें लाजा॥
प्रीति प्रनय विनु मद ते गुनी।
नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥[92]

इन अपराधों के कारण पनपती हुई स्थिति, जो मनुष्य पर से मनुष्य का विश्वास कम कर देती है ओर मानवता पर से आस्था डिगा देती है, सर्वाधिक घातक है। अतः आज आवश्यकता है कि हम उन तत्वों को पहचानें जो अपराधों को बढ़ावा देते हैं। इन तत्वों के पीछे यदि औरत, अर्थ और अधिकार 'ज़र, जोरू, जमीन' किन्तु आज के परिप्रेक्ष्य में सुरा, सुन्दरी एवं सम्पत्ति की भावना विशेषतया क्रियाशील रहती है। 'रामचरितमानस' में अनेक ऐसे उदाहरण हैं जो आपराधिक घटनाओं के वास्तविक मूल हैं। यहाँ तक कि सम्पूर्ण रामकथा साहित्य ही इस पर आधारित है। सम्पत्ति के कारणवश कैकेयी द्वारा रामवनवास की मांग, जयत की कुटिलता, शूर्पणखा की नासिका-विच्छेदन, दक्ष-यज्ञ विध्वंस, नारद-मोह, सीतास्वंवर, बालि-वध, अहिल्या-उद्धार, रावण-वध आदि अनेक प्रसंगों मे सुन्दरी (नारी) ही मूलरूप से उत्तरदायी है। आज दफ्तरों में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता,

---

90. मानस, लंकाकाण्ड, 30 (1-2)
91 मानस, अरण्यकाण्ड, 16 (8)
92 मानस, अरण्यकाण्ड, 20 (5-6)

अकर्मण्यता और अपराधों में बढ़ोत्री का मुख्य कारण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में नारी है।

देश में आजकल स्कूल और कालेजों में जो शिक्षा-दीक्षा दी जाती है, उससे वस्तुतः देश के बालकों की बड़ी हानि हो रही है। वे हमारी भारतीय संस्कृति से वंचित रहकर पाश्चात्य संस्कृति में रंग जाते हैं। किशोरों में सदाचार, सद्गुण, ईश्वर भक्ति, बड़ों के प्रति उदारभाव और लज्जा का, जो हमारी भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग हैं, दिनों-दिन ह्रास होता जा रहा हैं। इसके विपरीत पाश्चात्य सभ्यता की वृद्धि हो रही है, साथ ही दुर्गुण, दुराचार, नास्तिकता, विलासिता, उग्रवाद, उद्दण्डता, आलस्य-प्रमाद और निर्लज्जता बढ़ती जा रही है, जो कि किशोरों के लिए तथा देश के लिए अत्यंत हानिकारक है; क्योंकि देश की भावी उन्नति प्रायः किशोरों पर ही विशेष निर्भर करती है। आज के चलचित्र और टेलिविजन पर अर्धरात्री में व्यस्कों के लिए प्रदर्शित चलचित्र तो आहुति पर घी का कार्य कर रहे हैं। यह कैसी विडम्बना है कि पाश्चात्य देश भारत की संस्कृति में रुचि ले रहे हैं जबकि भारतवासी पाश्चात्य रंगीले जीवन की ओर आकर्षित हैं। अतएव किशोरों का जैसा भाव और चरित्र होगा, वैसा ही देश का स्वरूप हो सकता है।

अतः भक्त शिरोमणि तुलसीदास जी ने सभी भारतीयो से शुद्ध आचरण पर चलने के लिए आग्रह किया है ताकि उनके लिए सम्पूर्ण दिशाएं सुखमय हों ओर यह तभी सम्भव है यदि–

बैर न बिग्रह आस न त्रासा।
सुखमय ताहि सदा सब आसा।।[93]

---

93 मानस, उत्तरकाण्ड, 45 (3)

9
भू-विज्ञान

अब से लगभग दो लाख अरब वर्ष ($2x10^{14}$ वर्ष अथवा बीस नील वर्ष) पहले सृष्टि का अस्तित्व नहीं था। उस समय न तारे थे और न ग्रह, परन्तु वायुमण्डल में भूत-द्रव्य (primondial substance) मौजूद था। यह भूतद्रव्य उस समय जमी हुई ठोस स्थिति में न था, अपितु अपने आरम्भिक अणुओं अर्थात इलैक्ट्रान और प्रोटॉन रूप में सम्पूर्ण वायुमण्डल में एकसमान फैला हुआ था, मानो अति सूक्ष्म अणुओं का एक गुबार था जिससे सृष्टि भरी हुई थी। उस समय भूत-द्रव्य संतुलित रूप में था, उसमें किसी प्रकार की गति न थी। गणित के दृष्टिकोण में यह सन्तुलन ऐसा था कि यदि इसमें कोई तनिक भी बाधा पैदा कर दे, तो फिर यह स्थिर नहीं रह सकता और यह बाधा बढ़ती ही चली जाएगी। परिणामस्वरूप भूत-द्रव्य सिमट-सिमट कर विभिन्न स्थानों पर एकत्र होना आरंभ हो गया। ये ही वह एकत्रित द्रव्य है जिसको हम तारे, ग्रह इत्यादि कहते हैं। ये भौतिक टुकड़े गैस के भयानक गोले (sphere) के रूप में अज्ञात समय तक वायुमण्डल में चक्कर लगाते रहे। लगभग दो अरब वर्ष पूर्व ऐसा हुआ कि सृष्टि का कोई बड़ा तारा वायुमण्डल में घूमता हुआ सूर्य के निकट आ निकला, जो उस समय आज की अपेक्षा बहुत ही विशालकाय था।

सौर परिवार

जिस प्रकार चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति से समुद्र में ऊंची-ऊंची लहरें उठती हैं, उसी प्रकार दूसरे तारे की आकर्पण-शक्ति से हमारे सूर्य पर एक बडा तूफान उठा,

अत्यधिक लहरें उत्पन्न हुई, जो धीरे-धीरे अधिक ऊंची हो गई इससे पहले कि वह तारा सूर्य से दूर हटना शुरू हो, उसकी आकर्षण-शक्ति इतनी अधिक हो गई कि सूर्य की इन प्रबल वातीय लहरों (gaseous waves) के कुछ भाग टूट कर एक झटके के साथ दूर वायुमण्डल में निकल गए। ये ही तत्पश्चात ठण्डे होकर सौर-परिवार (solar system) के अधिनस्थ हुए। इस समय ये सब टुकड़े सूर्य के चारों ओर घूम रहे हैं और इन्हीं में से एक हमारी पृथ्वी है।

पृथ्वी आरम्भ में अग्नि के गोले (sphere) की भांति सूर्य के चारों ओर घूम रही थी, परन्तु फिर वायु मण्डल में लगातार गर्मी निकलते रहने के कारण ठंडी होना शुरू हो गई। यह क्रिया करोड़ों वर्ष तक होती रही यहां तक कि वह बिल्कुल ठंडी हो गई। परन्तु सूर्य की गर्मी अब भी उस पर पड़ रही थी, जिसके कारण वाष्प उठना आरंभ हो गई और घटाओं (बादलों) के रूप में उसके वातावरण पर आच्छादित हो गई। तदुपरांत ये मेघ बरसना आरंभ हुए और सम्पूर्ण पृथ्वी जल से भर गई। पृथ्वी का ऊपरी भाग यद्यपि ठंडा हो चुका था किन्तु आन्तरिक भाग अब भी ऊष्ण था जिसके फलस्वरूप पृथ्वी सिकुड़ने लगी। इस कारण पृथ्वी के अन्दर गर्म गैसों पर दबाव पड़ा और वे बाहर निकलने के लिए विह्वल हो उठीं। थोड़े-थोड़े समय के बाद पृथ्वी फटने लगी। स्थान-स्थान पर दरारें पड़ गईं। इसी प्रकार समुद्री तूफानों, भयावह भूकम्पों और ज्वालामुखी के धमाकों में सहस्रों वर्ष व्यतीत हो गए। इन्हीं भूकम्पों से पृथ्वी का कुछ भाग ऊपर उभर आया और कुछ भाग दब गया। दबे हुए भागों में पानी भर गया और वे समुद्र कहलाए, तथा उभरे हुए खण्डों ने महाद्वीपों का रूप धारण कर लिया। कभी-कभी यह उभार इस प्रकार पैदा हुआ कि बड़ी-बड़ी ऊंची बाढ़ें सी बन गईं जो संसार के सर्वप्रथम पर्वत कहलाए। दृष्टव्य है संतकवि तुलसीदास जी का सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति (पालन) तथा प्रलय की ओर संकेत—

उद्भव पालन प्रलय कहानी।
कहेसि अमित आचरज बखानी॥[1]

भू-वैज्ञानिकों (geologists) का विचार है कि एक अरब बत्तीस करोड़ वर्ष हुए पहली बार पृथ्वी पर जीव का आविर्भाव हुआ। ये छोटे-छोटे कीड़े थे, जो पानी के किनारे उत्पन्न हुए। इसके पश्चात विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तु पैदा होते और विनष्ट होते रहे। कई हजार वर्ष तक पृथ्वी पर केवल पशु रहे। तदुपरांत

---

1 मानस, उत्तरकाण्ड, 162 (3)

समुद्री पौधे उगे और भूमि पर भी घास उगनी प्रारम्भ हो गई। इस प्रकार दीर्घकाल तक असंख्य घटनाएं घटती रही यहां तक कि मानव-जीवन के लिए परिस्थितियां सम्भव होती गई तथा पृथ्वी पर मनुष्य का जन्म हुआ। सम्भवतया हिन्दु धर्म में दशावतारों (मत्स्य, कच्छ, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, गौतम, कल्कि) के आविर्भाव का क्रम प्राणियों के क्रमविकास की ओर ही संकेत करता है। इस सिद्धांतानुसार मनुष्य का आविर्भाव गत तीन लाख वर्ष से हुआ है। यह अवधि बहुत ही कम है। युगों की जो दूरी सृष्टि ने तय की है, उनकी तुलना में मानव-इतिहास निमेष से अधिक महत्व नहीं रखता। पृथ्वी और आकाश के अरबों तथा खरबों वर्ष के चक्कर के बाद जो श्रेष्ठतम जीव इस सृष्टि में पैदा हुआ वह मनुष्य है। क्योंकि चर-अचर सभी जीव उसकी याचना करते हैं। यह मनुष्य-शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को देने वाला है। ध्यातव्य है महाकवि तुलसीदास जी की निम्न पंक्तियां—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही।
जीव चराचर जाचत तेही॥
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी।
ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥[2]

इसीलिए मानव-शरीर की प्राप्ति अत्यंत कठिन है—

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥[3]

पृथ्वी में विद्यमान शैलो, भूखण्डों, खनिजों एवं जीवाश्मों (fossils) से सम्बन्धित अध्ययन को **भू-विज्ञान** कहते हैं। यद्यपि आधुनिक विज्ञान के संदर्भ मे यह नवीनतम विज्ञान है किन्तु यह विज्ञान का क्षेत्र सर्वाधिक प्राचीन है। जहाँ यह विज्ञान एक ओर नक्षत्र-विज्ञान की ओर झुकता है वहीं दूसरी ओर जीव-विज्ञान तथा पुरातत्व विज्ञान एवं इतिहास की सीमाओं से मिला है। इस विज्ञान के अन्तर्गत शैलों के निर्माण और उनकी संरचनात्मक व्यवस्थाओं के विषय में अन्वेषण है जो अन्ततोगत्वा पृथ्वी की उत्पत्ति की ओर अग्रसर होता है। जीवाश्मों का अध्ययन हमें प्राणियों के क्रमविकास की ओर उन्मुख करता है। अब तक जितने भी जीवाश्म

---

2 मानस, उत्तरकाण्ड, 120 (5)

3 मानस, उत्तरकाण्ड, 42 (4)

पाए गए हैं उनमें प्राचीनतम जीवाश्म एक अण्डे का पश्चिमी कोलोराडो (अमरीका) में मिला है जो चौदह करोड़ पचास लाख वर्ष पुराना है। इसकी खोज कोलोराडो यूनिवर्सिटी (अमरीका) के शोधार्थी कार्लहिर्श ने की थी। अब वैज्ञानिक उस जन्तु के जीवाश्म की तलाश में है जिससे इनका आविर्भाव हुआ। इस प्रकार भू-विज्ञान हमें पृथ्वी की उत्पत्ति एवं जीवों के आविर्भाव के अध्ययन का एक सुन्दर आधार है।

आसमान में ऊपर की ओर ध्यानपूर्वक देखो तो ज्ञात होगा कि एक स्वच्छ जल से भरी गंगा की भांति जलधारा है जैसे कोई स्वर्ग की नदी आकाश के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक भरी हुई हो और उसमें हजारों तारे फूल की भांति बह जा रहे हैं। लोग इसे छायापथ अथवा आकाशगंगा के नाम से पुकारते हैं। द्रष्टव्य है—

> **ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी।**
> **स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी ॥[4]**

चिन्तन किया जाए तो **आकाशगंगा** (galaxy) वास्तव में स्वर्ग की सड़क की भांति ही है, किन्तु इसमें छाया नहीं है। देवताओं के पैरों के स्पर्श से इसकी धूलि-मिट्टी सब प्रकाशमय हो गई है। हजारों तारे इस मार्ग से यात्री होकर पृथ्वी की ओर निहार रहे हैं। इनकी टिमटिमाती हुई ज्योति बहुत दूर आकाशमण्डल में सफेद बादल का एक टुकड़ा-सा दिखाई देती है किन्तु वह मेघ नहीं है। बहुत दूर के तारों का वहां जमाव है, इसी कारण उनका मंद प्रकाश मिलकर एक सफेद बादल के टुकड़े का धोखा दे रहा है दूरदर्शक यंत्र द्वारा देखने पर हजारों तारे उस स्थान पर छिटके हुए मालूम होते हैं। अतः जो असंख्य तारे आकाश में जगमगा रहे हैं, वे प्रकाश के बिन्दु नहीं हैं। वे सभी प्रायः एक-एक महासूर्य हैं। हमारे सूर्य की अपेक्षा उनमें कोई-कोई तो सैकड़ों गुना बड़े हैं और आकाश में सौ-सौ गुना अधिक ताप और प्रकाश फैलाते हैं। महाकवि तुलसीदास जी ने इन तारों की मोतियों से तुलना की है—

> **बिथुरे नभ मुकुताहल तारा।**
> **निसि सुंदरी केर सिंगारा ॥[5]**

बहुत दूर करोड़ों किलोमीटर स्थान में जो वाष्प-राशि जल रही है उसी को

---

4 मानस, अयोध्याकाण्ड, 324 (3)

5 मानस, लंकाकाण्ड, 11 (2)

हम उजले मेघ की भांति देखते हैं, ये नीहारिकाएं हैं। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि तरल या वाष्पीय पदार्थ का कोई निर्दिष्ट आकार नहीं होता और चूंकि **निहारिका** (nebula) के सर्वांग में केवल वाष्प होती है या बहुत छोटे-छोटे जल कण (चित्र 9 1) रहते हैं, इसलिए उन सबका कोई विशेष आकार या आकृति नहीं देखी जाती। महाकवि तुलसीदास जी ने तो चन्द्रमा की आकृति को सिंह से उपमा दी है—

> **मत्त नाग तुम कुंभ बिदारी।**
> **ससि केसरी गगन बन चारी॥**[6]

किसी का आकार लम्बा, तो किसी का अण्डाकार और किसी का पेच (screw) की भांति होता है। इन सब आकारों को देखने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि नीहारिकाओं के शरीर की वाष्प-राशि स्थिर नहीं रहती। जिस प्रकार आंधी की हवा तीव्र गति से चलती रहती है उसी प्रकार इनके पिण्ड की वाष्पराशि ओर जड़पिण्ड घूम-फिर करके भ्रमण करते हैं। एन्ड्रोमिडा-मण्डल (चित्र 9.2) की नीहारिका की आकृति को देखने ही से समझ जाएंगे कि इसके पिण्ड की वाष्पराशि प्रचण्ड वेग से मानो एक गोलाकार पथ में घूम रही है। आकाश के किसी-किसी स्थान में नीहारिकाएं कैसी-कैसी भयानक अग्नि-लीला कर रही है। आकाश मे आग की कमी नहीं है—सूर्यलोक में, ग्रह-उपग्रहों में, धूमकेतुओं में तथा उल्कापिण्ड और तारों में जो आग जल रही है उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसीलिए नीहारिका में अग्नि-प्रसार को देखकर वैज्ञानिकों को आश्चर्य नहीं होता, बल्कि आश्चर्य तो उन्हें यह देखकर होता है कि ये ताप को छोड़कर कठिनत्व धारण कर एक-एक नक्षत्र बना देती हैं। जिन पदार्थों से सूर्य और महासूर्य बनाए जा सकते हैं, वे नीहारिकाओं में विद्यमान रहते हैं। नीहारिकाएं जब ठण्डी होकर कठोर हो जाती हैं तब कोई तो सूर्य हो जाती है और कोई नक्षत्र बन जाती हैं।

ब्रह्मांड की उत्पत्ति

जिस प्रकार जीव-जन्तु और पेड़-पौधे मरकर मिट्टी में मिल जाते हैं और उसी मिट्टी से खाद्य-संग्रह करके नए जीव-जन्तु और पेड़-पौधे जीते हैं, उसी प्रकार प्रकृति के सभी कार्यों में पुराने से नए की सृष्टि होते देखी जाती है। ग्रह-नक्षत्र ओर

---

6 मानस, लंकाकाण्ड, 11 (1)
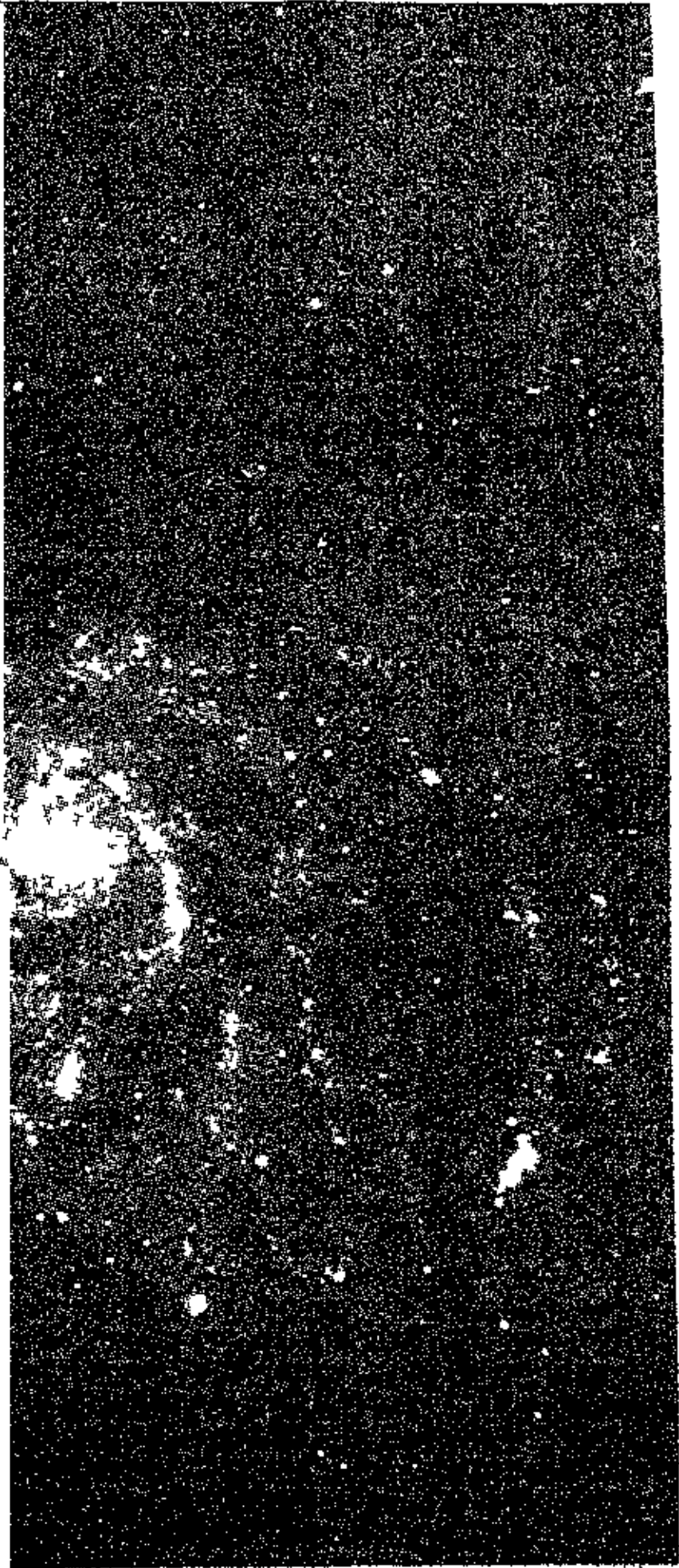
ूर्य की निहारिका से सूर्य और ग्रह आदि का जन्म
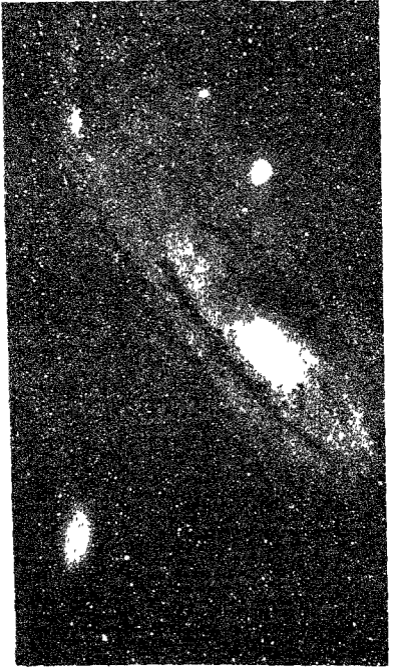
चित्र 9.2 : एन्ड्रोमिडा-मण्डल की नीह

सूर्य के जन्म-मरण में भी यही नियम चलता है। जब आकाश के महापुरुष अपने ताप और प्रकाश को खर्च करके बुझ जाते हैं तब हम लोग समझते हैं कि बुझने के साथ-साथ उनका जीवन अस्तित्व विहीन हो गया, किन्तु यह बात नहीं है—मरे हुए नक्षत्र ही परस्पर टकराकर फिर जल उठते हैं और एक-एक नए नक्षत्र की मूर्ति धारण कर लेते हैं। जो पुराना होकर संसार के सभी कार्यों के अयोग्य हो जाता है वही मरकर नए को उत्पन्न करता है और उसी से हमारी यह अपूर्व सृष्टि चल रही है। ध्यातव्य है—

जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान॥[7]

और—

अग जग जीव नाग नर देवा।
नाथ सकल जगु काल कलेवा॥[8]

सूर्य हमारे समीप है, इसी कारण इसका इतना बड़ा आकार दिखाई देता है और इसमें इतना ताप तथा प्रकाश है। तारे बहुत दूर हैं, इस कारण उनका ताप का ज्ञान नहीं होता और उनका प्रकाश इतना कम है। अब आप समझ सकते हैं कि जैसे सभी नक्षत्र एक-एक निहारिका से उत्पन्न हुए हैं, वैसे ही सूर्य और उसके उपग्रह भी किसी एक निहारिका (चित्र 9.3) से उत्पन्न हुए हैं। जिस पृथ्वी पर हम लोग निवास कर रहे हैं, उसके मिट्टी-पत्थर और हमारे-आपके शरीर के अणु-परमाणु भी किसी दिन विशाल निहारिका के आकार में आकाश में जलकर घूमते-फिरते थे। नहीं मालूम, यह निहारिका कितने दिनों तक जलती रही थी। सम्भवतया करोड़ों वर्षों तक जलती रही हो और तदुपरांत ठण्डा होने पर उससे सूर्य, बुध, शुक्र, पृथ्वी, चन्द्र, मंगल और बृहस्पति आदि ग्रह-उपग्रहों की रचना हुई हो।

भूमण्डल

आकाश में सहस्रों छोटे-बड़े तारे हैं, उन्हीं की तरह हमारी पृथ्वी भी एक है। सूर्य और अन्य बड़े-बड़े तारे जैसे सदैव ही उष्ण रहकर प्रकाशमान हो रहे हैं, ठीक

---

7. मानस, उत्तरकाण्ड, 109-ग (दोहा)
8. मानस, उत्तरकाण्ड, 93 (4)

ऱ्सा प्रकार पृथ्वी भी प्रकाशमान हो रही इसके भीतर गरमी रहने पर भी ऊपरी धरातल पर अत्यंत ठंडक है सूर्य के किरण जब पृथ्वी पर आ पड़ती है तब उसी प्रकाश में यह प्रकाशित होता है। यदि आप पृथ्वी छोड़कर चन्द्रमा या समीपवर्ती किसी अन्य नक्षत्र लोक में जाकर देखें तो वहां से सूर्य के आलोक से आलोकित इस पृथ्वी को चन्द्रमा की भांति उज्जवल पाएंगे। इसके अतिरिक्त पृथ्वी चन्द्रमा से गोल भी दिखाई देगी। द्रष्टव्य है, मन को हरने वाली चन्द्रमा की किरणें—

हृदयँ अनुग्रह इंदु प्रकासा।

सूचत किरन मनोहर हासा॥[9]

यह सार्वभौमिक तथ्य है कि पृथ्वी पर समुद्र, पर्वत और नदियाँ विद्यमान हैं। महाकवि तुलसीदास जी के शब्दों में—

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही।

जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥[10]

न केवल पृथ्वी पर समुद्र, पर्वत तथा नदियों का बोझ है बल्कि वनस्पति जगत और जीव-जन्तु भी मौजूद हैं और इसी कारण सिद्ध है कि यहाँ पर प्राणी जगत का क्रम विकास हुआ माना गया। पृथ्वी से सम्बन्धित वस्तुओं का महाकवि तुलसीदास जी ने बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है—

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा।

अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥

x x x

सरसिज संकुल सकल तड़ागा।

अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥[11]

केवल इतना ही नहीं कि भू-विज्ञान के अन्तर्गत वनस्पति, जीव-जन्तु, सरिता, पर्वत, समुद्र तथा दसो दिशाएं हैं बल्कि इस ब्रह्मांड की उत्पत्ति के साथ सूर्य, चन्द्रमा और जल बरसाने एवं जीवन को संरक्षण प्रदान करने के लिए मेघ भी हैं—

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।

मागें बारिद देहिं जल रामचन्द्र कें राज॥[12]

---

9. मानस, बालकाण्ड, 197 (4)
10. मानस, बालकाण्ड, 183 (4)
11. मानस, उत्तरकाण्ड, 22 (2-5)
12. मानस, उत्तरकाण्ड, 23 (दोहा)

इस भूतल पर समुद्र से न केवल रत्न आदि निकलते हैं अपितु अमृत तथा मदिरा भी इसी से दोहन कर प्राप्त किए जाते हैं। महाकवि तुलसीदास जी ने अमृत और मदिरा के भौतिक गुणों में असमानता पाई—

सुधा सुरा सम साधु असाधू।
जनक एक जग जलधि अगाधू ॥[13]

भूमण्डल पर महाकवि तुलसीदास जी ने सागरों की कुल संख्या सात बतलाई है—

भूमि सप्त सागर मेखला।
एक भूप रघुपति कोसला ॥[14]

इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे बीस समुद्र भी इस पृथ्वी पर हैं—

बीस पयोधि अगाध अपारा।
को अस बीर जो पाइहि पारा ॥[15]

महाकवि तुलसीदास जी ने वर्णन किया है कि पृथ्वी में अनेक माणिक खानें भी हैं जो पर्वतों, पठारों आदि में पाई जाती हैं—

कनकउ पुनि पषान तें होई।
जारेहुँ सहजु न परिहर सोई ॥[16]

सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहुँ भाँति ॥[17]

वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि श्रीराम तथा लक्ष्मण चित्रकूट में महर्षि वाल्मीकि से मिले। आजकल चित्रकूट न केवल उस पहाडी को कहते हैं जिसका नाम कामतानाथ (कामदगिरि) है, वरन उससे आसपास कुछ दूर तक चित्रकूट कहलाता है। कदाचित, पहले चित्रकूट पर्वत ही उसका नाम रहा होगा। वाल्मीकि का आश्रम कामतानाथ (चित्र 9.4) से लगभग 25 किलोमीटर पूर्व इलाहाबाद-बांदा मार्ग पर बघरेही गाँव में लालापुर पहाड़ी पर बताया जाता है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि जब श्री रघुनाथ जी वहाँ आए थे तब लालापुर पहाड़ी की श्रेणी चित्रकूट तक फैली हुई हो या वाल्मीकि का एक आश्रम मन्दाकिनी नदी

13. मानस, बालकाण्ड, 4 (3)
14. मानस, उत्तरकाण्ड, 21 (1)
15. मानस, लंकाकाण्ड, 27 (2)
16. मानस, बालकाण्ड, 79 (3)
17. मानस, बालकाण्ड, 65 (दोहा)

चित्र 9.3 : निहारिका-राशि से सूर्य, पृथ्वी आदि ग्रह-उपग्र

के तट पर भी रहा होगा जहाँ श्रीराम ने भी वाल्मीकि के अनुरोध पर अपनी पर्णकुटी के लिए योग्य स्थान चुन लिया। महाकवि तुलसीदास जी के शब्दों में–

चित्रकूट गिरि करहु निवासू।
तहँ तुम्हार सब भांति सुपासु॥

X X X

सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि।
जो सब पातक पोतक डाकिनि॥[18]

चित्रकूट दो शब्दों से बना है–चित्र-कूट (शिखर, चोटी), चित्र संस्कृत मे अशोक को भी कहते हैं। यहाँ अशोक का वन है जो सदा हरा-भरा रहता है। 'मानस' में प्रसंग आया है कि–

चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ॥[19]

अर्थात महामुनि वाल्मीकि जी ने चित्रकूट की अपरिमित महिमा बखान की और महर्षि ने श्रीराम-सीता के संवाद-माध्यम से अपनी रामायण में अनेक रंग की धातुओं के कारण ही चित्रकूट का नामकरण बतलाया है–

पश्चेयचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम्।
शिखरैः स्वाभिंवद्धि द्वैर्धातुमद्भिर्विभूषितम्॥
केचिद्रजतसंकाशाः केत्क्षितजशन्निभ।
पीतमांजिष्ठवर्णाश्ए केचिन्मणिवर प्रभाः॥
पुश्यार्कनेतकाभाश्च केचजयोतार प्रभाः।
विराजान्ते वलेन्द्रस्य देशाद्यातु विभूषितः॥[20]

(हे भद्रे ! नाना प्रकार के पक्षियों युक्त अनेक धातुओं से भूषित ऊंचे शिखरों वाले पर्वत को देखो। कोई चांदी की तरह सफेद है, काई लोहू के समान लाल है, कोई पीला, कोई मजीठ रंग का है, कोई इन्द्रनीलमणि की तरह चमकता है, कोई पुष्पराग की तरह, कोई स्फटिक मणि की तरह है, कोई केतकी रंग का है, कोई तारे और पारे की भांति चमक रहे हैं)। अतः अनेक रंग के धातुओं के कारण इस पहाड़ी का नाम चित्रकूट पड़ा। चूंकि भू-विज्ञान के अन्तर्गत नाना प्रकार के

18. मानस, अयोध्याकाण्ड 131 (2-3)
19. मानस, अयोध्याकाण्ड, 132 (दोहा)
20 वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 56

पाषाण और धातुओं का विवरण होता है अतः चित्रकूट पर्वत उन्हीं का प्रतीक मालूम पड़ता है और इसकी पुष्टि व्यक्तिगत दर्शन एवं अध्ययन के पश्चात हो गई। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि भारत में पन्ना, हीरा आदि अनेक धातुएं इस क्षेत्र के समीप उपलब्ध हैं।

ऐसे सुन्दर स्थल को देखकर ही श्रीराम ने लक्ष्मण से ठहरने की व्यवस्था करने को कहा क्योंकि वहां पर्वत शिखरों के बीच जलधारा भी घेरा डाले है जो सुरक्षा की दृष्टि से भी उत्तम होती है—

लखन दीख पय उतर करारा।
चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥[21]

'रामचरित मानस' में प्रसंग आया है कि धरती पर कांटे और कंकड़ हैं—

मुस कंटक मग कंकर नाना।
चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥[22]

अन्यत्र—

कुस कंटक कांकरीं कुराई।
कटुक कठोर कुबस्तु दुराई॥[23]
कंदर खोह नदी नद नारे।
अगम अगाध न जाहिं निहारे॥[24]

उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि जिस वातावरण अथवा पृथ्वी जगत में हम रहते हैं उसके चार प्रमुख तत्व हैं—1. स्थल, 2. जल, 3. वायु तथा 4. जैव प्राणी। स्थल, वायु और जल भौतिक वातावरण के तत्व है और पौधे व जन्तु जैविक वातावरण के तत्व हैं। इस प्रकार पृथ्वी जगत अर्थात पृथ्वी मण्डल चार मण्डलों में विभाजित है—1. स्थल मण्डल, 2. वायु मण्डल, 3. जल मण्डल, और 4. जैव मण्डल। जीव के विभिन्न रूपों के अस्तित्व के लिए पृथ्वी पर भौतिक वातावरण की आवश्यकता है। प्राणी के जीवन निर्वाह के लिए भोजन तथा अन्य पदार्थों की पूर्त्ति जैविक वातावरण द्वारा होती है।

---

21. मानस, अयोध्याकाण्ड, 132 (1)
22. मानस, अयोध्याकाण्ड, 61 (3)
23 मानस, अयोध्याकाण्ड, 310 (3)
24. मानस, अयोध्यकाण्ड, 61 (4)

जैव मण्डल

जिस स्थान पर स्थल मण्डल, वायुमण्डल और जलमण्डल परस्पर मिलते हैं उस स्थल पर ही जैवमण्डल का श्रीगणेश होता है। यह जैवमण्डल जलचर, नभचर एव थलचर आदि अनेक प्राणियों की चौरासी लाख योनियों में सृजित हैं—

> **आकर चारि लाख चौरासी।**
> **जाति जीव जल थल नभ वासी।।**[25]

इन चौरासी लाख योनियों में विभिन्न जीव-जन्तु होते हैं जिनका विभाजन इस प्रकार है—

> **बीस लाख स्थावर जानो, नोई लाख सब जलचर मानो।**
> **ग्यारह लाख कूर्म के गाए, पक्षीगण दस लाख बताए।**
> **तीस लक्ष पशु जान्हु राई, चार लक्ष बानर समुदाई।**
> **जब यह चौरासी घट जावे, तब मनुष्य के तन कहँ पावे।**

जैव मण्डल में वर्तमान जीवों का प्रारम्भ एवं उनका पारस्परिक सम्बंध पृथ्वी के इतिहास में करोड़ों वर्षो के क्रमिक विकास का प्रतिफल है। पृथ्वी पर बदलते हुए भौतिक वातावरण के अनुकूल ही जीव-जन्तु एवं पेड़-पौधे उससे सामंजस्य स्थापित करने लगते हैं। विभिन्न भूगर्भिक कालों में भौतिक कारकों, जैसे तापमान, वर्षण, विकिरण, प्रकाश की गहनता, सागर की लवणता आदि में परिवर्तन होता रहा है। जिन जीवों में वातावरण के परिवर्तन के अनुसार अपने शारीरिक अवयवो मे परिवर्तन लाने की क्षमता है वे ही जीव इस पृथ्वी पर जीवित रहते हैं। नए वातावरण में सामंजस्य स्थापित न कर सकने के कारण ही अतीत में पाए जाने वाली कुछ नस्लें विलुप्त हो गई हैं। शैलों में कुछ विलुप्त जातियों के अवशेष मिलते हैं, जिन्हें जीवाश्म (fossils) कहते हैं। कभी-कभी नई नस्लों की उत्पत्ति हो जाती है। नई जातियों के विकास और प्राचीन जातियों के विलुप्त होने का प्रक्रम निरंतर चलता रहता है।

स्थल मण्डल

पृथ्वी के मध्य क्रोड़ अथवा बैरीस्फीयर (चित्र 9.5) को पृथ्वी की ठोस पर्पटी घेर हुए है, जिसको स्थल मण्डल कहते हैं। इसकी ऊपरी सतह भूपृष्ठ कहलाती

---

25 मानस, बालकाण्ड, 7 (1)

है। स्थलमण्डल की औसत मोटाई 60 कि.मी. है। भूपर्पटी की मोटाई महासागरा की अपेक्षा महाद्वीपों में अधिक है। भूपर्पटी की शैलों का घनत्व उनके नीचे वाली शैलों के घनत्व से कम है। ज्यों-ज्यों हम भूपर्पटी से पृथ्वी के अन्तराल में जाते हैं, त्यों-त्यों शैलों का घनत्व अधिक होता जाता है। शैलों के विभिन्न घनत्व के आधार पर उनको अनेक आवरणों में बांटा सकते हैं—1. स्याल, 2. सीमा, ओर 3. क्रोड़। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पृथ्वी का क्रोड़ धात्विक है जो निकल (nickle) तथा लोहा (iron) जैसी धातुओं से बना है।
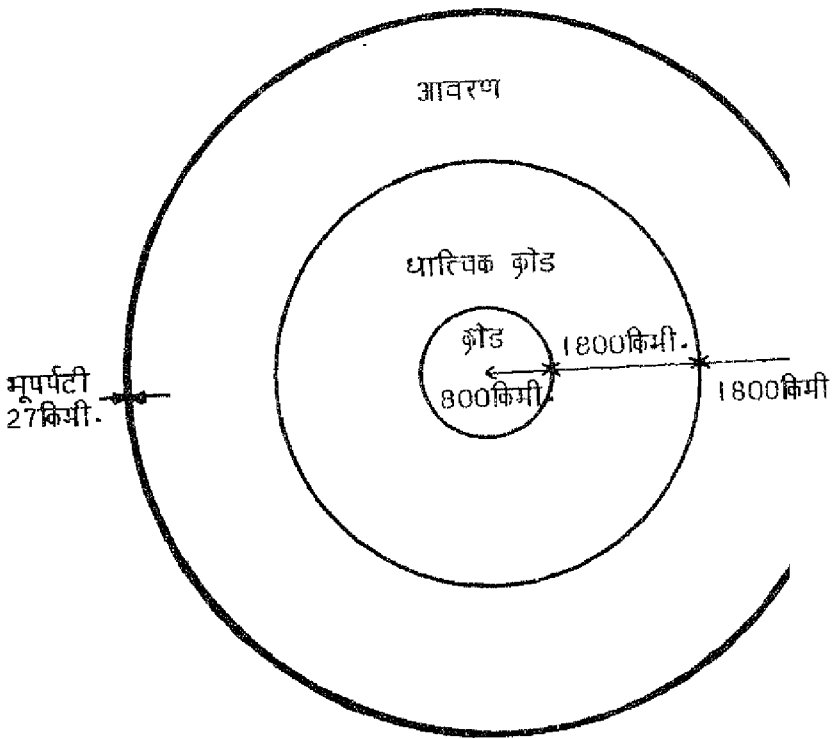
चित्र 9.5 : स्थलमण्डल का अनुप्रस्थ काट

स्थलमण्डल विभिन्न प्रकार की शैलों से मिलकर बना है। उत्पत्ति के आधार पर शैलों के तीन प्रमुख वर्ग किए जाते हैं। जो शैल द्रवित मैग्मा के जमने से

बनी हैं, उसे आग्नेय शैल कहते हैं। सागरों तथा झीलों के तल पर जमा होने वाले पदार्थों से बनने वाली अवसादी शैल कहलाती है। आग्नेय तथा अवसादी शैल जब अत्यधिक दबाव या गर्मी पड़ती है तो कायान्तरित शैलों में बदल जाती हैं। पृथ्वी जिन पदार्थों से बनी है वे शैल कहलाते हैं। उनका निर्माण अनेक खनिजों से हुआ है। भूपर्पटी में सिलिकेट प्रकार के खनिज सबसे प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। फेल्सपार, स्फटिक और अभ्रक सामान्य शैल-निर्माण करने वाले सिलिकेट खनिज हैं।

पृथ्वी केवल मिट्टी, पत्थर, बालू और कंकड़ों से ही नहीं बनी है, बल्कि पृथ्वी के ठीक ऊपर प्रायः सौ किलोमीटर तक हवा भी है। इसे भी पृथ्वी की अंश मानना उचित है क्योंकि यह भी पृथ्वी के पिण्ड से संलग्न होकर पृथ्वी के साथ-साथ घूमा करती है। यों तो पृथ्वी का मण्डल सैंकड़ों किलोमीटर ऊंचाई तक है और इसका सबसे बाहरी मण्डल भू-प्रभामण्डल के अन्तर्गत प्रोटॉन मण्डल है। पृथ्वी वायुराशि के इस मण्डल को ऐसी प्रबल शक्ति से अपनी ओर खींचे हुए है कि वह किसी तरह पृथ्वी को छोड़कर कहीं नहीं जा सकती। इस कारण, हम इस आकाश-स्थित वायु को कभी पृथ्वी से भिन्न पदार्थ नहीं कह सकते। इसीलिए महाकवि तुलसीदास जी को कहना पड़ा कि—

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा॥[26]

क्वांटम का सिद्धांत

सन् 1900 ई. में मैक्सप्लैंक ने **'क्वांटम का सिद्धांत'** (Quantum theory) का आविष्कार किया। इस सिद्धांत के अनुसार जब किसी पदार्थ या पिण्ड में अत्यधिक ताप के फलस्वरूप जो विकिरण ऊर्जा के रूप में उत्पन्न होती है, उसकी गति अटूट प्रवाह के रूप में नहीं होती बल्कि पृथक-पृथक कणों के रूप में है जिसको 'क्वांटा' कहते हैं। आइन्स्टीन ने इस सिद्धांत को व्यापक रूप प्रदान करते हुए कहा कि केवल विकिरण ही नहीं अपितु पदार्थ के अन्य रूप—जैसे प्रकाश, ऊर्जा, ताप, एक्स-रे, गैस, रंग, स्वाद इत्यादि आकाश में अलग-अलग सूक्ष्म कणों के रूप में चलते हैं। यह सिद्धांत विज्ञान में **'फोटो-विद्युत-प्रभाव'** (photo electric

26. मानस, किष्किंधाकाण्ड, 10 (2)

effect) के नाम से प्रसिद्ध है इस नियम के अनुसार सूर्य और अग्नि की जो गर्मी हम अनुभव करते हैं उसका कारण प्रकाश या ऊर्जा के छोटे छोटे कण तीव्र गति से आकर हमारे शरीर की त्वचा से टकराते हैं जिसके हम गर्मी का अनुभव करते हैं। इस क्रिया से उत्पन्न गर्मी या ऊर्जा की मात्रा का स्तर (degree) उस वस्तु से छूटे हुए इलैक्ट्रॉनों की संख्या पर निर्भर करती है।

सभी नक्षत्रों में केवल सूर्य ही एक मात्र ऐसा नक्षत्र है जिसकी सतह भूतल से देखी जा सकती है अन्यथा शेष सभी नक्षत्र दूरबीन द्वारा प्रकाश बिन्दु के समान दिखाई देते हैं। अन्य नक्षत्रों की अपेक्षा सूर्य अधिक चमकीला, कुछ अधिक भारी तथा कुछ कम सघन (condensed) है। यह पृथ्वी से एक सौ नौ गुना व्यास मे बडा है और 3,33,000 गुना भारी है। सौर-धरातल पर तापमान 6000^0 केल्विन है और विश्वास किया जाता है कि सूर्य के अन्दर केन्द्र पर लगभग $1,40,00,000^0$ केल्विन तापमान है। इतनी अत्यधिक ऊष्णता होने के कारण ही सम्पाती के शरीराग जल गए थे क्योंकि उसने सूर्य के पास पहुंचने का असफल प्रयास किया। दृष्टव्य है—

> **तेज न सहि सक सो फिरि आवा।**
> **मैं अभिमानी रबि निअरावा॥**
> **जरे पंख अति तेज आपारा।**
> **परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥**[27]

सूर्य $9x10^{25}$ कैलोरी प्रति सेकन्ड की दर से ऊर्जा उत्सर्जित करता है। इसका सर्वाधिक चमकीला भाग, जो पृथ्वी से दिखाई देता है, **प्रकाशमण्डल** (photosphere) कहलाता है। इससे ऊपर चारों ओर का क्षेत्र **वर्णमण्डल** (chromosphere) कहलाता है। प्रकृति में सूर्य एक असीम ऊर्जा स्रोत है जो अन्य चार वैकल्पिक ऊर्जाओं के साथ जुड़ा हुआ है। उदाहरणार्थ—सूर्य चन्द्रमा के साथ मिलकर सागर में हलचल मचा देता है जो पूर्णिमा को स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है—

> **सज्जन सकृत सिंधु सम कोई।**
> **देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥**[28]

सूर्य वायु को प्रभावित करता है। सौर-ऊर्जा का प्रयोग कोई नवीन नही

---

27. मानस, किष्किंधाकाण्ड, 27 (2)
28 मानस, बालकाण्ड, 7 (7)

है बल्कि इसके कारण आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व भी द्रवों का उपयोग आसवन (distillation) द्वारा शुद्ध जल एवं औषधि रूप में होता था और लगभग 2100 वर्ष पूर्व युद्ध में काष्ठ-पोतों को भस्मीभूत करने में किया जाता था। पृथ्वी पर सौर-ऊर्जा की सम्पूर्ण मात्रा 7×10^{17} किलोवॉट घण्टा प्रतिवर्ष है जो मानव द्वारा उत्पादित ऊर्जा की लगभग 30,000 गुना से भी अधिक है।

इस प्रकार उत्सर्जित सूर्य की ताप से उत्पन्न क्रिया विभिन्न वस्तुओं, वनस्पति, जीव-जन्तु तथा स्वयं मनुष्य के शरीर में भी निरंतर होती रहती है, जिसके परिणामस्वरूप शरीर के तन्तुओं में गतिशीलता और क्रियाशीलता उत्पन्न होती हे। इस क्रिया द्वारा ही मनुष्य में रजोगुण वर्तमान रहता है तथा उसमें जीवन का संचार होता रहता है। इस क्रिया को ही भारतीय दर्शन में आत्मा पर प्रकृति का बन्धन कहते हैं क्योंकि मनुष्य प्रकृति की इस प्रबल क्रिया को बाह्य रूप से रोकने में असमर्थ है। प्रकृति की इस अनवरत प्रक्रिया को ही माया कहते हैं, जिसका प्रभाव मनुष्य पर इतना प्रबल है कि वह सामान्य विधि से इससे कभी मुक्त नहीं हो सकता। महाकवि तुलसीदास जी के शब्दों में–

मैं अरू मोर तोर तें माया।
जेहिं बस कीन्हें जीव निकाया ॥[29]

हमारी पृथ्वी पर प्रकृति की यह क्रिया नियमित एवं नियंत्रित ढंग से चल रही है जिस कारण यहां जीवन का अस्तित्व बना हुआ है। इसके विपरीत यही क्रिया सूर्य एवं तारागणों में अनियंत्रित ढंग से चल रही है, जिस कारण असीम विकिरण, प्रकाश, ताप तथा ऊर्जा उत्पन्न हो रही है और जिसका कण मात्र भी हम इस पृथ्वी पर प्रयोग नहीं कर पा रहे। आकाश के विशालकाय नक्षत्र-पिण्डो मे परमाणुओं की इस उग्र हलचल को वैज्ञानिक भाषा में **'परमाणु-शृंखला-प्रतिक्रिया'** (atomic-chain-reaction) कहा जाता है। विज्ञान के इस नियम के अनुसार आकाश-पिण्डों के असंख्य परमाणुओं में परस्पर विखंडन होता रहता है जिसके परिणाम-स्वरूप विकिरण, प्रकाश तथा ऊर्जा अनवरत रूप से उत्पन्न होती रहती है। पदार्थ के परमाणुओं में इस परस्पर संघर्ष में आकर्षण (attraction) तथा विकर्षण (repulsion) शक्तियों की भी उत्पत्ति होती रहती है और इस प्रकार परमाणु का यह संतुलन सदैव बना रहता है।

---

29 मानस, अरण्यकाण्ड, 14 (1)

जिस प्रकार पदार्थ की गतिशीलता में अनेक शक्तियों का उदय होता है और भिन्न-भिन्न वस्तुओं का निर्माण होता रहता है, उसी प्रकार परमाणुओं की गतिशीलता के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न जीव-जन्तुओं की भी उत्पत्ति होती रहती है। अतः पदार्थ से जीव में परिवर्तन के लिए परमाणुओं की गतिशीलता एक अनिवार्य तत्व है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि गतिशीलता ही जीवन है और गतिहीनता मृत्यु अथवा विनाश। महाकवि तुलसीदास जी ने भी शरीर को विनाशी और जीवन को अमर कहा है--

प्रगट सो तनु तव आगें सोवा।
जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा ॥[30]

परन्तु विज्ञान का नियम है कि जीव पदार्थ का ही विकसित रूप है अर्थात् जड-पदार्थ करोड़ों वर्षों के अन्तराल में क्रमशः विकसित होकर जीव-जन्तु के रूप मे बदल गया। अर्थात काल और समय के प्रभाव से ही जड-पदार्थ जीव में परिवर्तित हो गया। आइंस्टीन के सिद्धात ($E=mc^2$) के अनुसार यदि किसी पदार्थ का द्रव्यमान विघटित होकर प्रकाश की गति (2.99×10^{10} सेंटीमीटर) प्राप्त कर ले तो हम उसे विकिरण या ऊर्जा कहते हैं अर्थात वह पदार्थ शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसके विपरीत जब ऊर्जा (विकिरण) केन्द्रीभूत होकर जम जाए तथा वह गतिशील पदार्थ से स्थिर हो जाए और उस पदार्थ का द्रव्यमान निश्चित रूप से मापा जा सके तो हम उसे पदार्थ कहते हैं।

अब आप यह जान गए हैं कि हमारा ब्रह्मांड पाँच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) का बना है। आधुनिक विज्ञान के परीक्षणों द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु पदार्थो की रचना में किन तत्वो का कितना उपयोग होता है। पृथ्वी के चारों ओर के वायु तथा जल-मण्डलों को साथ लेकर लगभग चालीस किलोमीटर गहराई तक का पार्थिव स्तर मुख्यतः (99%) केवल बारह मूलतत्वों (element) से बना है। उसका लगभग आधा भाग तो ऑक्सिजन ही है, और लगभग एक चौथाई सिलिकॉन है। शेष चौथाई भाग मे अन्य दस मूलतत्व हैं। पृथ्वी के एक परमाणु में संघटित बारह मूलतत्वों के नाम और उनके प्रतिशतांक परिमाण का विवरण इस प्रकार है—

---

30. मानस, किष्किंधाकांड, 10 (3)

सारणी-1

नाम	प्रतिशत भाग	नाम	प्रतिशत भाग
आक्सिजन	49.85	पोटेशियम्	2.33
सिलिकॉन	26.03	मैग्नेशियम्	2.11
एल्युमीनियम्	7.28	हाइड्रोजन	0.97
लोहा	4.12	टिटैनियम्	0.41
कैल्शियम्	3.18	क्लोरीन्	0.20
सोडियम्	2.33	कार्बन्	0.19
			99.00
		शेष समस्त मूलतत्व	1.00
			100.00

यह विवरण पृथ्वी के एक अणु की रचना का है। ऐसे अणुओं से मिलकर यह बाह्य पृथ्वीमण्डल (चित्र : 9.6) बना है। महाकवि तुलसीदास जी ने इसी पृथ्वीमण्डल को सात आवरण (क्षोभमंडल, शांत मंडल, ओजोनमंडल, अशांतमंडल, तापमंडल, आयनमंडल, भू-प्रभामंडल) की संज्ञा दी है–

सप्तावरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि॥[31]

इसी प्रकार जलीय, तैजस और वायवीय परमाणु की रचना के विषय की जानकारी को भी आधुनिक विज्ञान ने स्पष्ट किया है। जलीय परमाणु का सघटन निम्नलिखित तत्वों के मिश्रण से होता है–

नाम	घटक अंश
हाइड्रोजन	2 भाग
ऑक्सिजन	1 भाग

आधुनिक विज्ञान के अनुसार तैजस परमाणु उस रचना-परम्परा में नहीं आता, जिसमें पृथ्वी आदि के परमाणु की रचना का समावेश है। पृथ्वी आदि की रचना रासायनिक संमिश्रण पर आधारित है, परन्तु वैशेषिक के अनुसार तैजस-तत्व में

31 मानस, उत्तरकाण्ड, 79-ख (दोहा)

पृथ्वी का वायुमंडल

चित्र 9.6

ताप, प्रकाश आदि का समावेश है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार ताप आदि की गणना भौतिकी (Physics) के अन्तर्गत है। पार्थिव और जलीय परमाणुओं के समान वायवीय-परमाणु का संघटन आधुनिक विज्ञान के अनुसार दो रूपों में उपपादित किया गया है—1. आयतन के आधार पर, तथा 2. भार के आधार पर। इन दो स्थितियों मे वायु के घटक तत्वों के प्रतिशतांश में एक दूसरी से थोड़ा अन्तर रहता है,जो इस प्रकार है—

सारणी-2

नाम	प्रतिशतांश का आधार	
	आयतन	भार
नाइट्रोजन	78.16	75.50
ऑक्सिजन	20.90	23.20
अक्रिय (इनर्ट) गैसें	0.94	1.30

आकाश (ईथर) सर्वत्र व्यापक तत्व है। 'ईथर' को आधुनिक विज्ञान में ऐसा ही माना जाता है। महाकवि तुलसीदास जी ने भी आकाश को सीमाहीन कहा है—

तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता।
नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता ॥[32]

लंका-दहन में अपना शौर्य प्रदर्शित कर जब हनुमान जी ने श्रीराम को सीता जी की कुशलता दी तब श्रीराम ने सेना सहित लंका की ओर प्रस्थान किया। समुद्र तट पर आकर स्थानीय राजा, जो कि समुद्र नाम से जाना जाता था, से समुद्र पार करने के लिए सहायता मांगी। किन्तु समुद्र ने अहंकारवश चुप्पी साधे रखी। तब विवश होकर राम को अणु आयुध के समान किसी भयंकर अस्त्र का प्रयोग करना पड़ा। परिणामस्वरूप समुद्र को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी। तब समुद्र श्रीराम के पास आया और क्षमा मांगी—

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे।
छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥[33]

---

32 मानस, उत्तरकाण्ड, 90 (3)

33 मानस, सुन्दरकाण्ड, 58 (1)

श्रीराम में विद्वता तो कूट कूट कर भरी थी किन्तु बड़ से बड़े वैज्ञानिक को भी अपना सन्धान के लिए सहयोग की आवश्यकता पड़ती कहते हैं कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, अतः तकनीकी सहायकों की खोज में उस समय श्रीराम भी थे। जब उन्हें समुद्र द्वारा यह पता चला कि उनके पास नल और नील दो अभियंता इस कार्य के विशेषज्ञ हैं और इसके अतिरिक्त उन्हें भू-वैज्ञानिकी के क्षेत्र में भी बचपन ही से ज्ञान प्राप्त था कि अमुक पत्थर पानी पर तैर सकता है, तो श्रीराम ने नल-नील की इस कार्य हेतु सेवाएं लीं—

तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे।

तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥[34]

नल-नील ने पुल बनाने का श्रीगणेश कर दिया। रामेश्वरम् पुल कैसे बनाया गया, क्या वास्तव में पत्थर तैर सकता है ? इसके लिए कुछ तथ्यों को अध्ययन करना होगा। हजारों लाखों वर्ष पूर्व दक्षिण भारत में ज्वालामुखी थे तथा समय-समय पर विस्फोट भी हुए हैं। विस्फोट के समय शैल खण्ड, लावा, राख, भाप तथा अन्य गैसें भूगर्भ से धरातल पर पहुंचकर भूपर्पटी में जो मुख अथवा द्वार उत्पन्न होता है, वह ज्वालामुखी कहलाता है। यह सार्वभौमिक तथ्य है कि अपने अक्ष पर तीव्र गति से घूर्णित सूर्य से अग्नि-पिंड के रूप में अन्य ग्रहों के साथ पृथ्वी की भी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार पृथक हुई पृथ्वी एक अग्नि-गोला थी जिसकी ऊपरी सतह धीरे-धीरे ठंडी हुई और धरातल पर जैव-विकास का आरंभ हुआ। किन्तु अन्दर का भाग गर्म रहा जो आन्तरिक गैसीय हलचलों के कारण ज्वालामुखी रूप में उद्भेसित होने लगा। दिन-प्रतिदिन पृथ्वी ठंडी हो रही है इसीलिए आजकल ज्वालामुखी सक्रिय नहीं रहे।

पृथ्वी के भीतर से पदार्थ का उद्भेदन चुपचाप या विस्फोट से हो सकता है। ज्वालामुखी पदार्थों के संग्रह से अनेक प्रकार के स्थल-रूप बनते हैं। क्रियाशीलता के आधार पर ज्वालामुखी तीन वर्ग में होते हैं—1. मृत, 2. सुषुप्त तथा 3. सक्रिय ज्वालामुखी। एक मृत ज्वालामुखी का भी सहसा उद्भेदन हो सकता है। इटली का विसुवियस ज्वालामुखी जो मृत (79 ई.) समझा जाता था, परन्तु आधुनिक काल में सहसा उद्भेदित हो गया। संसार के कुछ भागों, जैसे दक्षिण का पठार (भारत), उत्तरी आयरलैंड, आइसलैंड, हंगरी, न्यूजीलैंड, पश्चिमी जर्मनी, ग्रीस, लियारी द्वीप (इटली), ऐरिजोना, कैलिफोर्निया, नवादा, न्यू मैक्सिको, हवाई द्वीप

---

34. मानस, सुन्दरकाण्ड, 59 (1)

आदि में अनेक किलोमीटर लंबे छेदों या दरारों में ज्वालामुखी उद्भेदन हुआ है, इन्हे दरारीय ज्वालामुखी कहते हैं। इस उद्भेदन से लावा की विस्तृत चादरें (परतें) उत्पन्न हुई हैं, जिनसे पठार बने हैं। दक्कन के पठार के पश्चिमी भाग में लावा की चादरों का आवरण सहस्रों किलोमीटर के क्षेत्र में है। यह क्षेत्र कुछ चादरों से बना है जो सीढ़ीदार हैं और प्रत्येक सीढ़ी विभिन्न समयों में हुए लावा-उद्भेदन से बनी है। इस प्रदेश में लावा की चादरों की कुल मोटाई लगभग 2000 मीटर है।

शैल-विश्लेषण

खनिजों का मिश्रण जो भूपर्पटी का निर्माण करता है, **शैल** (rock) कहलाता है। प्राकृतिक रूप में शैल तीन प्रकार की पायी जाती हैं—1. **अवसादी शैल** (sedimentary rocks), ये वे शैल हैं जो अन्य शैलों के अवसादों के संयोजन से निर्मित परतदार होती है। 2. **आग्नेय शैल** (igneous rocks) जो मैग्मा अथवा लावा के जमने से निर्मित होती हैं। 3. **कायान्तरित शैल** (metamorphic rocks) जो गहरे भूगर्भ में अत्यधिक ऊष्मा, दबाव, अथवा रासायनिक क्रियाओं द्वारा अवसादी तथा आग्नेय शैलों के निजी गुण एवं रूप में परिवर्तन होने से निर्मित है। जब मैग्मा किसी ज्वालामुखी अथवा दरार से निकलकर धरातल पर आता है और उसमें मौजूद गैस निकलकर वायुमण्डल में उड़ जाती है तो उसे लावा कहते हैं। लावा ठंडा होकर जम जाता है तो आग्नेय शैल बन जाता है। धरातल के नीचे गर्म मैग्मा ठंडा होने पर खुरदरी चट्टानें बनाता है जो स्फटिक शिला के रूप में दिखाई देती है। चित्रकूट में स्फटिक शिला की अब दो शिलाएं हैं जो कदाचित पहले मिली हुई थीं। दोनों मन्दाकिनी नदी के बीच में स्थित हैं, असली शिला पर चरणों के चिन्ह हैं। यहीं (चित्र 9.7) पर जयन्त ने कौवे का रूप धरकर सीता जी के चोंच मारी थी जिसका वर्ण 'रामचरितमानस' के अरण्यकाण्ड में है—

सीतहि पहिराए प्रभु सादर।
बैठे फटिक सिला पर सुंदर ॥[35]

स्फटिक शिला के चिन्ह सफेद आग्नेय पत्थर के बने हैं और लाखों वर्ष के होंगे। ऐसे ही जानकी कुण्ड (चित्रकूट) में भी हैं। चरण पादुका (कामतानाथ)

35 मानस, अरण्यकाण्ड, 0 (2)

परिक्रमा में तीन गुमटिया (चित्र 9 8) हैं एक के नीचे एक छोटा सा बाएं पैर का चिन्ह है यह भी श्री जानकी जी के पावों के चिन्ह हैं ये चिन्ह उस समय के बने कहे जाते हैं जब भरत जी यहाँ आए और चारों भाई गले मिले थे। चिन्ह (तारांकित) दूर से ऐसे जान पड़ते हैं मानों कोई अभी गीली मिट्टी पर चला गया हो। आग्नेय शैल का यह भौतिक गुण है कि ज्वालामुखी उद्भेदन के उपरांत भी वर्षों बाद यदि चला जाए तो उस पर पैर की गर्मी के कारण पिघलने से चिन्ह अंकित हो जाते हैं। इन्हीं चिन्हों का उल्लेख महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत मे किया है, ''बन्द्य पुंसां रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु।'' अर्थात ''चित्रकूट की मेखला लोकवन्द्य श्री रघुनाथ जी के चरण चिन्हों से अंकित हैं।'' यहाँ पर एक बड़ी शिला पर दो चिन्ह ऐसे बने हुए हैं जैसे कमल के गद्दे पर प्राणियों के सोने से बन जाते हैं। कहा जाता है कि एक चिन्ह श्रीराम के लेटने से बना था और दूसरा सीता जी के। दोनों के बीच में धनुष का चिन्ह है। वानप्रस्थाश्रम में रहने से श्रीराम जी धनुष बीच में रखकर सोते थे। इन स्थानों की सुन्दरता किसी के समझ मे नहीं आती कारण कि आध्यात्मवाद के अंधविश्वास में वहाँ (चित्रकूट) की जनता भू-विज्ञान के ज्ञान से वंचित है। प्रस्तुत है रत्न-ज्ञान का दृष्टांत--

मानिक मरकट कुलिस पिरोजा।
चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥[36]

लावा तथा मैग्मा न्यूनाधिक सिलिकेट खनिजों में मिली हुई गैसों का ही द्रव है। जब गैसें दबाव के कारण फैलती हैं तो तरल पदार्थ में बुलबुले बन जाते है। यदि इस प्रकार का बुलबुलों युक्त लावा तत्काल जम जाए तो रन्ध्रयुक्त शैल (porous rock) तैयार हो जाती है। यद्यपि द्रवित लावा का तापक्रम असमान होता है फिर भी 1200° सैल्सियस से अधिक नहीं हो पाता। जिस लावा में सिलिका की मात्रा कम होती है वह मीलों तक हल्के ढलानों (slopes) पर बह सकता है ओर इसकी प्रवाह-गति 3 किलोमीटर प्रति घंटा होती है। सिलिका की अधिक मात्रा वाला लावा बहुत ही गाढ़ा (viscous) होता है। इसकी गति धीमी होती है तथा आनुपातिक कम दूरी तक प्रवाहित होता है। जैसे-जैसे लावा ठंडा होता जाता है, वह गाढ़ा होकर कम बहता है। मध्य में धीमी गति से ठंडा होने के कारण किस्टल तैयार हो जाता है। चित्रकूट धाम पर क्रिस्टल एवं आग्नेय शैल दोनों ही प्रकार के शिलाखण्ड दृष्टिगोचर होते हैं।

---

36 मानस, बालकाण्ड, 287 (2)

9.7 : स्फटिकशिला (छायाकार : विष्णु दत्त शर्मा)

ालो का रासायनिक विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि इनमे प्राप्त
ा इस प्रकार है—
(59.12%), अल्यूमीना (15.34%), चूना (5.08%), फैरिक
8%), फैरस आक्साइड (3.80%), सोडा (3.84%), पोटाश
शिया (3.49%), पानी (1.15%), टिटानिया (1.05%) तथा अन्य
ग्नेय शेल अत्यधिक रन्ध्र होने के कारण घनत्व में बहुत कम होते
ी मात्रा अधिक होने से सुदृढ़ हो जाते हैं। जब लावा रूप मे
तेजी से फैलता जाता है तो वायु कणों को अपने में लपेट लेता
ाष प्रकार के पत्थर का निर्माण होता है जिसे **झांवा पत्थर** (pumice
। यह ही वह पत्थर है जो पानी पर तैर सकता है और महीनो
न मे रहकर पानी सोखता रहता है। पानी सोख लेने के बाद यह

चित्र 9.8 : आग्नेयशिला पर पैरों के निशान (छायाकार

री होकर समुद्र की तली में बैठ जाता है। इसी श्रेणी
रिशिष्ट-9 में देख सकेंगे जहां उनका रासायनिक संघटन भ
थरो के बारे में किसी भी भूगमर्भशास्त्र की पुस्तक से इ
कता है।

झांवा पत्थर अब भी अल्प मात्रा में दक्षिण के नीलगि
श्चिमी घाट के पर्वतों पर मिलते हैं। पश्चिमी घाट के प
लगभग 100 किलोमीटर दूर पड़ते हैं। यह पत्थर पानी
किन्तु मज़बूत भी है। इस प्रकार का पत्थर कृत्रिम विधि
ऽता है। इसीलिए महाकवि तुलसीदास जी को कहना प

श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन ॥[37]

इस प्रकार के हल्के पत्थरों के चूर्ण का प्रयोग मिस्र में भी देखने को मिलता है। सेतु-निर्माण के समय श्रीराम के पास सेना थी अतः मजदूरों की कमी का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसी कारण उन पर्वत-शृंखलाओं का उपयोग सेतु बनाने में किया जाने लगा। एक रोचक बात यह है कि जिस स्थान पर आजकल पण्डे लोग पुल का स्थल बताते हैं वहां पर समुद्र एक दम शांत है और आप दूर तक समुद्र में घुस जाएं किन्तु आपको कोई हानि नहीं होगी। परन्तु अन्य स्थानों पर समुद्र अशांत है। मेरा यह व्यक्तिगत अनुभव है कि सेतु-स्थल पर पूर्व की ओर (बंगाल की खाड़ी) समुद्र शांत है, जबकि पश्चिम की ओर (अरब सागर) वह अशांत है। शांत समुद्र में यदि बड़े-बड़े शिलाखण्ड तैराए जावें तो एक पुल सुविधापूर्वक बन सकता है। ये पत्थर इतने हल्के होते हैं कि समुद्र की लहर तथा वायु के प्रवाह से भी बह जाते हैं। इन्हीं कुछ पत्थरों के प्रवाह से पुल के पास का भाग उथला हो गया जो सेना की कुछ टुकड़ियों के लिए पार उतारने में सहायक बना—

सेतु बंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं ॥[38]

अब भी वहाँ बीच-बीच में छोटे-छोटे डूबे हुए टापू हैं जो सम्भवतया झांवा पत्थर में पानी सोखने के कारण निर्मित हुए। उस समय कुछ टापु समुद्र में पहले ही से दृष्टिगोचर भी थे जो सेतु-निर्माण में सहायक बने और जिनका वर्णन 'रामचरितमानस' में स्पष्ट आया है कि—

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता।
चले सो गा पाताल तुरंता ॥[39]

इससे स्पष्ट है कि 10-15 किलोमीटर की दूरी में बहुत शिला खण्ड थे। अतः इससे निर्माण कार्य में सुविधा रही होगी। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यातव्य है कि आग्नेय शैलों में अत्यधिक चुम्बकत्व गुण भी पाया जाता है। इसकी शक्ति भू-चुम्बकीय क्षेत्र से अधिक होती है। आग्नेय शैलों के इस गुण को इटली तथा

---

37 मानस, लंकाकाण्ड, 3 (दोहा)

38 मानस, लंकाकाण्ड, 4 (दोहा)

39 मानस, सुन्दरकाण्ड, 0 (4)

जापान में अध्ययन किया गया। 22 मार्च, 1986 को पठानकोट से कारगिल जाते समय एक विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया जिसमें चौदह सैनिक अधिकारी हताहत हुए। दुर्घटना के कारणों का पता लगाया तो पाया कि वहां पर आग्नेय शैल चुम्बक रूप में हैं। इनके इसी गुणों के कारण इसी स्थल विशेष पर दो-तीन वायुयान AN-12 व AN-32 आदि भी नष्ट हो चुके थे। अवसादी शैलों के विषय में तो यहा तक अध्ययन किया गया कि इनके कारण पृथ्वी के चुम्बकीय ध्रुव ही बदल जाते हैं। सर्वप्रथम इनकी चुम्बकीय शक्ति शून्य हो जाती है और तत्पश्चात ध्रुवत्व बदल जाता है। आज से लगभग 6,90,000 वर्ष पूर्व पृथ्वी का उत्तरी-ध्रुव दक्षिण था तथा दक्षिण-ध्रुव उत्तरी था। ऐसी परिस्थिति में विश्व में **ब्रह्मांड रश्मियों** (cosmic rays) का साम्राज्य हो जाता है और सभी जीवों की जातियाँ समाप्त होकर प्रलय हो जाती है। यह स्थिति शून्य ध्रुवत्व पर होती है। इसी चुम्बकत्व के कारण सम्भवत जामवंत जी ने कहा था कि विरुद्ध-ध्रुव को पहचानने के लिए पत्थरों पर 'रा' तथा 'म' शब्द लिखा होना चाहिए तभी वे निकट आकर सेतु निर्माण कर सकते है।

रामायण-काल निर्धारण

इससे पूर्व इस अध्याय में वर्णन किया जा चुका है कि एक अरब बत्तीस करोड वर्ष पहले पृथ्वी पर जीव का आविर्भाव हुआ तथा मनुष्य का भी जन्म तीन लाख वर्ष से पूर्व था। अब यह विचारनीय है कि जब उस समय का कोई भी प्राणी आज जीवित नहीं है अथवा कोई भी तथ्य लिपिबद्ध नहीं है तो यह कैसे ज्ञान हुआ कि किसी प्राणी का आविर्भाव अथवा किसी शैल खण्ड की उत्पत्ति लाखो वर्ष पूर्व हुई थी।

पाश्चात्य विद्वान संसार की आयु केवल पाँच-छः हजार वर्ष ही मानते है और इसी कारण उन्होंने भारतीय इतिहास को भी पाँच-छः हजार वर्षों के भीतर ही सीमित रखने का प्रयत्न किया। अपनी कपोल कल्पनाओं के आधार पर पाश्चात्य लेखकों ने वेदों का समय ईसा से 1500 वर्ष पूर्व, महाभारत का समय ईसा से 500-600 वर्ष पूर्व और रामायण का समय ईसा से 300-400 वर्ष पूर्व निर्धारित किया यद्यपि रामायण का सृजन महाभारत से पूर्व हो चुका था। अतः यह काल गणना सर्वथा असत्य, भ्रामक और पक्षपात-पूर्ण है।

परमहंस जगदीशवरानंद सरस्वती के गणनानुसार श्रीराम का काल एक करोड

इक्यासी लाख उनन्चास हजार नवासी वर्ष होता है। इसीलिए महाकवि तुलसीदास जी ने श्रीराम को पुराण पुरुष कहा है—

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।

परमानंद परेस पुराना ॥[40]

रामायण श्रीराम का समकालीन इतिहास है। जिस समय श्रीराम राजसिंहासन पर आसीन हो गए थे उस समय महर्षि वाल्मीकि ने अपने ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की थी। अतः रामायण का समय भी इतना ही है। भारतीय विद्वान श्रीराम का जन्म त्रेतायुग के अन्त में मानते हैं। इस प्रकार वे लोग श्रीराम का समय और रामायण रचना काल नौ लाख वर्ष मानते हैं किन्तु परमहंस सरस्वती जी के विचार इस धारण से मेल नहीं खाते क्योंकि वायुपुराण में उल्लेख है—

त्रेतायुगे चतुर्विशे रावणस्तपसः क्षयात्।

रामं दाशरथिं प्राप्य सगणः क्षयमीयमान् ॥[41]

अर्थात आचार से पतित होने के कारण रावण चौबीसवें त्रेतायुग में दशरथ नन्दन श्रीराम के साथ युद्ध करके बन्धु-बान्धवों सहित मारा गया।

इस श्लोक में श्रीराम का काल चौबीसवां त्रेतायुग (वैवस्वत मन्वन्तर) बताया गया है। आज तक का गणित यह है—

चौबीसवें त्रेता से 28वें त्रेता तक चार युग बीते जिनमें वर्ष हुए

43,20,000x4	=	1,72,80,000 वर्ष
द्वापर के वर्ष	=	8,64,000
कलियुग के वर्ष	=	5,089
कुल योग	=	1,81,49,089 वर्ष

19वीं शताब्दी के अंत में सर्वप्रथम सर विलियम थोम्पसन (लार्ड केल्विन) ने भूपर्पटी में ताप प्रवणता (temperature gradient) की विधि द्वारा (रेखाचित्र : 9.9) कालगणना की। चूंकि भूमि के अन्दर गहराई के अनुसार तापक्रम बढ़ता जाता है अर्थात जैसे-जैसे हम पृथ्वी-धरातल से नीचे गहराई में जाते हैं तापक्रम बढ़ता जाता है और यह वृद्धि-दर लगभग 30 डिग्री सैल्सियस प्रति किलोमीटर है।

---

40. मानस, बालकाण्ड, 115 (4)

41. वायुपुराण, 70/48
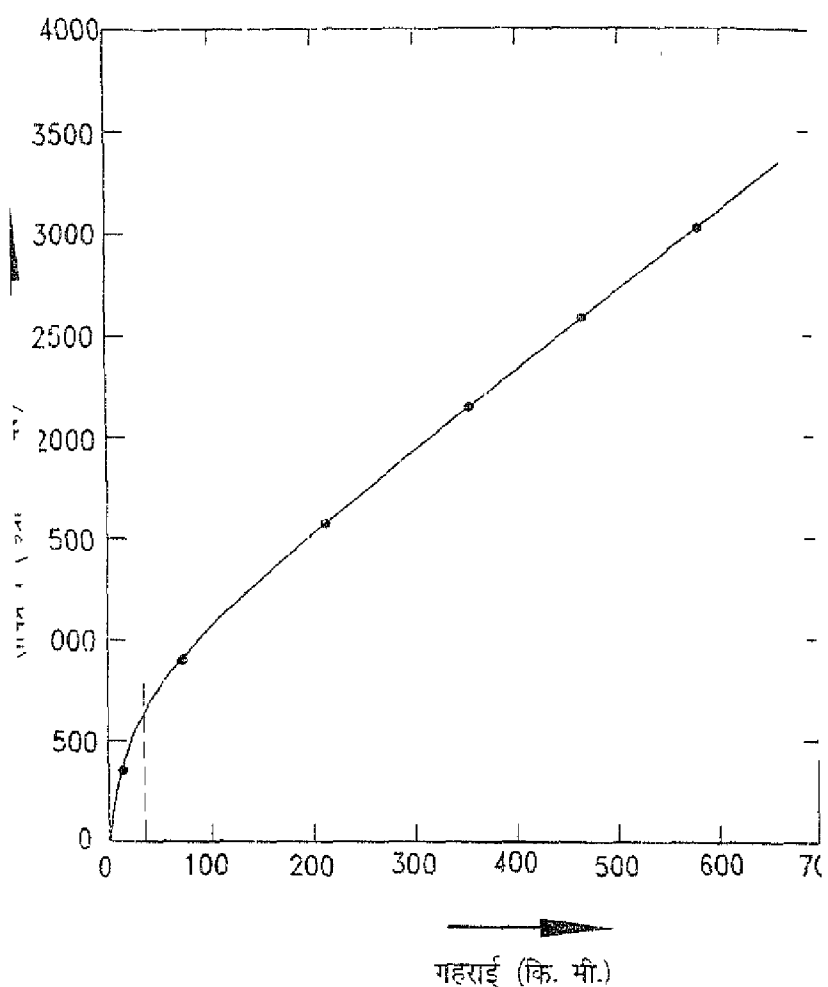
चित्र 9.9 : भूगर्भ में तापक्रम और गहराई का संबंध

अतएव पृथ्वी का शीतलन दर (cooling rate) का अनुमान और आकलन किया गया। यह माना गया है कि प्रारंभ में पृथ्वी का तापमान सूर्य के तापमान के तुल्य था क्योंकि पृथ्वी की रचना सूर्य से है अतः भूपर्पटी (earth's crust) का वर्तमान ऊष्मावस्था में आने के लिए जो समय लगा उसकी गणना इस विधि द्वारा की गई। लार्ड केल्विन के अनुसार पृथ्वी को वर्तमान तापमान तक ठंडी होने मे $2x10^7$ से $4x10^7$ वर्ष लगे। आजकल कालगणना रेडियोधर्मी (radioactive) पदार्थों की सहायता से की जाती है। अन्याधुनिक खोजों के अनुसार धरती पर पैदा हुए कानखजूरे की तरह के बहुत छोटे जीवों के पुराने जीवाश्म 3-4 करोड़ वर्ष पुराने पेनसिलवानिया (अमरीका) में पाए गए जो यह सिद्ध करते है कि संसार की आयु पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार 5-6 सहस्र वर्ष से कहीं अत्यधिक है।

कनाडा के वैज्ञानिकों (जे.एफ.जांस. जी.पे-पाइपर) ने जलगत शैलों के रासायनिक विश्लेषण से सिद्ध कर दिया कि उत्तरी अटलांटिक महासागर में अंतरिक्ष से लगभग 5 करोड़ वर्ष पूर्व एक **उल्कापिण्ड** (meteorite) गिरा था (हिन्दुस्तान टाइम्स, 26 जून, 1987) जिसका व्यास लगभग तीन किलोमीटर है। इसमें इरीडियम की अत्यधिक मात्रा इस बात का द्योतक है कि या तो यह किसी पाषाणी उल्कापिण्डो के टकराने का फल है अन्यथा किसी पुच्छलतारे (धूमकेतू) की **नाभिक** (nucleus) का विखंडन है। इसके गिरने के फलस्वरूप एक विशाल विवर (crater) बन गया। वह विवर (ज्वालामुख) जल के अन्दर 110 मीटर से आरंभ होकर नीचे तीन किलोमीटर की गहराई तक मिला है। **भूकम्पीय-चित्र** (seismic-profile) से भी ज्ञात होता है कि इसका व्यास 45 किलोमीटर है। अब तक उल्कापिण्ड केवल धरती पर ही पाए गए हैं किन्तु महासागर में पाए जाने वाला पहला उल्कापिण्ड केवल यही है जिससे पृथ्वी की उत्पत्ति का ज्ञान होता है। भूपर्पटी पर अनेक ऐसे आग्नेय तथा अवसादी शैल हैं जिनकी रचना-तिथि का अध्ययन हो चुका है।

किसी भी जीवाश्म, शैल अथवा उल्कापिण्ड की कालगणना के लिए सामान्यतया कार्बन-14 **रेडियोसमस्थान** (radioisotope) का उपयोग किया जाता है क्योंकि यह वायुमंडल में लगातार कॉस्मिक-किरणों द्वारा क्रिया के फलस्वरूप पैदा होता है और साथ ही विखंडन (disintegration) के कारण विनष्ट हो जाता है। इस प्रकार वायुमण्डल में इसका सन्तुलन बना रहता है। कार्बन-14 का अर्ध-आयुकाल भी 5570 वर्ष (देखें परिशिष्ट) है। प्राणियों में कुछ मात्रा कार्बन-14

की होता है जो वायुमण्डल में सन्तुलन बनाए रखने के लिए पर्याप्त है। प्राणी के मरणोपरांत यह तत्व घातीय (exponentially) रूप से विखंडित होता है और यह हानि पूरी भी नहीं होती। यथा—पुरानी अस्थियों में नवीन की अपेक्षा कार्बन-14 की मात्रा कम होती है। इस प्रकार यदि मात्रा की कमी का पता लग जाए तो प्राणी की आयु बतलाई जा सकती है। इस विधि को जिससे काल निर्धारण हो सके रेडियोधर्मी काल-गणना कहते हैं।

परिशिष्ट-1

भ्रांति-भंजन

रामायण में वर्णित प्रसंगों, पात्रों एवं चरित्रों के सम्बंध में अनेक भ्रांतियां और मिथ्या धारणाएं लोगों में प्रचलित हैं। इसे देश का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए क्योंकि भारत का इतिहास मुसलमानों और अंग्रेजों द्वारा लिखा गया। जरा सोचिए कि जो समुदाय आर्यवर्त्त का मूल निवासी ही न हो उसे भारत के इतिहास अथवा सम्कृति के विषय में क्या ज्ञान तथा उससे क्या प्यार या लगाव। अंग्रेजों का यह सिद्धांत रहा है कि यदि तुम किसी जाति को नष्ट करना चाहते हो तो उसके इतिहास को समाप्त कर दो, जाति स्वयमेव नष्ट हो जाएगी। यही कारण है कि श्रीराम कालीन सभी प्रसंग भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत की भूमि पर रामेश्वरम सेतु तक सत्य प्रमाणित हो रहे हैं किन्तु श्रीलंका निवासी यह मानने को तैयार ही नहीं कि दैत्यराज रावण का शासन कभी लंका पर था क्योंकि वहां के इतिहास ओर संस्कृति को अंग्रेजों द्वारा नष्ट कर दिया गया। किंवदंती है कि लंकेश्वर रावण का राजमहल कैंडी (श्रीलंका) नामक स्थान पर था जहां पर सीता जी को अशोक वाटिका में नजरबंद किया गया। आशा है भावी शोधार्थी इस प्रसंग पर शोधकार्य करगे। इसी प्रकार उन्होंने नाग जाति का भी इतिहास समाप्त करना चाहा किन्तु अपने उद्देश्यो में सफल न हो सके।

एक ओर इस सिद्धांत पर आचरण करते हुए पाश्चात्य ईसाई लेखकों ने हमारे इतिहास को नाना प्रकार से विकृत कर आर्य जाति को रसातल में पहुंचाने का प्रयत्न किया, दूसरी ओर दासता-युग की शिक्षा ने हमारे देश के युवक और युवतियों, लेखकों, प्राध्यापकों तथा शोधार्थियों के मस्तिष्कों को विकृत कर डाला। आज भारतवर्ष स्वाधीन है परन्तु पचास वर्ष पश्चात भी हमारी शिक्षा में कोई

अन्तर नहीं आया है। इस शिक्षा पद्धति के द्वारा शिक्षित एवं दीक्षित हमारे युवक और युवतियां, लेखक और गवेषक तथा बड़े-बड़े नेता रामायण और उस पर आधारित रामचरितमानस को एक कल्पित कहानी ही मानते है, परन्तु यह बहुत बड़ा भ्रम है।

हठी और दुराग्रही व्यक्तियों को मनवाना तो असम्भव है परन्तु विचारशील व्यक्तियों के लिए हम उनके विमर्शार्थ एक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं—

वाल्मीकीय रामायण के दो स्थल आपाततः परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। ध्यातव्य है—

कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यत।[1]

अर्थात हे सुग्रीव ! कार्तिक मास के आरंभ होने पर तुम रावणवध के लिए प्रयत्नशील होना।

आगे चलकर 35वें सर्ग में युवराज अंगद वानरों से कहते हैं—

वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्या व्यवस्थिताः।
प्रस्थिताः सोऽपि चातीतः किमतः कार्यमुत्तरम् ॥[2]

अर्थात हम लोग आश्विन मास में सीता के अन्वेषण की प्रतिज्ञा करके राजधानी से निकले थे। वह सब समय व्यतीत हो गया है। अब हम लोगों को आगे क्या करना चाहिए ?

इस प्रसंग में अंगद स्पष्ट ही वानरों का प्रस्थान आश्विन मास में बता रहे हैं। श्रीराम कहते हैं कि कार्तिक के आरंभ में उद्योग प्रारंभ करना और अंगद कहते हैं कि आश्विन में उद्योग प्रारंभ हो गया था—यह स्पष्ट विरोध है। भ्रांति निवारण इस प्रकार है—

श्रीराम उत्तर भारत के निवासी थे और अंगद दक्षिण भारत के, अतः कृष्णपक्ष के वर्णन में जो व्यवहार-भेद हम आज देख रहे हैं वही भेद श्रीराम के युग में भी था। किसी भी मास का शुक्लपक्ष उत्तर और दक्षिण भारत में समान संज्ञा प्राप्त करता है। आश्विन शुक्ल को श्रीराम भी आश्विन शुक्ल कहते थे और वानर भी। परन्तु आश्विन पूर्णिमा का अगला दिन श्रीराम के लिए कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा था, उसी दिन वानरों ने प्रस्थान किया था अतः श्रीराम का वचन सत्य एवं यथार्थ

1. वाल्मीकि रामायण, किष्किंधाकांड, 20 (14)

2. वाल्मीकि रामायण, किष्किंधाकांड, 35 (24)

है। जो दिन श्रीराम के लिए कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा था वही दिन दाक्षिणात्य वानरों के लिए आश्विन कृष्ण प्रतिपदा था। कृष्ण पक्ष के व्यवहार-भेद के कारण यह विरोध प्रतीत होता है वस्तुतः विरोध है नहीं।

पाश्चात्य लेखकों ने लिखा है कि पहले महाभारत लिखी गई फिर महाभारत के रामोपाख्यान के आधार पर वाल्मीकीय रामायण की रचना हुई। यह धारणा भी सर्वथा मिथ्या, निर्मूल, निराधार एवं कपोलकल्पित है। रामायण बहुत प्राचीन रचना है अतः इसकी रचना महाभारत से बहुत पहले ही हो चुकी थी। यदि रामायण महाभारत के बाद की रचना होती तो इसमें श्रीकृष्ण, भीष्म, अर्जुन, व्यास का उल्लेख होता परन्तु ऐसा नहीं है। हाँ, इसके विपरीत तो है। महाभारत में महर्षि वाल्मीकि के नाम से एक श्लोक प्रायः शब्दशः उद्धृत किया गया है। द्रष्टव्य है–

न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद् ब्रवीषि प्लवंगम।
पीड़ाकरममित्राणां यत्स्यात् कर्तव्यमेव तत् ॥[3]

महर्षि व्यास ने महाभारत में वाल्मीकि के इस श्लोक को प्रायः शब्दशः उद्धृत किया है–

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्या स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम ॥
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीड़ाकरममित्राणां यत्स्यात् कर्तव्यमेव तत् ॥[4]

इससे यह निर्विवाद सिद्ध है कि वाल्मीकीय रामायण की रचना महाभारत से बहुत पूर्व हो चुकी थी। जो पाश्चात्य लेखक और उनका अन्धानुकरण करने वाले भारतीय वाल्मीकीय रामायण को महाभारत के पश्चात की रचना मानते हैं वे तनिक विचार करें। रामायण महाभारत से पूर्व-बहुत पूर्व लिखी गई थी–यह संदर्भ इसके लिए अकाट्य, अछेद्य और अभेद्य प्रमाण है।

आज के वैज्ञानिकों को आज से तीन शती पूर्व चार दांत वाले हाथियों का ज्ञान नहीं था। ये चार दांत वाले हाथी आज से ढाई करोड़ वर्ष से लेकर पचपन लाख वर्ष पूर्व तक अफ्रीका आदि देशों में पाए जाते थे। रामायण श्रीराम का समकालीन इतिहास है। महर्षि वाल्मीकि तीन दांत और चार दांत वाले हाथियों से परिचित थे। अतः रामायण की इन अन्तःसाक्षी के आधार पर रामायण काल

---

3 वाल्मीकि रामायण, लंकाकाण्ड, 42 (18)

4 महाभारत, द्रोणपर्व, 143 (67-68)

नो लाख वर्ष से भी प्राचीन सिद्ध होता है।

लोगों में एक भ्रांत धारणा फैली हुई है कि महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम का जीवन उनके उत्पन्न होने से 10,000 (दस सहस्र) वर्ष पूर्व लिख दिया था परन्तु यह सर्वथा मिथ्या एवं भ्रांत धारणा है क्योंकि—

कोन्वस्मिन्सांप्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः ।।[5]

इस श्लोक में शब्द है सांप्रतम्-जिसका अर्थ है इस समय, वर्तमान काल मे। अन्यत्र इससे भी स्पष्ट वर्णन है—

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः ।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत् ।।[6]

अर्थात् श्रीराम के राजसिंहासन पर आसीन होने के पश्चात महर्षि वाल्मीकि ने विचित्र पदों से युक्त इस काव्य की रचना की थी।

महर्षि वाल्मीकि के सम्बंध में लोगों में एक और भ्रांत धारणा फैली हुई है कि वे आरंभ में डाकू थे। रामायण मे तो उनके सम्बंध में यही घटना उपलब्ध होती हैं वालमीकि जी के सम्बंध में रामायण को ही प्रामाणिक माना जा सकता हे। सीता जी की पवित्रता को साक्षी देते हुए उन्होंने कहा था—

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम् ।।[7]

(हे राम ! मैं प्रचेतस मुनि का दसवां पुत्र हूं। मैंने मन, वचन और कर्म से कभी पापाचरण नहीं किया है)।

इस श्लोक के विद्यमान रहते हुए महर्षि वाल्मीकि के सम्वंध में यह कैसे कहा जा सकता है कि वे शैशव अवस्था में डाकू रहे होंगे। वे वाल्मीकि कोई दूसरे हो सकते हैं। एक ही नाम के अनेक व्यक्तियों का होना असम्भव नहीं है।

गरूड़ के विषय में लोगों में ऐसी मिथ्या धारणा फैली हुई है कि यह पक्षी था परन्तु—

को भवान् रूप सम्पन्नो दिव्यस्त्रगनुलेपनः ।
वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषितः ।।[8]

---

5 वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 1 (2)

6 वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 2 (15)

7 वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 96 (19)

8 वाल्मीकि रामायण, लंकाकाण्ड, 29 (31)

इस वर्णन को देखकर गरूड़ के पक्षी होने का खंडन हो जाता है। पक्षी न माला धारण करते हैं और न चंदन लगाते हैं। पक्षी वस्त्र भी नहीं पहनते और न आभूषण धारण करते हैं। अगले ही श्लोक में गरूड़ अपने आपको राम का प्रिय सखा कह रहा है। अतः यह स्पष्ट है कि गरूड़ विनता के पुत्र थे और वायुयान से आते-जाते थे।

पक्षी कहलाने वाले काकभुशुण्डि जी ने भी 'रामचरितमानस' में स्वीकारा है कि वे नीच जाति के विद्वान थे—

अधम जाति मैं विद्या पाएँ।
भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ ॥[9]

हिन्दु धर्मावलम्बियों की यह मानसिक अवधारणाएँ हैं कि पाताल लोक की भोगोलिक स्थिति पृथ्वी के नीचे तथा द्युलोक, बैकुंठलोक, देवलोक, ब्रह्मलोक, स्वर्गलोक और विष्णुलोक आदि आसमान में ही ऊपर अवस्थित हैं। वास्तव में यह एक भ्रांति है क्योंकि जिस प्रकार आजकल किसी स्थान को नगर या पुर प्रत्यय लगाकर सम्बोधित करते हैं उसी प्रकार संभवतया वैदिक काल में किसी साम्राज्य विशेष को 'लोक' कहते थे। पाताल सात माने गए हैं जिनके नाम ये है—अतल, वितल, सुतल, तलावल, महातल, रसातल और पाताल। प्रत्येक की लंबाई 10-10 हजार योजन है तथा सभी धन-धान्य से परिपूर्ण हैं। अतल की भूमि काली है जहां भय दानव का पुत्र बल रहता था। वितल की भूमि धवल है जहां शंकर और पार्वती का निवास है, यहीं पर देवलोक, स्वर्गलोक एवं वैकुण्टलोक स्थित है। सुतल की भूमि लाल है और यहां प्रह्लाद के पौत्र बलि राजा का राज्य था। मुचकुंद आदि असुर और दैत्य यहीं रहते थे। तलातल की भूमि पीले रंग की है और दानवेन्द्र मय यहां का स्वामि था। मय मायाविदों का आचार्य तथा महान् शिल्पी माना गया है। मय दानव ने ही लंका का निर्माण किया तथा महान् शिल्पी माना गया है। मय दानव ने ही लंका का निर्माण किया तथा अपने साथी 'तारक' के लिए आकाश में 'तारानगर' की स्थापना की थी, इसलिए असुर का नाम 'तारक' (तारेवाला) पड़ा। महान् असुर तारक के तीन पुत्र थे—ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्यन्माली। उन्होंने तीन प्रसिद्ध त्रिपुरों की स्थापना की जो क्रमशः लौह, रजत (चादी) और स्वर्ण के बने हुए थे तथा पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं आकाश में स्थित थे, इन्हीं को 'त्रिपुर' कहा जाता था। तारकासुर का वध महादेव पुत्र कार्तिकेय

---

9 मानस, उत्तरकाण्ड, 105 (3)

ने किया था और त्रिपुर का विनाश स्वयं शिव महादेव ने किया था, यह इतिहास पुराणों में प्रसिद्ध है। जिस युद्ध में तारक पराजित हुआ, उसका नाम भी 'तारकामय युद्ध था जिसको आज का विज्ञान तारायुद्ध (स्टार वार) की संज्ञा देता है।

महातल की मिट्टी खांड मिली हुई है। कद्रु के पुत्र सर्प यहां निवास करते थे जिनमें कुहक, तक्षक, सुषेण तथा कालिय प्रधान हैं। रसातल की भूमि पथरीली है तथा दैत्य, दानव और पाणि नाम के असुर इन्द्र के भय से यहां निवास करते थे। पाताल की भूमि स्वर्णमयी है और वासुकि नामक सर्प, शंख, कुलिक, शंखचूड, धनजय आदि कितने ही विशालकाय सर्पों के साथ यहां रहता था। यहां से तीस हजार योजन नीचे शेष भगवान या अनंत का निवास है।

विश्वविख्यात सप्त पातालों में सुतल-मध्यपूर्व (सीरिया, जोर्डन, ईराक, अरब राष्ट्र, टर्की, इरान) की संज्ञा थी और तलातल उत्तरी अफ्रीका (लीबिया, मिस्र ट्यूनीशिया) आदि की संज्ञा थी। शेष दक्षिण अफ्रीका के अनेक देश यक्ष राक्षसों के नाम पर बसे हुए थे। क्षीर सागर (भूमध्यसागर) में विष्णु लोक तथा बर्मा में ब्रह्मलोक स्थित है। पुराणों (ब्रह्मांड पुराण 1/2/21), में इस तथ्य का उल्लेख है कि सुतल और तलातल में महाजम्भ (जांबिया), प्रमथ, ह्यग्रीव, कृष्ण, निकुंभ, बंकल नाम के असुरों तथा नाग अश्वतर, तक्षक आदि के नगर हैं। तलातल में प्रह्लाद (लीबिया), अनुह्लाद, अग्निमुख, तारकासुर के त्रिपुर (त्रिपोली) तथा त्रिशिरा, शिशुमार, त्रिपुर तथा राक्षसेन्द्र कुंभिल, खर, मणिनाग, कपिल, नंदक और निशालाक्ष के अनेक नगर हैं। इतिहास-पुराणों में अफ्रीका को ही पाताल कहा गया है। अफ्रीका के प्रसिद्ध देश मिस्र में आज भी अनेक स्थान 'तलांत' नाम धारण किए हुए है, उदाहरणार्थ—तल अगरब, तलबिल्ला, तल अमरीन, तल हशुना, तेल अबीब (इज़राइल में) इत्यादि। मिस्र के बारहवें वंश के इतिहास में उल्लिखित है कि मिस्र को उस समय एक अज्ञात वंश की जाति ने जीत लिया, जिसका नाम हिक्सास (यक्ष = राक्षस) था। ये लोग पूर्व (भारत) से आए थे—इस यक्ष (हिक्सास) जाति के लगभग 200 शासकों ने मिस्र में 1590 वर्ष राज्य किया। रामायण के वर्णन को इस ऐतिहासिक वर्णन से मिलाने पर निश्चित हो जाता है कि भारत से 7200 वर्ष पूर्व भागकर यक्ष राक्षस ही अफ्रीका के मिस्र आदि देशों को रौंदते हुए वहा शासन करने लगे और बस गए।

महर्षि नारद कितने स्वाध्यायशील थे यह बात निम्न वर्णन से स्पष्ट है—

"ऋग्वेदं भगवो ध्येमि, यजुर्वेदं, सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम्, इतिहासपुराणं पच, वेदानां वेदं, पित्र्यं, राशिं, देवं, निधिं, वाकोवाक्यमेकायनं, देव विद्यां, ब्रह्मविद्या,

भूतविद्यां, क्षत्रविद्या, नक्षत्र विद्यां, सर्पदेवजन विद्याम्, एतद्भगवो ध्येमि।''[10]

नारद ने कहा--मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वेद, चारों वेदो को जानता हू। इनके अतिरिक्त इतिहास-पुराण (ब्राह्मण तथा कल्पादि) वेदों का वेद (व्याकरण तथा निरुक्त) पित्र्य (वायुविज्ञान), राशि (गणित विद्या), दैव (प्रकृति विज्ञान) निधि (भूगर्भ-विज्ञान), वाकोवाक्य (तक शास्त्र), पंचभूत ज्ञान, धनुर्वेद, ज्योतिपशास्त्र सपविज्ञान (सर्पों को वश में करने वाली), देव-जन विज्ञान (गन्धर्व-विद्या) को मै जानता हूं। इतना मैंने अध्ययन किया है--यह हैं महर्षि नारद का अद्भुत स्वाध्याय।

जटायु के सम्बंध मे लोगों को बहुत भ्रांति है। लोक में ऐसा प्रसिद्ध है कि जटायु एक गीध था परन्तु यह बात सर्वथा असत्य है। जटायु अपने आपको (वयस्य पितुरात्मनः—वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, चतुर्दश सर्गः श्लोक-3) दशरथ का मित्र बताता है। इतना ही नहीं जटायु के लिए आदि-कवि ने आर्य शब्द का भी प्रयाग किया है। जब रावण सीता को हरणकर ले जा रहा था तब सीता जटायु को देखकर कहती है—

जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत्।[11]

हे आर्य जटायु। देखो यह राक्षस मुझे अनाथ की भांति उठाकर ले जा रहा है। आर्य विशेषण से ही यह बात सिद्ध है कि जटायु पक्षी नहीं था।

इसमें संदेह नहीं कि रामचरितमानस में उन्हें कहीं-कहीं पक्षी कहा गया है किन्तु इस शंका का समाधान 'ताण्ड्य ब्राह्मण' से हो जाता है—

ये वै विद्वांसस्ते पक्षियो येऽविद्यांसस्ते पक्षाः।[12]

अर्थात् जो विद्वान होते हैं वे पक्षी (पक्ष करने वाले) और जो अविद्वान (मूर्ख) होते हैं वे (पक्षरहित)।

गृध्रराज (गृध्रकूट के भूतपूर्व राजा) जटायु ने राजपाट अपने पुत्रों को सौंप दिया था और वे परमात्मा की प्राप्ति के लिए संलग्न होकर वानप्रस्थियों का-सा जीवन बिता रहे थे। अतः उन्हें पक्षी कहना उचित ही है। ज्ञान और कर्म उनके दो पक्ष थे जिनसे उड़कर वे परमात्मा-प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे थे। वानप्रस्थियो की भांति उन्होंने अपनी जटाएं बढ़ाई हुई थीं इसीलिए वे जटायु थे। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण हैं जिनके वास्तविक नाम का पता नहीं होता बल्कि कर्म के

---

10 छान्दोग्य उपनिषद्, 7/1/2

11 वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, 49 (38)

12 ताण्ड्य ब्राह्मण, 14/1/3

आधार पर प्रसिद्धि प्राप्त कर लेते हैं ... वाल्मीकि कश्यप अगस्त्य भारद्वाज आदि। सन् 1984 में ब्रजघाट (गढ़मुक्तेश्वर) पर एक फलाहारी बाबा परमात्मा में लीन हो गए जो केवल फलों का ही सेवन करते थे। इनका वास्तविक नाम अज्ञात है।

महर्षि वाल्मीकि ने कहा है कि—

> नानृग्वेदविनितस्य नायजुर्वेदधारिणः।
> नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्‌॥[13]

जो व्यक्ति हनुमान को बन्दर कहते हैं वे तनिक इस श्लोक का अवलोकन करें। क्या बन्दर ऋग्वेदादि वेदों का अध्ययन करते हैं और क्या जंगलों में कूदने वाले बन्दर व्याकरण का अध्ययन करते हैं। हनुमान पूंछ वाले एवं लाल मुख वाले बन्दर नहीं थे जैसा कि उन्हें कुछ मूर्ख व्यक्ति समझते हैं। वे वानर जाति के थे और वेदवेदांग के विद्वान थे।

जब किष्किंधा काण्ड में हनुमान को वेदादि शास्त्रों और व्याकरण का विद्वान बतलाया गया है तब उन्हें पूंछ वाला बन्दर कहना मूर्खता है। बालि, सुग्रीव, अगद आदि सभी मनुष्य थे। इनके लिए 'आर्य' विशेषण का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है। तारा को मन्त्रवित् कहा गया है।

एक बात बड़ी विचित्र है कि यह पूंछ पुरुषों के ही दिखाई गई है तारा, रूमा आदि वानर स्त्रियों के लिए कहीं भी पूंछ का उल्लेख नहीं है। क्या कही ऐसे बन्दर भी संसार में होते हैं कि बन्दरों के तो पूंछ हों और बन्दरियों के पूछ न हो।

लांगूल वानर जाति का राष्ट्रीय चिन्ह (totem टोटेम) था। इसे ये लोग बडी श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते थे तथा इसके अपमान को जातीय अपमान समझते थे। रावण ने इसी राष्ट्रीय-चिन्ह को जलाने की आज्ञा प्रदान की थी। जैसे आजकल भी ग्वाले अपनी पगड़ी में मोर-पंख लगा लेते हैं परन्तु वह उनके शरीर का अंग नहीं होता, इसी प्रकार वानर जाति के लोग भी पूंछ सदृश कोई वस्तु लगा लेते थे। यह इनके शरीर का वास्तविक अंग नहीं था।

लोगों की आम धारणा है कि रावण का जन्म राक्षसकुल में हुआ था, किन्तु यह विचार निर्मूल एवं मिथ्या है। जिस प्रकार महर्षि मनु के कुल में उत्पन्न होने वाले मनुज को मानव कहा गया है उसी प्रकार दनु के वंशज (दनुज) दानव तथा

---

13 वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा काण्ड, 3 (28)

दिति के वंशज होने के कारण दैत्य कहे गए—

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।

मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥[14]

अर्थात (भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं) मैं दिति के वंशजों में प्रह्लाद नामक दैत्य हू और कलना-गणना करने वालों में मैं काल हूं। पशुओं में पशुओं का राजा सिंह और पक्षियों मे विनता पुत्र गरूड़ हूं।

प्रस्तुत है महाकवि तुलसीदास जी द्वारा वर्णित प्रसंग—

देव दनुज गन नाना जाती।

सकल जीव तहँ आनहि भाँति॥[15]

वन-पुरुष को वानर कहा गया किन्तु जो प्राणी रात्री में भ्रमण करते थे उनको निशाचर की संज्ञा दी गई। वानर जाति बालि, जावा, सुमात्रा आदि द्वीप के मूल निवासी थे और वहां से यह जाति मद्रास के पास तुंगभद्रा नदी किनारे किष्किंधा में आकर प्रवासी हुए तत्पश्चात बालि-सुग्रीव ने यहां शासन किया। रावण विश्रवा के पुत्र तथा पुलस्त्य ऋषि के पौत्र थे। यह जाति के ब्राह्मण किन्तु दिति वंश में जन्म लेने के कारण दैत्य कहलाए। पुलस्त्य ऋषि के पूर्वज सुमाली (अफ्रीका) द्वीप के मूल निवासी थे। यह कुल पश्चिम की दिशा से आकर मंदसार (मध्य प्रदेश) में प्रवासी बना। सम्भवतया उस समय आर्यवर्त्त, अरब तथा अफ्रीका का उत्तरी भूभाग मिला हुआ एक ही था। यक्ष जाति का मूल निवास लक्षद्वीप, श्रीलंका तथा सुदूर दक्षिण भारत था जहां पर कुवेर का आधिपत्य था और ऋक्षराज जाम्बवान जैसे योद्धा का दक्षिण में राज्य था। कुबरे धनाड्य था इसी कारण दैत्यराज रावण ने उसकी स्वर्णिम लंका पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की। चूंकि कुबेर शिव का भक्त था इसीलिए उसने रावण से परास्त होने के बाद उत्तर में कैलास पर्वत पर शिवजी के संरक्षण में अलका नगरी बसायी। संतकवि तुलसीदास जी कहते हैं कि लंका स्वर्ण की बनी हुई थी—

सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा।

कनक रचित मनिभवन अपारा॥[16]

लंका में धन-धान्य अधिक होने के कारण वह सोने की ठीक इसी प्रकार

---

14 श्रीमद्भगवद्गीता, 10/30

15 मानस, उत्तरकाण्ड, 80 (2)

16 मानस, बालकाण्ड, 177 (3)

थी जैसे भारत को कभी सोने की चिड़िया कहा जाता था

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि किसी देश अथवा जाति की संस्कृति को नष्ट करना हो तो उसका इतिहास नष्ट कर दो। अत: भारत का इतिहास इतना विकृत कर दिया गया कि यहां के प्राचीन स्थलों के नाम या तो बदल दिए गए हैं अथवा भ्रम पैदा करने के लिए एक ही नाम के दो या तीन स्थानों की स्थापना तथा नामकरण किया गया है। उदाहरणार्थ प्रयाग का नाम बदलकर इलाहाबाद किया गया और नीलगिरि पर्वत उत्तर में कैलास पर्वत की शृंखला है तो दक्षिण में केरल के तट एवं पूर्वीघाट पर उड़ीसा में भी स्थापित किया गया। यहां तक कि लंका स्थल भी तो तीन हैं--एक गोंडवाना प्रदेश (विंध्याचल पर्वत), दूसरा उड़ीसा में त्रिकूट पर्वत और तीसरा सुदूर दक्षिण में श्रीलंका। धौलागिरि उत्तर तथा दक्षिण दोनों दिशाओं में है। कैलास पर्वत भारत के उत्तर एवं दक्षिण दोनों ओर है। जनकपुर नेपाल में है तो मध्य प्रदेश में भी है। त्रिकूट पर्वत एक उड़ीसा में है तो दूसरे पर दक्षिण में लंका विस्थापित है। एक सरयू नदी के किनारे अयोध्या बसी है तो दूसरी सरयू चित्रकूट में भी है। इस प्रकार भ्रम पैदा करने के लिए **हमारे भौगोलिक इतिहास को बदल दिया गया ताकि पाश्चात्य सभ्यता में शिक्षित भारतीय जनता के मन में रामायण और महाभारत आदि धर्मशास्त्रों के प्रति विश्वास ही उठ जाए।**

वैदिक कालीन वैज्ञानिक

ब्रह्माचार्यो वसिष्ठोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यलोमशौ
मरीचिरंगिरा व्यासो नारदः शौनको भृगुः।
च्यवनो यवनो गर्गः कश्यपश्च पराशरः।
अष्टादशैते गंभीराः ज्योतिः शास्त्र प्रवर्तकाः॥

(स्रोत–नारद संहिता)

1. ब्रह्मा
2. सूर्य
3. वसिष्ठ
4. अत्रि
5. मनु
6. पौलस्त्य
7. लोमश
8. मरीचि
9. अंगिरा
10. व्यास
11. नारद
12. शौनक
13. भृगु
14. च्यवन
15. यवन
16. गर्ग
17. कश्यप
18. पराशर

शृंखला-प्रतिक्रिया

● विखंडित अंश

○ न्यूट्रॉन

⊗ यूरेनियम केन्द्रक
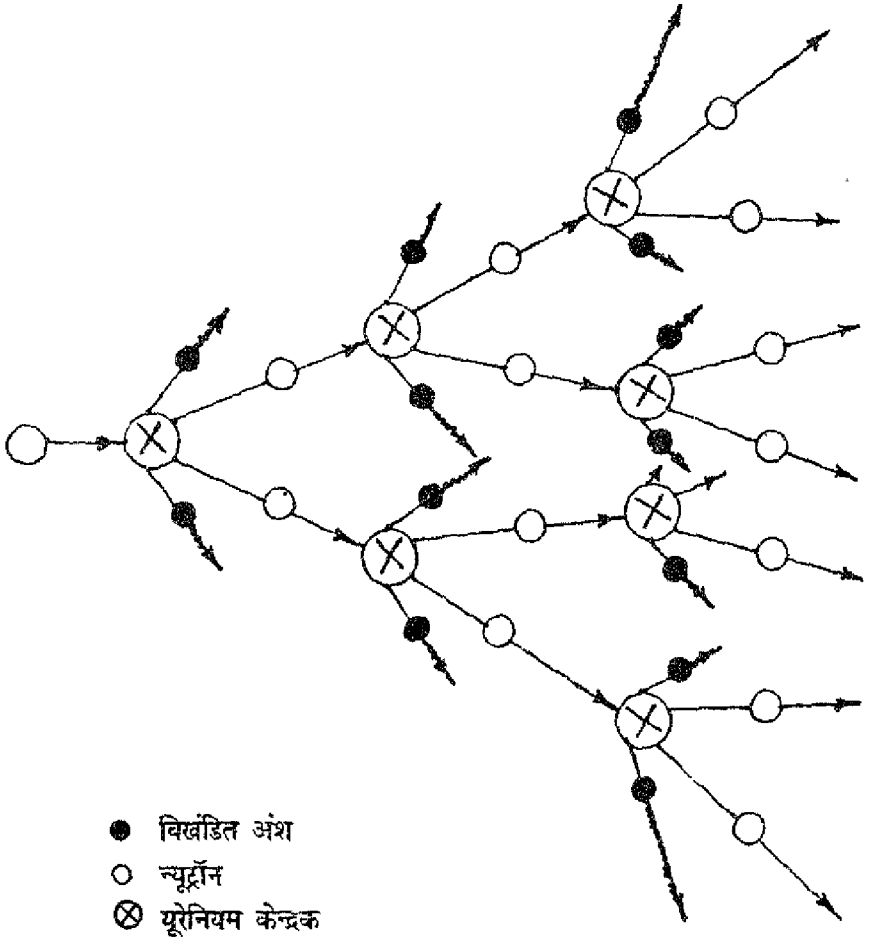
अट्ठारह-पुराण

निरुक्त के अनुसार ''परां नवं करोति इति पुराणम्'' अर्थात् जो प्राचीन कथाओं को नवीन पद्धति से प्रस्तुत करता है, वह पुराण है। वायु पुराण (1-203) में पुराण की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—

यस्मात् पुरा हि अनिति इति पुराणम्। अर्थात 'पुराण' जिसमें पुरानी घटना जीती है। विष्णु पुराण (3-6-24) में पुराण के इन पांच लक्षणों का निर्देश किया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरित-चैव पुराणं पंचलक्षणम्॥

अर्थात पुराण में सृष्टि, सृष्टिनाश, देव-वंशावली, मन्वन्तर तथा सूर्यवंशी-चन्द्रवंशी राजाओं का वर्ण—ये पांच बातें मिलनी चाहिए।

पुराणों की सख्या अट्ठारह है जो इस श्लोक में है—

म-द्वयं भ-द्वयेचैव ब्र-त्रयं व-चतुष्टयम्।
अ-ना-प-लिंग कूस्कानि पुराणानि प्रचक्षेत॥

अर्थात, 'म' वर्ण से आरंभ होने वाले	(1) मत्स्य पुराण
	(2) मार्कण्डेय पुराण
'भ' वर्ण से आरंभ होने वाले	(1) भविष्य पुराण
	(2) भागवत पुराण
'ब्र' वर्ण से आरंभ होने वाले	(1) ब्रह्म पुराण
	(2) ब्रह्माण्ड पुराण
	(3) ब्रह्मवैवर्त पुराण

'व' वर्ण से आरंभ होने वाले (1) वामन पुराण
(2) वराह पुराण
(3) वायु पुराण
(4) विष्णु पुराण
'अ' वर्ण से आरंभ होने वाले (1) अग्नि पुराण
'ना' वर्ण से आरंभ होने वाले (1) नारद पुराण
'प' वर्ण से आरंभ होने वाले (1) पद्म पुराण
'लिं' वर्ण से आरंभ होने वाले (1) लिंग पुराण
'ग' वर्ण से आरंभ होने वाले (1) गरूड़ पुराण
'कू' वर्ण से आरंभ होने वाले (1) कूर्म पुराण
'स' वर्ण से आरंभ होने वाले (1) स्कन्द पुराण
कुल अट्ठारह पुराण हैं।

इन पुराणों का विभाजन सत्, रज और तमस् की दृष्टि से भी हुआ है–

(1) सतोगुणी पुराण (विष्णुपरक)–विष्णु, भागवत, नारद, गरूड़, पद्म तथा वराह पुराण।

(2) रजोगुणी पुराण (ब्रह्मापरक)–ब्रह्म, ब्रह्मांड, मार्कण्डेय, ब्रह्मवैवर्त, वामन तथा भविष्य पुराण।

(3) तमोगुणी पुराण (शिवपरक)–स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, लिंग, अग्नि, तथा वायु पुराण जिसके अन्तर्गत शिवपुराण है।

समयान्तराल सारणी

3	लव	=	1 निमेष
3	निमेष	=	1 क्षण
5	क्षण	=	1 काष्ठा
15	काष्ठा	=	1 लघु
15	लघु	=	1 नाडिका
6	नाडिका	=	1 प्रहर
8	प्रहर	=	1 अहोरात्र (दिन रात, 24 घण्टे)
15	अहोरात्र	=	1 पक्ष
2	पक्ष	=	1 मास (पितरों का अहोरात्र)
2	मास	=	1 ऋतु (गन्धर्व-अहोरात्र)
3	ऋतु	=	1 अयन
2	अयन	=	1 मानव वर्ष (देव अहोरात्र)
4,32,00*	वर्ष	=	कलियुग (सन् 3102 ई.पू. से आरंभ)
8,64,00*	वर्ष	=	द्वापर युग
12,96,00*	वर्ष	=	त्रेतायुग
17,28,00*	वर्ष	=	सत्ययुग
43,20,000	वर्ष	=	1 चतुर्युगी
1000/14	चतुर्युगी	=	1 मन्वन्तर
14	मन्वन्तर	=	100^{0} चतुर्युगी
		=	1 कल्प = ब्रह्मा का दिन
		=	4,32,00,00,000 वर्ष

रासायनिक तत्व

परमाणु क्रमांक	परमाणु भार	नाम	रासायनिक संकेत	समस्थानिकों की संख्या	खोजकर्ता	खोज वर्ष
1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.
01.	1.00797	हाइड्रोजन	H	3	हैनरी कैवेन्डिश	1766
02.	4.0026	हीलियम	He	1	विलियम रैम्जे	1895
03.	6.939	लीथियम	Li	2	योहान ए आर्फवेदसन	1817
04.	9 0122	बेरिलियम	Be	1	लुई एन. वैक्वेलिन	1798
05.	10.811	बोरोन	B	2	जोसफ एल. गेलुसाक और लुई जे. थेनार्ड	1808
06.	12.0111	कार्बन	C	2	अज्ञात	
07.	14.0067	नाइट्रोजन	N	2	डैनियल रदरफर्ड	1772
08.	15.9994	आक्सीजन	O	3	जोसफ प्रीस्टले	1774
09.	18.9984	फ्लोरीन	F	1	फर्डीनेन्ड एफ.एच. मोसेन	1886
10.	20.183	निआन	Ne	3	विलियम रैम्जे और मॉरिस डब्लू ट्रैवर्स	1898
11.	22.9898	सोडियम	Na	1	हम्फ्री डेवी	1807
12.	24. 312	मैग्नीशियम	Mg	3	हम्फ्री डेवी	1808
13.	26.9815	एलूमिनियम	Al	1	फ्रेडरिख वोह्लर	1827
14.	28.086	सिलिकन	Si	3	जॉन्स जे. बर्जीलियस	1823
15.	30.9738	फॉस्फोरस	P	7	हेनिग ब्रांड	1669
16.	32.064	गंधक	S	4	अज्ञात	—

	2.	3.	4.	5.	6.	7.
17	35.453	क्लोरीन	Cl	2	हम्फ्री डेवी	1810
18	39.948	ऑर्गान	Ar	3	लार्ड रैले और विलियम रैम्जे	1894
19	39.102	पोटैशियम	K	3	हम्फ्री डेवी	1807
20	40 08	कैल्शियम	Ca	6	हम्फ्री डेवी	1808
21	44.956	स्कैण्डियम	Sc	1	लार्स एफ. निल्सन	1879
22	47 90	टाइटेनियम	Ti	5	विलियम ग्रेगर	1791
23	50.942	वैनेडियम	V	2	निल्स जी. सेफ्स्ट्रॉम	1830
24	51 996	क्रोमियम	Cr	4	लुई एन. वैक्वेलिन	1797
25	54.9380	मैंगनीज	Mn	1	योहान जी गाहन	1774
26	55.847	लोहा	Fe	4	अज्ञात	—
27	58.9332	कोबाल्ट	Co	1	जार्ज ब्रांड	1735
28	58.71	निकिल	Ni	5	एक्सेल एफ. क्रॉन्स्टेड	1751
29	63.54	ताम्र	Cu	2	अज्ञात	—
30	65.37	जस्ता	Zn	5	आन्द्रेस एस. मारग्राफ	1746
31	69.72	गैलियम	Ga	2	पॉल ई. लैकोक द बायस्बोद्रान	1875
32	72.59	जर्मेनियम	Ge	5	क्लीमेन्स ए. विन्कलर	1886
33	74.9216	आर्सेनिक	As	1	एलवर्तुस मग्नस	1250
34.	78.96	सेलीनियम	Se	6	जॉन्स जे. बर्जीलियस	1817
35.	79.909	ब्रोमीन	Br	2	एन्टोनी जे बलार्द	1826
36.	83.80	क्रिप्टॉन	Kr	6	विलियम रैम्जे और मॉरिस डब्लू. ट्रवर्स	1898
37.	85.47	रुबिडियम	Rb	2	राबर्ट डब्लू. बन्सेन और गुस्ताव आर किरचौफ	1861
38.	87.62	स्ट्रॉन्शियम	Sr	4	हम्फ्री डेवी	1808
39.	88.905	इट्रियम	Y	1	योहान गैडोलिन	1794
40.	91.22	जर्कोनियम	Zr	5	मार्टिन एच. क्लापरोथ	1789
41	92.906	नायोबियम	Nb	1	चार्ल्स हैचट	1801
42.	95.94	मोलिब्डेनम	Mo	7	पीटर जे. हजेल्म	1782
43.	98.00	टैक्नीशियम	Tc		एमिलियो सैग्रे और सी. पैरियर	1937
44.	101.07	रूथेनियम	Ru	7	कार्ल के. क्लॉस	1844
45.	102.905	रोडियम	Rh	1	विलियम एच. वोलस्टन	1803
46.	106.4	पैलेडियम	Pd	6	विलियम एच.वोलस्टन	1803

1	२	3	4		6	7
4	0 ८	चाग	Ag		अज्ञात	
48.	112.40	कडामियम	Cd	8	फ्रेडरिख स्ट्राहमेयर	1817
49	111.82	इंडियम	In	2	फर्डीनेन्ड रीच और हीरोनियम टी. रिचर	1863
50.	118.69	टिन	Sn	10	अज्ञात	–
51	121.75	ऐंटीमनी	Sb	2	अज्ञात	–
52.	127.60	टेल्यूरियम	Te	8	बैरन वान रिचएनर्स्टीन	1782
53.	126.9044	आयोडीन	I	1	बर्नार्ड कॉरटोईज	1811
54.	131.30	ज़ीनान	Xe	9	विलियम रैम्जे और मोरिस डब्लू. ट्रैवर्स	1898
55.	132.905	सीजियम	Cs	1	राबर्ट डब्लू. बन्सेन और गुस्ताव आर. किरचोफ	1860
56.	137.34	बेरियम	Ba	7	हम्फ्री डेवी	1808
57.	138.91	लैन्थेनम	La	2	कार्ल जी. मोसेंडर	1839
58.	140.12	सीरियम	Ce	4	जान्स जे. बर्जेलियस ओर विश्हेल्म हिसन्गर	1803
59.	140 907	प्रेजिओडिमियम	Pr	1	बैरन वार्न वैल्सबाख	1885
60.	144.24	नियोडिमियम	Nd	7	बैरन वार्न वैल्सबाख	1885
61.	146.00	प्रोमेथियम	pm		जे.ए. मारिसकी और एल.ई. ग्लैंडेनिन	1947
62.	150.35	सेमेरियम	Sm	7	पाल ई. लैकोक द बायस्बोद्रान	1879
63.	151.96	यूरोपियम	Eu	2	यूजीन ए. दमार्के	1896
64.	157.25	गैडोलिनियम	Gd	7	जान सी.जे.द मैरिगनाक	1880
65.	158.924	टर्बियम	Tb	1	कार्ल जी. मैसोन्डर	1843
66.	162.50	डिस्प्रोजियम	Dy	7	पाल ई. लैकोक द बायस्बोद्रान	1886
67.	164 930	होल्मियम	Ho	1	पर टी. क्लीव	1879
68.	167.26	अरबियम	Er	6	कार्ल जी. मसेंडर	1843
69.	168.934	थूलियम	Tu	1	पर टी. क्लीव	1879
70.	173.04	इटर्बियम	Yb	7	जान सी.जी. द मेरिदनाक	1878
71.	174.97	ल्यूटीशियम	Lu	2	जार्जेस अर्बेन	1907
72.	178.49	हैफनियम	Hf	6	ड्रिक फोस्टर और जार्ज वान हेवेसी	1923

1	2	3	4	5	6	7
99.	254	आइन्स्टाइनियम	En		ग्लेन टी. सीबर्ग, ए. गियोर्सो और सहयोगी	1952
100.	253	फर्मियम	Fm		ग्लेन टी. सीबर्ग, ए. गियोर्सो और सहयोगी	1952
101.	256	मेन्डेलीवियम	Mv		ग्लेन टी. सीबर्ग और अन्य सहयोगी	1955
102.	254	नोबेलियम	No		पी.आर.फील्ड्स और सहयोगी	1957
103.	257	लारेंसियम	Lw		ए. गियोरसो और अन्य सहयोगी	1961
104.	260	ख़ुश्चेतोवियम				1961
105	262	बोहरियम				
106.	259				ए. गियोरसो जोन फ्लेनोव और यट्स	1974

परमाणु घटकों का स्थिरांक

न्यूट्रॉन का द्रव्यमान	=	1.675×10^{-27} किलोग्राम
	=	1.0087 परमाणु द्रव्यमान इकाई (amu)
	=	939.6 मिलि इलैक्ट्रॉन वोल्ट (Mev)
प्रोटॉन का द्रव्यमान	=	1.67×10^{-27} किलोग्राम
	=	1.0073 परमाणु द्रव्यमान इकाई (amu)
	=	938.3 मिलि इलैक्ट्रॉन वोल्ट (Mev)
इलैक्ट्रॉन का द्रव्यमान	=	9.11×10^{-31} किलोग्राम
	=	5.487×10^{-4} परमाणु द्रव्यमान इकाई (amu)
	=	0.511 मिलि इलैक्ट्रॉन वोल्ट (Mev)
परमाणु द्रव्यमान इकाई	=	1.66×10^{-27} किलोग्राम
	=	931 मिलि इलैक्ट्रॉन वोल्ट (Mev)

रेडियोधर्मी तत्वों का अर्ध-आयु-काल

तत्व	परमाणु भार	अर्ध-आयु	
यूरेनियम	238	4.49×10^{9}	वर्ष
थोरियम	232	1.39×10^{10}	वर्ष
रूबीडियम	87	6.1×10^{10}	वर्ष
पोटेसियम	40	1.3×10^{10}	वर्ष
कार्बन	14	5.57×10^{3}	वर्ष
रेडियम	226	1.62×10^{3}	वर्ष
सीज़ियम	137	33	वर्ष
स्ट्राँन्शियम	90	28	वर्ष
क्रिप्टॉन	85	10	वर्ष
कोबाल्ट	60	5	वर्ष
इलिनियम	147	2.2	वर्ष
यूरोपियम	155	1.7	वर्ष
मैंगनीज़	54	1	वर्ष

पदार्थ	रासायनिक सूत्र	रिओलाइट	क्वार्ट्ज-लेटाइट	डेसाइट	ट्रेकीटे	लेटाइट	ऐन्डेसाइट	बेसाल्ट	फ़ोनोलाइट
सिलिका	Sio_1	72.80	62.43	65.68	60.68	57.65	59.59	49.06	57.45
टिटानिया	Tio_2	0.33	0.85	0.57	0.38	1.00	0.77	1.36	0.41
अल्यूमीना	Al_2O_3	13.49	16.15	16.25	17.74	16.68	17.31	15.70	20.60
फैरिक ऑक्साइड	Fe_2O_3	1.45	4.04	2.38	2.64	2.29	3.33	5.38	2.35
फैरस ऑक्साइड	Feo	0.88	1.20	1.90	2.62	4.07	3.13	6.37	1.03
मैगनस ऑक्साइड (हरा रंग)	Mno	0.08	0.09	0.06	0.06	0.10	0.18	0.31	0.13
मैग्नीशिया	Mgo	0.38	1.74	1.41	1.12	3.22	2.75	6.17	0.30
चूना	Cao	1.20	4.24	3.46	3.09	5.74	5.80	8.95	1.50
सोडा	Na_2O	3.38	3.34	3.97	4.43	3.59	3.58	3.11	8.84
पोटाश	K_2O	4.46	3.75	2.67	5.74	4.39	2.04	1.52	5.23
जल	H_2O	1.47	1.90	1.50	1.26	0.91	1.26	1.62	2.04
सफेद	P_2O_5	0 08	0 27	0.15	0 24	0.36	0 26	0 45	0 12

परिभाषिक-शब्दावली

अ

अणु	molecule
अण्डाणु (डिम्बाणु)	ovum
अण्डाशय	ovary
अतिसार	diarrhoea
अर्धसूत्र	meiotic
अधिवृक्क	adrenal
अन्तःस्रावी तंत्र	endocrine system
अनुप्रयुक्त भौतिकी	applied physics
अपवर्तन	refraction
अपहरण	abduction
अपस्मार	epilepsy
अपचय	catabolism
अफारा	flatus
अपराध विज्ञान	criminology
अयस्क	ore
अवसादी शैल	sedimentary rocks
अवशोषण	absorption
अवटु	thyroid
असूत्री	amitotic
अंगद तंत्र	toxicology

आ, ई

आकर्षण	attraction
आर्द्रता	humidity
आदिम	primitive
आध्यात्मिक मन	spiritual mind
आनुवंशिकी	genetics, hereditary
आभ्यांतिरिक प्रक्रिया	subjective process
आभामंडल	aura
आमाश्य	abdomen
आयुर्विज्ञान	Medical Sciences
आयाम	demension
आसन	posture
आसास्थि	ischium
आसवन	distillation
आंत	intestine
इड़ा	lunar channel

उ, ऊ

उत्प्रेरक	catalyst
उत्सर्जन	emission
उत्सर्जन तंत्र	excretary system
उत्परिवर्तन	transmutation
उपचय	anabolism
उपापचय	metabolism
ऊर्जा	energy
ऊतक	tissues
ऊष्मा-ऊर्जा	heat-energy

क

कठोरता	hardness
कफ	expectoration

क प	
क सा	
कशेरुक	r eb
कायाचिकित्सा	medicines
क्रिया	action
किण्वन	fermentation
कीमिया	alchemy
कुण्डलिनी	helix
कुण्डलीनुमा	helical
कुष्ट रोग	leprosy
केन्द्रक	nucleus
कोशिका	cells
कोशिका विज्ञान	cytology
कोशिका द्रव्य	cytoplasm
कौमारभृत्य	paediatrics
कंकाल तंत्र	skelaton system

ग, घ

गलनांक	melting
गुणसूत्र	chromosomes
गुप्तज्ञान (जीवरहस्य)	genetic code
गृह चिकित्सा	psychotherapy
घटक	constituents
घातवर्ध्यता	malleability

च, ज

चक्र	centres
चरमशून्य	absolute sero
चुम्बकीय क्षेत्र	magnetic field
जल-प्रदूषण	water pollution
जघनास्थि	pubis

जड़त्व	inertia
जराचिकित्सा	rejuvenation
जनन-तंत्र	reproductory system
जनन-रचना	reproduction
जीवहरस्य (गुप्तज्ञान)	genetic code
जीवाणु	bacteria, organism
जीवाश्म	fossils
जैव-क्रिया	bio-reaction
जैव-भौतिकी	bio-physics
जैव-रसायन	bio-chemistry
जैविक	organic

ड

डकारें	belching
डिम्वाणु (अण्डाणु)	ovum

त, द

तन्यता	ductility
तत्व	elements
तत्वविज्ञानी	metaphysicist
तंत्रिका तंत्र	nervous system
तंत्रिका विज्ञान	neurology
दमा	asthma
दृढ़ता	rigidity
द्रव्यमान	mass

ध, न

धनुर्वेद	archery
धनावेश	positive charge
नक्षत्र	constellations
नाभिक (केन्द्रक)	nucleus

नाभिकाय विखन्न	nuclear f ss on
नाड़ी	channels pulse
नाड़ी जाल	plexus
निदान	diagonosis
निर्धारक	determinant
निरपेक्ष स्थिरता	absolute rest
निरूक्त	etymology
निरुद्ध	detain

प

पराबैंगनी किरण	ultraviolet rays
परमाणु	atom
परावर्तन	reflection
परिरोध	confinement
परिसंचरण तंत्र	ecosystem
परिस्थिति विज्ञान	ecology
पशुवत मन	instinctive mind
पाचक तंत्र (पाचन संस्थान)	digestive system
पित्त	bile
पिंगला	solar channel
पीयूष	pituitary
पेशीतंत्र	muscular system
प्रकाश-पुंज	beam of light
प्रजाति	subraces
प्रतिदीप्त	fluorescent
प्रतिपदार्थ	antimatter
प्रतिक्रिया	reaction
प्रतिरूपण	personation
प्रत्यास्थता	elasticity
प्रदूषण	pollution
प्रदूषक	pollutants

ब, भ, म

बहिर्गत प्रक्रिया	objective process
बंध	bonds
वाजीकरण	hypnotism
वालरोग	paediatrics
ब्रह्मरंध्र	sacerdotium
भंगुरता	brittleness
भुवर्लोक	astrol plane
भूतविद्या	spookology
भौतिक परिवर्तन	physical change
भौतिक विज्ञान	physics
भू-विज्ञान	geology
भ्रूण	faetus
भ्रूणीय	embryonic
मनोविज्ञान	psychology
मरीचिका (मृगतृष्णा)	mirage
महाधमनी	aorta artery
मूलाधार	base
मेरु दंड	spinal cord
मेरु रज्जू	spinal marrow
मोक्ष	illumination
मृदा-प्रदूषण	soil-pollution

य, र, ल, व

यांत्रिक ऊर्जा	mechanical energy
युग्मज	Zygote
रसायन तंत्र	chemotherapy
रासायनिक ऊर्जा	chemical energy
रासायनिक परिवर्तन	chemical change
रिष्टि	mischief
रूहानी-चिकित्सा	spiritual healing

रेडियाधामना (रेडिया सक्रियता)	radioactivity
लगिष्णुता	tenacity
लव	particle
व्यपहरण	kidnapping
व्यष्टि मन	individual mind
वात्	pneumothorax
विकर्षण	repulsion
विकिरण	radiation
विभाज्यता	divisibility
विन्यास	configuration
विवर्धन	enlargement
विषाणु	virus
विश्वमन	cosmic mind
वृष्य चिकित्सा	aphrodisiacs

स, ष, श

सर्ग	creation
सत्संग	seminar
समसूत्री	mitotic
स्वचेतना	self-consciousness
स्थूल शरीर	physical body
सामरिकी	tactics
सार्वभौमिक मन	universal mind
स्थिरांक	constant
सूक्ष्मदर्शी यंत्र	microscope
सूक्ष्मलोक	astral plane
सूक्ष्म शरीर	astral body
संनयन	convection
संपीड्यता	compressibility
संवाहन	conduction
संसजनता	cohesion

संश्लेषण	synthesis
संक्षोभशास्त्र	shock weapons
शरीर क्रिया विज्ञान	physiology
शरीर रचना	anatomy
शल्य	surgery
शुक्राणु	sperm, semen
श्रव्य प्रदूषण	noise pollution
श्वसन तंत्र	respiratory system

ऋ, क्ष

ऋण आवेशी	negatively charge
ऋत्	norm
क्षम	imperism

संदर्भिका

संस्कृत-साहित्य

1. अद्‌भुत रामायण (वाल्मीकि) : सं. रामकुमार राय, प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी, 1982
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् (कालिदास) : सं. एस. के बेलवरकर, साहित्य अकादमी, दिल्ली, 1965
3. अध्यात्म रामायण (तन्नवत अेलुत्तच्छन) : गीताप्रेस गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)
4. आनंद रामायणम् : पं. रामतेज पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान्, दिल्ली, 1986
5. उत्तर रामचरित (भवभूति) : डॉ. कपिलदेव आचार्य, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1968
6. ऐतरेयोपनिषद् (शांकर भाष्य) : गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2033 वि.
7. केनोपनिषद् (शांकरभाष्य) : गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2038 विक्रमी
8. कुमारसम्भवम् (कालिदास) : टीकाकार प्रद्युम्न पाण्डेय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1985
9. कौटलीय अर्थशास्त्र (चाणक्य) : उदयवीर शास्त्री, मेहरचंद लछमनदास, दिल्ली, 1969
10. केनोपनिषद् (शांकर भाष्य) : गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2033 वि.
11. गरूड़ पुराण : टीकाकार उच्छव लाल शर्मा, नीतल एण्ड कम्पनी, मथुरा, 1986

12 चम्पूरामायण (भोजराज) : चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982

13 चरक संहिता : डॉ. ब्रह्मानंद त्रिपाठी, चौखम्बा आयुर्विज्ञान ग्रंथमाला, वाराणसी, 1986

14 चाणक्य नीति : अनु. देवेन्द्र विशारद, डी.पी. वर्मा एण्ड कम्पनी, दिल्ली

15 छान्दोग्योपनिषद् (शांकर भाष्य) : गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2023 वि.

16 धम्मपदम् (बोद्ध दर्शन) : टीकाकार कन्छेदीलाल गुप्त, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी

17 प्रसन्नराघव (जयदेव) : सं. डॉ. रमाकांत त्रिपाठी व रमानाथ त्रिपाठी, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1977

18 पंचतंत्र (विष्णु शर्मा) : सं. गोकुलदास गुप्त, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1985

19 भर्तृहरिशतकत्रयम् : डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1982

20 मनुस्मृति : सं. ज्यंत कृष्ण हरिकृष्ण दवे, भारतीय विद्याभवन, मुंबई, 1975

21 मनुस्मृति : सं. रामेश्वर भट्ट, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1985

22 माण्डूक्योपनिषद् (शांकर भाष्य) : गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2038 वि.

23 योगवासिष्ठ : अच्युत ग्रथमाला कार्यालय, काशी, सं. 2006 वि.

24 रघुवंश (कालिदास) : सं. इन्द्र विद्यावाचस्पति राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1982

25 वैशेषिक दर्शनम् (कणाद्) : उदयवीर शास्त्री, विरजानंद वैदिक (शोध) संस्थान, गाजियाबाद, 1984

26 श्रीमद्भागवतम् : टीकाकार रामतेज पाण्डेय, चौखम्बा सस्कृत संस्थान, दिल्ली, 1986

27. श्रीमद्भगवतगीता : अनु. श्री हरिकृष्णदास गोयन्दका, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2017 वि.

28 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (महर्षि वाल्मीकि — गीताप्रेस गोरखपुर

29. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण : परमहंस जगदीश्वरानंद सरस्वती, वेद सदन, दिल्ली, 1985

30. श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण-श्लोक सूची : स. अमरेन्द्र लक्ष्मण, श्री रामकोश-मण्डलम्-पुण्यपत्तनम्, 1982

31. संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायणम् : सं. श्रीकृष्णमोहन शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1973

32. हनुमन्नाटक (दामोदर मिश्र) : पं. जगदीश मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1978

33. यजुर्वेद : दयानंद संस्थान, वेद मंदिर, दिल्ली, सं. 2030 वि.

34. सामवेद : —वही— स. 2030 वि.

35. अथर्वेद : —वही— सं. 2031 वि.

36. ऋग्वेद : —वही— सं. 2032 वि.

अपभ्रंश-साहित्य

1. पउम चरिउ (स्वयंभु) : सं. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1958

हिन्दी-साहित्य

1. आधुनिक पाश्चात्य दर्शन का इतिहास : कृष्ण मुरारी प्रसाद वर्मा, ओरियंटल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली

2. आनंद रामायण का सांस्कृतिक अध्ययन : डॉ. अरुणा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1944

3. उत्तररामचरित : अनु. प्रो. इन्द्र, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 1981

4. गीता और विज्ञान : मन्धाता सिंह गहमरी, प्र. ज्ञान विज्ञान, ट्रक सिंडीकेट, बक्सर (बिहार), 1977

5. गोस्वामी तुलसीदास और उनका उत्तरकाण्ड : डॉ. शिवाशंकर पाण्डेय, रीगल बुक डिपो, दिल्ली, 1973

6. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना : ब्योहार राजेन्द्र सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

7. जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान : मुनि श्री नागराज जी,

8. तुलसीदास : डॉ. माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, 1953

9. तुलसी : सं. डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976

10. धर्मशास्त्र का इतिहास : अनु. अर्जुन चौबे कश्यप, हिन्दी समिति, लखनऊ

11. धर्मशास्त्र का इतिहास : डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे, हिन्दी समिति (सूचना विभाग), लखनऊ

12. रामायण : खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई, 1957

13. रामायण-प्रवचन : श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर, राष्ट्र सेविका समिति, नई दिल्ली, सं. 2034 वि.

14. रामायण के कुछ रहस्य : सं. देवीशरण 'देवेश' वैदिक अनुसंधान समिति, नई दिल्ली-24

15. रामचरितमानस (तुलसीदास) : गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2013 विक्रमी

16. रामचरितमानस-एक विश्लेषण : डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, रामचरितमानस चतुशताब्दी समारोह समिति (म. प्र.) भोपाल, 1975

17. रामचरितमानस का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : डॉ. जगदीश प्रसाद शर्मा, किताब महल, अध्ययन इलाहाबाद, 1964

18. रामकथा और तुलसीदास : फॉदर डॉ. कामिल बुल्के, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, 1977

19. संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ. वचनदेव कुमार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1977

20. संस्कृत साहिम्य का इतिहास : आर्थर मैक्डोनल, चौखम्बा विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला, वाराणसी

21. हिन्दी संचयन : ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना-4

सामान्य साहित्य

1. अपराध और दण्डशास्त्र	: कौशल कुमार राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1963
2. आन्ध्र प्रदेश	: अरिगपूडि, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, 1984
3. आरोग्य प्रकाश	: पं. रामनारायण शर्मा, वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, कलकत्ता, 1963
4. उपनिषद् अंक (कल्याण)	: गीता प्रेस गोरखपुर, वर्ष 23, जनवरी, 1949
5. चरित्र निर्माणांक	: गीता प्रेस गोरखपुर, वर्ष 57, जनवरी, 1983
6. धर्म-कर्म और विज्ञान	: ब्रह्माकुमार जगदीश चन्द्र, प्रजापिता ब्रह्मकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय, दिल्ली
7. पर्यावरणीय प्रदूषण	: विष्णुदत्त शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, 1981
8. पुलिस अन्वेषण फोटोग्राफी	: विष्णुदत्त शर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1985
9. प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप	: अवध बिहारीलाल अवस्थी, कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, 1964
10. प्राचीन भारत में अपराध और दण्ड	: डॉ. हरिहरनाथ त्रिपाठी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1964
11. प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति	: अनंत सदाशिव अल्तेकर, भारती भण्डार, लीडर प्रेस प्रयाग, सं. 2004 वि.
12. भारतीय दण्ड संहिता	: अधिनियम 1860 संख्यांक 45, विधि मंत्रालय, भारत सरकार, 1982
13. मत्स्य पुराणांक	: गीता प्रेस गोरखपुर, वर्ष 58, जनवरी, 1984
14. मनुष्य जीवन की सफलता	: जयदयाल गोयंदका, गीता प्रेस गोरखपुर, सं. 2038 वि.

15. मनोरंजक भौतिकी : या.ई. पेरेलमान, मीर प्रकाशन, मास्को, 1982

16. रहस्यमय शक्तियों के चमत्कार : आशुतोष प्रसाद, सहगल प्रकाशन, दिल्ली

17. वेद और कुरआन : मुहम्मद फ़ारुक़ खां, मरकजी मकतबा इस्लामी, दिल्ली, 1983

18. वैदिक ज्ञान भण्डार का मूल-यज्ञ : प्र. सार्वदेशिक प्रकाशन, दिल्ली

19. श्री हेमकुण्ट दर्शन : डॉ. तारासिंह, सिह ब्रदर्ज, अमृतसर, 1984

20. सत्य की खोज : वहीदुद्दीन खां, मरकजी मकतबा इस्लामी, दिल्ली, 1983

21. सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी दयानंद सरस्वती, सार्वदेशिक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2017 वि.

22. संकीर्त्तनांक : गीता प्रेस गोरखपुर, वर्ष 60, जनवरी, 1986

23. सुबोध प्रारंभिक ज्योतिष : नारायण दत्त श्रीमाली, सुबोध पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 1971

24. सैन्य विज्ञान : बी.एन.मालीवाल, चन्द्र प्रकाश एण्ड ब्रादर्स, हापुड़, 1981

25. हमारे पूर्वज : कृष्ण देव गौड़, सस्ता साहित्य प्रेस, मथुरा, 1982

26. हिन्दु समाज के पथभ्रष्टक तुलसीदास : सं. विश्वनाथ, विश्वविजय प्रकाश, दिल्ली

27. हिमाचल प्रदेश : विरज, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, 1982

28. हिन्दु-संस्कृति अंक (कल्याण विशेषांक) : गीता प्रेस गोरखपुर, वर्ष 24, जनवरी, 1950

शोध-निबंध (ले. विष्णु दत्त शर्मा)

1. भू-ओजोन प्रदूषण : विज्ञान, वर्ष 70, अंक 6, पृष्ठ 19-21, जून, 1983

2. अपराध अभिज्ञान में भौतिकी की भूमिका : पुलिस विज्ञान, अंक [illegible], पृष्ठ 27-31, दिसम्बर, 83
3. मानस में जैविकी तत्व मनोवैज्ञानिक विश्लेषण : वीणा, वर्ष [illegible]7, अंक [illegible], पृष्ठ 21-25, फरवरी, 1984
4. अपराधियों की भौतिक पहचान और उनका मूल्यांकन : पुलिस विज्ञान, अंक 7, पृष्ठ 52-62, मार्च, 1984
5. मानस में आयुर्विज्ञान-मनोवैज्ञानिक विश्लेषण : वीणा, वर्ष 57, अंक 12, पृष्ठ 15-20, दिसम्बर, 1984
6. विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में रामचरितमानस : वीणा, वर्ष 58, अंक 3, पृष्ठ 22-27, मार्च, 1985
7. तुलसीदास का आणविक दृष्टिकोण : वीणा, वर्ष 58, अंक 8, पृष्ठ 10-13, अगस्त, 1985
8. संकीर्तन का राष्ट्रीय एकता में योगदान : संकीर्तनांक (कल्याण), वर्ष 60, अंक 1, पृष्ठ 267-270, जनवरी, 1986
9. पर्यावरण शुद्ध रखने में वृक्षों की भूमिका : आविष्कार, वर्ष 16, अंक 11-12, पृष्ठ 351-353, नवम्बर-दिसम्बर, 1986
10. सिंधु तरे पाषाण-वैज्ञानिक दृष्टिकोण : वीणा, वर्ष 60, अंक 8, पृष्ठ 37-41, अगस्त, 1987

आंग्ल-साहित्य

1. Chariots of God : Erich Von Deniken; Souvenir Press, London, 1969
2. Earth Science & Meteoritics : J. Geise & E.D. Goldberg; North Holland Publishing Co., Amsterdam, 1963
3. Genetics : P.S. Verma & V.K. Agarwal: S.Chand&Co., Delhi, 1982
4. Indian Penal Code : Govt. of India Publication, Delhi
5. Miracles of the God : Erich Von Deniken; Dell Publishing Co. Inc. New York, NY-17, October, 1976

6. Mysterious Universe : James Jeans: Cambridge University Press, London, 1948
7. Mathematic Theory of Relativity · A Stauley Eddington: Cambridge University Press, London, 1954
8. Philosophy of Physical Sciences · Sir Arther Eddington: Cambridge University Press, London, 1949
9. Physical Geology : L. Donleet&Sheldon Judson: Prentice Hall, Inc., New Jersey, 1958
10. Physics for Entertainment : Ya. perelman: Mir Publishers, Moscow (reprint 1980)
11. Religion & Science : Berstrand Russell: Oxford University Press, London, 1955
12. States of our Union : Publication Division, Patiala House, New Delhi
(i) Bihar : P.C. Roy Choudhary, 1974
(ii) Jammu & Kashmir : P.N.K. Bamzai, 1973
(iii) Karanataka . M.V. Krishna Rao, 1975
(iv) Lakshadweep : M. Ramunny, 1979
(v) Maharashtra : S.R. Tikekar, 1971
(vi) Rajasthan : M.L. Sharma, 1971
13. Scientists of Ancient India : Dr. O.P. Jaggi, Atmaram&Sons, Delhi, 1966
14. Some positive Sciences in the Vedas : Dharm Deva Mehta, The Academy of Vedio Researches, New Delhi, 1959
15. The Universe & Dr. Einstein : Lincoln Barnett, Victor Gollancz Ltd., London, 1950
16. The Search of Lanka : D.P, Mishra: Agam Kala Prakashan, Delhi, 1985

शब्दकोश तथा विश्वकोश

1. आयुर्विज्ञान शब्दावली : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, आर. के. पुरम, नई दिल्ली

2. आदर्श हिन्दी-संस्कृत कोश : डा. रसिकेश चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 1979

3. पारिभाषिक शब्दावली : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली

4. पौराणिक कोश : राणाप्रसाद शर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, सं. 2028 वि.

5. हिन्दी विश्वकोश : सं. नगेन्द्र नाथ वसु, बी.आर. पब्लिशिंग कॉरप., दिल्ली, 1986 (पुनः मुद्रण)

6. Chamber's Encyclopaedia : George Newnes Ltd., London, 1950

7. Encyclopedia Britannica : Encyclopaedia Britannica, Inc., U.S.A., Volume 18 (1768)

8. Encyclopedia of the unexplained : Ed. Richard Cavendish, Routledge & Kegan Paul Ltd., London, 1974

9. Encyclopaedia of Science & Technology : Mc. Graw-Hill Book Company, Inc., U.S.A., 1960

●●●

"सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्"

© 22821

डॉ0 रमाशङ्कर तिवारी

(देवपुरस्कार, आचार्य रामचन्द्रशुक्ल नामित पुरस्कारादि के विजेता)

'गन्धमादन'
20, लक्ष्मणपुरी कालोनी,
फैजाबाद (उ.प्र.)-224001

अभिमत

'रामचरितमानस' में वैज्ञानिक तत्त्वों का अनुसंधान एवं सारगर्भित निरूपण डॉ. विष्णुदत्त शर्मा की प्रखर वैपश्चिती प्रतिभा का परिचायक है। आधुनिक विज्ञान की समस्त शाखाओ से पूर्णत अभिज्ञ डॉ. शर्मा आस्थावान विद्वान हैं। इन्होंने 'मानस' में उपवर्णित अनेक तथ्यों एवं प्रसंगों का आधुनिक विज्ञान की उपपत्तियों के आलोक में विवेचित किया है और यह प्रमाणित किया है कि हमारी आर्ष चिन्तन-परम्परा में जो तथ्य निरुपित हुए हैं और जिनका उपनिबंधन तुलसीदास ने 'मानस' में किया है, वे सभी विज्ञानसम्मत है। उदाहरणतः शिव के तृतीय नेत्र से निकली अग्निशिखाओं से कामदेव के भस्मीभूत हो जाने की घटना को उन्होंने जर्मनी में विकसित 'शिव लैसर' नामक अदृश्य प्रकाश-पुंज का परिणाम बताया है जिसकी विकिरणें दूर-से-ही किसी वस्तु को भस्म कर देती हैं। वैसे-ही राजा जनक के उस प्रासाद को वातानुकूलित सिद्ध किया है जहां श्रीराम-लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र ठहरे थे। सभी कालों में सुखदायी रहना 'एयरकण्डिशनिंग' की ओर स्पष्ट संकेत करता है :

सुंदर सदनु सुखद सबकाला।
तहां बासु लै दीन्ह भुआला ॥

डॉ. शर्मा ने 'मानस' में उपलब्ध वैज्ञानिक तत्वों को प्रमाणित करने के लिए प्राच्य भारतीय शास्त्रों एवम् साहित्य का गहन अनुशीलन किया है जो विस्मयोत्पाद के हैं। विमानों के संदर्भ में उन्होंने भारद्वाज ऋषि-प्रणीत पुस्तक 'अंशुबोधिनी' को उद्धृत किया है जिसके विमान-अधिकरण में उपलब्ध 'शकूत्युदशमोघस्यै' सूत्र पर बोद्धायन ऋषि की वृत्ति का उद्धहरण दिया है जिसमें विमान की रचना तथा आकाश में उड़ने वाली गति के आठ विभाग निर्दिष्ट हुए हैं। इतनी गहरी छानबीन डॉ. शर्मा की विलक्षण प्रतिभा तथा परिश्रम की विज्ञप्ति करती है। 'विमान' में प्राप्त 'वि' का पक्षी-अर्थ तथा 'मान' का 'सदृश' (सादृश्य) अर्थ स्वीकार कर उन्होंने 'विमान' की पक्षी-सदृश आकृति

का कथन किया है सचमुच आज के नभोगामी विमान पक्षी के आकार वाले होते है। यहां यह भी कह देना चाहूंगा कि 'वि' का पुल्लिंग में एक अर्थ 'आकाश' भी होता है जिससे 'एरोप्लेन' के लिए 'विमान' शब्द के प्रयोग का औचित्य और भी बढ़ जाता है। 'मानस' में कई सुखद अवसरों पर देवताओं द्वारा जिस पुष्पवृष्टि का वर्णन आया है, वह निश्चित ही विमानों से करायी जाती होगी। आज भी विमानों का एतादृश प्रयोग होता है।

डॉ. शर्मा ने विभिन्न विज्ञान-शाखाओं में अनेक ज्ञान-तत्त्व संकलित किए है और नवीनतम अनुसंधानों की आवश्यकता भी परोक्षतः निर्दिष्ट की है। 'मानस' मे इन वैज्ञानिक तत्त्वों की खोज उनकी सारग्राहिणी प्रज्ञा का प्रतिफलन है।

एक बिन्दु अवश्य ध्यातव्य है। तुलसी के ये सभी निरूपण उन्हें प्राच्य भारतीय ग्रथों से मिले हैं जिसका उल्लेख डॉ. शर्मा ने भी स्वयं किया है। इससे तुलसी के गहन अध्ययन का द्योतन होता है, न कि यह कि उन्हें इन वैज्ञानिक तत्वों की निजी जानकारी थी। तथापि, ये तत्त्व 'मानस' में उपलब्ध हैं और इन उपलब्धियों को, आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों के आलोक में, प्रकाश में लाना—यह गुरुगंभीर कार्य विद्वान लेखक ने किया है। किन्तु एक बिन्दु विचारणीय बनता है—'क्या तुलसी ने जहां 'विग्यान' (विज्ञान) शब्द का प्रयोग किया है, वहां उनका अभिप्राय उस 'विज्ञान' से है जिसे हम आज 'साइंस' कहते हैं ?' भारतीय प्राच्य अभिधावली में 'विज्ञान' विशिष्ट ज्ञान का द्योतक है और वह 'आत्मज्ञान' (अध्यात्म) से शृंखलित है। अद्वैतवेदान्त मे तो जिस 'विज्ञानमय कोश' का निरूपण है, वहां विज्ञानमय बुद्धि को आत्मा से भिन्न बतायी गयी है। बोद्धों के दार्शनिक चिन्तन में 'विज्ञानवाद' ज्ञान की ही एकमात्र सत्ता मानता है, 'अर्थों' का कोई अस्तित्व नहीं मानता। 'विज्ञानवाद' का 'ज्ञान' ही शाकर अद्वैत का 'ब्रह्म' है।

कुल मिलाकर, डॉ. शर्मा का प्रस्तुत ग्रंथ हिन्दी साहित्य के लिए बहुमूल्य सम्पत्ति है। इसके माध्यम से उन्होंने काव्य अथवा साहित्य को जो अर्वाचीन विज्ञान से जोड़ दिया है, वह अतीव स्तुत्य है और हिन्दी के विद्वानों को अपने सीमित कौलीन-कौशेय अन्तः कक्ष से बाहर झांकने की प्रेरणा प्रदान करता है।

पूर्व प्राचार्य
साकेत कालेज, फैजाबाद

डॉ० रमाशङ्कर तिवारी

लेखक संबंधित विवरण

जन्म : 8 अगस्त, 1935

जन्म स्थान : मुबारकपुर (निकट कुचेसर रोड रेलवे स्टेशन) जि. गाजियाबाद (उ.प्र.)

शिक्षा : पी-एच.डी., एफ.एम.एस.आई.

प्रकाशित पुस्तकें

1. अपराध अभिज्ञान में फोटोग्राफी
2. पर्यावरणीय प्रदूषण (श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा प्रशंसित)
3. विष और उपचार (भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत)
4. प्रदूषणरोधी वृक्ष
5. पुलिस अन्वेषण फोटोग्राफी (भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत)
6. प्रदूषण और रामचरितमानस (हिन्दी अकादमी, दिल्ली के प्रकाशन-सौजन्य से)
7. रामचरितमानस : मूल्यांकन एवं युद्धपद्धति
8. आर्ष साहित्य में मूलभूत विज्ञान (हिन्दी अकादमी. दिल्ली के प्रकाशन-सौजन्य से)
9. महर्षि गालव
10. विज्ञान मुक्तावली (निबंध-संकलन)
11. रामासुर संग्राम
12. नारी और न्याय
13. रामचरितमानस में वैज्ञानिक तत्त्व (सम्मानित शोध कार्य)
14. Fluid Pressometry

प्रकाश्य : अनुरोधनामा (आत्मकथा)

अन्य प्रकाशन : कुछ मोनोग्राफ तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगभग 350 लेख/शोध-निबंध। इनके अतिरिक्त पर्याप्त अनुवाद, समीक्षा एवं सम्पादन कार्य।

पुरस्कार एवं सम्मान :

1. पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार (1984)
2. विज्ञान परिषद (इलाहाबाद विश्वविद्यालय) द्वारा सम्मानित (1985)
3. विद्यावारिधि उपाधि, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद (1993)
4. पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार (1994)
5. सहयोग-सम्मान—1994

शोध प्रकाशन अकादमी

5/43, वैशाली

201010